सर्वे भवन्तु सुखिनः

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग
सर्वे भवन्तु सुखिनः
• भारत •

मानव अधिकारों के संरक्षण एवम् संवर्धन में प्रतिबद्धता के बीस वर्ष

वार्षिक अंक–10, 2013

सर्वे भवन्तु सुखिनः

मानव अधिकार: नई दिशाएँ

मानव अधिकार : नई दिशाएँ, 2013 वार्षिक अंक – 10

ISSN : 0973-7588

मानव अधिकार : नई दिशाएँ

सर्वे
भवन्तु सुखिनः

वार्षिक, अंक – 10, 2013

प्रकाशक : राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग
सी–ब्लॉक, जी. पी. ओ. कॉम्पलैक्स,
आई. एन. ए., नई दिल्ली – 110 023
भारत

© 2013 राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, भारत

प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के निजी विचार हैं। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, सलाहकार मण्डल या संपादक मण्डल का इनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

प्राप्ति स्थान : राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग
सी–ब्लाक, जी. पी. ओ. कॉम्पलैक्स,
आई. एन. ए., नई दिल्ली – 110023, भारत
वेबसाईट : www.nhrc.nic.in
ई–मेल : covdnhrc@nic.in

मुद्रण एवं डिजाईनिंग : **सेंट जोसेफ प्रेस**
डी–47, ओखला फेस–1, नई दिल्ली–110 020
मो.– 9999891207
ई–मेल : stjpress@gmail.com

सर्वे
भवन्तु सुखिनः

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, भारत

अध्यक्ष

न्यायमूर्ति श्री के. जी. बालाकृष्णन

सदस्य

न्यायमूर्ति श्री सीरिएक जोसफ
न्यायमूर्ति श्री डी. मुरूगेशन
श्री सत्यब्रत पाल
श्री शरद चंद्र सिन्हा

महासचिव

डॉ0 परविंदर सोही बिहुरिया

महानिदेशक

श्रीमती कँवलजीत देओल

रजिस्ट्रार

श्री अनिल कुमार गर्ग

संयुक्त सचिव

श्री आलोक श्रीवास्तव (का. एवं प्र.)

संयुक्त सचिव

जयदीप सिंह कोचर (प्रशि. एवं अनु.)

सर्वे
भवन्तु सुखिनः

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

सलाहकार मंडल

श्री शरद चन्द्र सिन्हा

श्रीमती कँवलजीत देओल

श्री जयदीप सिंह कोचर

प्रो0 गिरीश्वर मिश्र

प्रो0 गोपेश्वर सिंह

सर्वे
भवन्तु सुखिनः

मानव अधिकार : नई दिशाएँ

संपादक

जयदीप सिंह कोचर

सह संपादक

डॉ0 सरोज कुमार शुक्ल

संपादन सहयोग

अंजली सकलानी

सहयोग

अमित कुमार साव

अखिलेश सिंह

कम्प्यूटरीकरण

सरिता विजय बहादुर
बबीता

अनुक्रम

- **दो शब्द** : x
- **आमुख** : xii
- **संपादकीय** : xiv

विषय वस्तु पर आधारित लेख :–

क्रम सं0	विषय	लेखक का नाम	पृष्ठ सं0
1.	नारी सशक्तिकरणः कल, आज और कल	कमलेश जैन	1–14
2.	किराये की कोख का बढ़ता व्यापार एवं महिलाएँ	डॉ. सरोज व्यास	15–20
3.	महिला सशक्तिकरण एवं दलित महिलाओं की स्थितिः चुनौतियाँ एवं समाधान	डॉ. शशि कुमार	21–28
4.	महिला सशक्तिकरण एवं उनके अधिकार	श्री पंकज कुमार	29–44
5.	मानव अधिकार और भारतीय महिलाएँ	प्रो. डॉ. श्रीराम येरणकर	45–56
6.	महिला हिंसा एवं लिंग भेद के संबंध में राष्ट्रीय एवं अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर कानूनी उपबंध	डॉ. अनिला डॉ. लाला राम	57–68
7.	बौद्धिक–विमर्श के परिप्रेक्ष्य में महिला सशक्तिकरण की चुनौती : एक समीक्षा	डॉ. पुनीत कुमार डॉ. मंजुलता गर्ग	69–78
8.	महिला अधिकार, मानवाधिकार और मीडिया	डॉ. इन्द्रेश कुमार मिश्र	79–90

मानव अधिकारों से संबंधित समसामायिक विषयों पर केन्द्रित लेख :

क्रम सं0	विषय	लेखक का नाम	पृष्ठ सं0
9.	मानव अधिकार विमर्श और भारतीय संदर्भ	प्रो. अरूण चतुर्वेदी	91—108
10.	मानव अधिकार एवं लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 : विधिक अवलोकन	डॉ. राकेश कुमार सिंह	109—122
11.	विकास : एक मानव अधिकार	सुश्री पूनम कुमारी	123—132
12.	जलवायु परिवर्तन एवं इसके परिणाम	डॉ. एस. एम. झरवाल	133—144
13.	करें मनन : क्यों न करें खनन ? विकास की मार झेलती अति उपेक्षित आदिवासी समुदाय	शरद कुमार यादव	145—152
14.	21वीं सदी : पुलिस और मानवाधिकार	डॉ. के. एस द्विवेदी	153—162
15.	आदिवासी परिवारों को अमानवीय जीवन जीने के लिए मजबूर करता मौताणा	डॉ. लालाराम जाट	163—176
16.	कन्या भ्रूण हत्या — मानव जाति पर प्रहार	पुष्पेन्द्र सोलंकी	177—194
17.	मानवाधिकार और मानवतावाद : एक दार्शनिक दृष्टि	डॉ. अमिता पांडेय	195—204
18.	समकालीन हिन्दी उपन्यास में मानवाधिकार	प्रो. के. वनजा	205—220
19.	विकास, पर्यावरण एवं मानवाधिकार	बजरंगलाल जेठू	221—240
•	**प्रतिस्मृति** :		
20.	न्यायमूर्ति जे. एस. वर्मा : एक विलक्षण व्यक्तित्व	चमन लाल	241—250
•	**साक्षात्कार** : न्यायमूर्ति सुजाता वी. मनोहर		251—268
	साक्षत्कारकर्त्ता : प्रो. सुधा मोहन एवं प्रिया मित्तल		
•	आयोग के पांच महत्वपूर्ण निर्णयों पर आधारित कहानियाँ		
	प्रस्तुति : डॉ. अनीता सिंह		269—290
•	**पुस्तक समीक्षा**		
	शिक्षा में मूल्यों के सरोकार		
	समीक्षक : अनिल गुप्ता		291—298
	महिला और कानून **समीक्षक** : सर्वमित्रा सुरजन		299—302

सर्वे
भवन्तु सुखिनः

दो शब्द

मानव अधिकार : नई दिशाएँ के दसवें अंक के प्रकाशन के अवसर पर हम सुधी पाठकों, लेखकों और चिंतकों का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं। आयोग के इस उपयोगी, महत्वपूर्ण एवं सूचनाप्रद प्रकाशन के माध्यम से हम निश्चित रूप से एक विशाल समुदाय के समीप पहुँचने के अपने लक्ष्य में सफल होंगे।

मेरा ऐसा मानना है कि मानव अधिकारों की वैचारिक पृष्ठभूमि मानवता के सार्वभौमिक धरातल पर टिकी हुई है तथा वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के प्रत्येक जीव से भी जुड़ी हुई है। मानवीय गरिमा के सम्पूर्ण विकास के साथ–साथ इसकी परिधि में दूसरों के अधिकारों के संरक्षण का भाव हमेशा विद्यमान रहा है। इसी पृष्ठभूमि को विशेष रूप से ध्यान में रखते हुए भारत में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की स्थापना की गई ताकि समाज के सभी वर्गों में मानव अधिकारों के आदर्श को पुष्पित, पल्लवित व विकसित किया जा सके।

आयोग द्वारा प्रकाशित यह जर्नल पिछले कुछ वर्षों से अकादमिक क्षेत्र से जुड़े बुद्धिजीवियों, शोद्यार्थियों तथा विद्यार्थियों के मध्य एक सशक्त प्रभावी एवं लोकप्रिय माध्यम बन कर अपनी उपस्थिति को दर्ज कराने में सफल हुआ है। साथ ही, इसने दस वर्षों की अल्प अवधि में आम जन की भाषा में मानव अधिकारों की जमीनी हकीकत को समझने, जाँचने व परखने का उपयुक्त मंच भी प्रदान किया है।

इस अंक में जिन सुधी लेखकों, विद्वानों, वरिष्ठ अधिकारियों तथा अकादमिक क्षेत्र से जुड़े प्रतिनिधियों द्वारा सहयोग प्रदान किया गया है उन सभी को मैं आयोग की ओर से हार्दिक धन्यवाद देता हूँ और आशा करता हूँ कि भविष्य में भी उनका इसी प्रकार सहयोग प्राप्त होता रहेगा। इस आशा के साथ, मैं यह अंक पाठकों को समर्पित करता हूँ।

(न्यायमूर्ति के. जी. बालाकृष्णन)

सर्वे
भवन्तु सुखिनः

आमुख

मानव अधिकार का विचार– दर्शन सार्वभौमिक है यह अधिकार हर मानव–मात्र अर्थात् हम सब में निहित है। मानव अधिकार जन्मजात है एवं इनका केन्द्रीय उद्देश्य प्रत्येक मानव को समाज में सम्मान एवं गरिमा प्रदान करने के साथ–साथ उनकी क्षमताओं का समुचित विकास भी है। इन्हीं आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए देश में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की स्थापना की गई ताकि आज के समकालीन परिप्रेक्ष्य में मानवीय मूल्यों और आदर्शों की प्रभावी ढंग से रक्षा करने के साथ–साथ एक ऐसे समाज की स्थापना की जाये जहाँ प्रत्येक मनुष्य अपने–अपने अधिकारों को बगैर किसी बाधा अथवा विरोध के प्राप्त कर सके।

अपनी स्थापना के बाद से ही आयोग, मानवाधिकार के अभियान को जनांदोलन बनाने के लिए प्रयासरत रहा है। आयोग इसका प्रणेता भी है और सूत्रधार भी। आयोग का आदर्श वाक्य है – **'सर्वे भवन्तु सुखिनः'** अर्थात् सभी सुखी हों। आयोग का अभीष्ट लक्ष्य इसी उक्ति को वास्तविकता में चरितार्थ करना है। आयोग का उद्देश्य जहाँ एक ओर देश के शोषित–पीड़ित बहुसंख्यक वर्ग को उसके मानवाधिकारों से परिचित कराना है, वहीं दूसरी ओर शासन–प्रशासन से जुड़े लोगों और नीति–निर्माताओं को इस मानव केंद्रित दृष्टि के प्रति संवेदनशील बनाने के साथ–साथ केन्द्र सरकार व राज्य सरकारों को मानव व जन साधारण केन्द्रित नीतियों के निर्माण व उनके कार्यान्वयन के लिए प्रेरित करना भी है। यह पहल अपने आप में महत्वपूर्ण है तथा एक नये युग का आरंभ भी।

जब हम मानव अधिकारों की चर्चा करते हैं तो राष्ट्रपिता **महात्मा गांधी** का नाम सहज ही ध्यान में आता है। गांधीजी देश को केवल अंग्रेजों की गुलामी से ही नहीं बल्कि सदियों से चले आ रहे सामाजिक अन्याय, शोषण और उत्पीड़न से भी मुक्ति दिलाना चाहते थे। उनका प्रमुख उद्देश्य एक ऐसे समतामूलक समाज को बनाना था जिसमें जाति, पंथ, क्षेत्र आदि के आधार पर किसी तरह का भेदभाव न हो। कोई व्यक्ति

भूखा न रहे तथा सबकी बुनियादी जरूरतों की पूर्ति को सके। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए उन्होंने जीवनभर कोशिश की। अस्पृश्यता यानी छुआछूत को उन्होंने सामाजिक अपराध और अभिशाप माना।

'मानव अधिकार : नई दिशाएँ' आयोग का वार्षिक प्रकाशन है जो इस वर्ष अपनी दशाब्दी मना रहा है। हमें बड़ी प्रसन्नता है कि यह निर्बाध एवम् अनवरत प्रकाशित होता रहा है।

आज मानवाधिकार से जुड़े विषय राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर जनमानस को उद्वेलित कर रहे हैं और शासन का आज यह एक प्रमुख दायित्व बन गया है कि वह यह सुनिश्चित करे कि विभिन्न स्तरों पर मानव अधिकारों का न केवल संरक्षण हो अपितु उनका प्रचार–प्रसार भी हो। यह प्रकाशन, मानव अधिकारों के प्रति जागरूकता विकसित करने तथा मााव अधिकारों से संबंधित विषयों पर समाज में चर्चा को बढ़ावा देने में बहुत ही प्रासंगिक, महत्वपूर्ण एवं उपयोगी कार्य कर रहा है।

आयोग का यह प्रयास रहता है कि वह आम आदमी के दुख–सुख से जुड़े, उसकी चिंताओं को संज्ञान में ले और आवश्यकतानुकूल हस्तक्षेप भी करे। आयोग इस प्रकार के अपने दायित्व के निर्वाह में सतत सक्रिय है और आयोग के द्वार सबके लिए सदैव खुले हैं। हम आशा करते हैं कि आम आदमी के साथ आयोग का संवाद बनाये रखने में यह पत्रिका महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रहेगी।

एक सफल लोकतंत्र के लिए जैसी राजनैतिक–सामाजिक–आर्थिक व्यवस्था की आवश्यकता है उसी प्रकार उसके लिए एक सजग व सचेत समाज भी अति आवश्यक है। इस वर्ष की **मानव अधिकार : नई दिशाएँ** की विषय वस्तु **'महिला सशक्तिकरण एवं विकास'** है। इस संदर्भ में इस अंक ने अनेक महतवपूर्ण विषयों को छुआ है और इस विषय पर विचार–विमर्श को प्रोत्साहित करने के साथ–साथ इसमें महिला सशक्तिकरण से जुड़े अनेक सम–सामयिक प्रश्नों को चर्चा के केन्द्र में लाने का प्रयास भी किया है। मुझे विश्वास है कि इस तरह के विचार–विमर्श को आगे बढ़ाते हुए यह पत्रिका समाज में मानवीय चेतना को जागृत करने में सहायक होगी।

पत्रिका के प्रकाशन के अवसर पर मैं इस कार्य से जुड़े सभी सहकर्मियों के प्रति अपना आभार व्यक्त करता हूँ तथा उन्हें पत्रिका के प्रकाशन पर बधाई देता हूँ।

शुभाः ते पन्थानः

(आप के मार्ग शुभ हों)

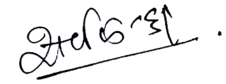

(शरद चंद्र सिन्हा)

सर्वे
भवन्तु सुखिनः

सम्पादकीय

स्त्रियाँ समाज के निर्माण, पोषण और विकास में प्रत्यक्ष रूप से योगदान देती हैं यह एक सर्वविदित तथ्य है। परंतु, उनके इस योगदान को प्रायः नजर अंदाज कर दिया जाता है क्योंकि वह सब उनके सहज स्वाभाविक कर्त्तव्य में शुमार किया जाता है। उन्हें समाज में वह स्थान नहीं मिल पाता जिसके वे वास्तविक रूप से हकदार हैं। उन्हें पितृसत्तात्मक समाज में दोयम दर्जे के नागरिक का दर्जा मिला हुआ है। उन्हें शिक्षा और घर से बाहर के जीवन में सीमित भूमिका देकर तमाम अवसरों से वंचित कर दिया जाता रहा है। यही नहीं उनके बारे में तमाम भ्रामक मिथक भी समाज में व्याप्त रहे हैं। उसे शक्ति, धात्री, जननी और देवी भी कहा गया और उनके शोषण में भी कोई कसर नहीं छोड़ी गयी। आज भी बाल–विवाह, भ्रूण–हत्या, यौन शोषण और विभिन्न पूर्वाग्रह विभिन्न मात्रा में बदस्तूर कायम हैं। यह एक अजीब विडम्बना की स्थिति है। कानून की व्यवस्था सामाजिक प्रथाओं, अंध विश्वासों और दुराग्रहों के मुकाबले कमजोर पड़ने लगती है। खाप पंचायतों द्वारा वयस्क युगलों को मृत्यदंड देना और कन्या की बलि चढ़ा देने की लोम हर्षक घटनाएं इसी तरह का संकेत देती हैं कि भारतीय समाज में स्त्री को उसका हक दिलाने की यात्रा अभी भी संघर्षपूर्ण और लम्बी है। उसके मानवाधिकार के प्रश्न हमारे सामने खड़े हैं। **'मानवाधिकार : नई दिशाएं'** का यह अंक स्त्री जीवन की समस्याओं पर केंद्रित है। हमारा विश्वास है कि स्त्री–विमर्श के नये आयाम उनसे उद्घाटित होंगे।

उपर्युक्त केन्द्रीय विषय के अतिरिक्त पुलिस, पर्यावरण, खनन और अन्य प्रश्नों को लेकर भी अनेक आलेख प्रस्तुत किये गए हैं जो विचार के लिए महत्वपूर्ण सामग्री प्रदान करते हैं।

आयोग की पूर्व सदस्या न्यायमूर्ति सुजाता वी. मनोहर का साक्षात्कार प्रस्तुत करते हुए हमें बड़ा हर्ष हो रहा है। उन्होंने महिलाओं से जुड़े प्रश्नों पर महत्वपूर्ण और बेबाक विचार प्रस्तुत किए है।

आयोग के पूर्व मुख्य संपर्ककर्त्ता श्री चमन लाल ने आयोग के पूर्व अध्यक्ष और भारत के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश स्व. श्री जे. एस. वर्मा के मार्मिक संस्मरण प्रस्तुत किए हैं। एक सहज, सक्रिय और श्रेष्ठ नागरिक के रूप में माननीय वर्मा जी के जीवन के अनेक अनछूए पक्षों पर रोशनी डालते हुए यह आलेख भारत में न्याय प्रक्रिया के मानवीय पक्षों को उद्घाटित करता है। आयोग परिवार भी स्वर्गीय श्री वर्मा के प्रति अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता है। आयोग मानव अधिकारों के संवर्धन के प्रति अपनी प्रतिबद्धता के लिए निरंतर प्रयासरत है।

साथ ही, मानवाधिकारों से संबंधित महत्वपूर्ण पुस्तकों की समीक्षा और मानव अधिकार आयोग के निर्णयों की साहित्यिक प्रस्तुति के स्थायी स्तंभ के अंतर्गत पठनीय सामग्री प्रकाशित की जा रही है।

जर्नल के वर्तमान अंक का कलेवर बहुत व्यापक और विस्तृत परिधि पर फैला हुआ है तथा इसमें मानव अधिकारों से जुड़े हुए अनेक समसामयिक विषयों को भी शामिल किया गया है। मैं इस अंक के सभी लेखकों को उनके महत्वपूर्ण योगदान हेतु बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि भविष्य में भी उनका सहयोग इसी प्रकार मिलता रहेगा।

(जे. एस. कोचर)

विषय वस्तु पर आधारित लेख

नारी सशक्तिकरण : कल, आज और कल

***कमलेश जैन**

भारत में स्त्री सदियों से पीड़ित है। उसके साथ माता के गर्भ से लेकर वृद्धावस्था तक भेदभाव किया जाता है। पर इस पर समाज द्वारा कम ही चिन्ता जताई गई है। समाज मान कर चलता है कि ऐसा होना अस्वाभाविक नहीं नैसर्गिक है। समाज की इस भूल को कानून ने 'समानता', 'जीवन का अधिकार' की कसौटी पर जांचा–परखा है और सतत कोशिश की है, यह बताती है कि स्त्री भी एक 'इन्सान' है और उसके अधिकार पुरुष के बराबर है।

भारत की स्वतंत्रता के बाद यहां के संविधान ने स्त्री को तथा वे सभी अधिकार दिए हैं, जिससे उसका सशक्तिकरण तथा विकास हो। संविधान के इन्हीं प्रावधानों के अंतर्गत महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक न्याय मिलने की आशा बढ़ी है, उन्हें प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त हुई है। आज भारतीय स्त्री को प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति, वकील, चिकित्सक, पायलट न्यायाधीश, बिजनेस टायकून, सभी पदों पर आसीन होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। रोज नए कानूनों का निर्माण हो रहा है–भेदभाव कम हो रहा है। पिछले 25–30 वर्षों में कानून स्त्रियों के पक्ष में आए हैं जिनसे उनका जीवन आसान हुआ है।

यह बदलाव राष्ट्रीय महिला आयोग कानून, 1990 तथा राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग कानून, 1993 से ज्यादा परिलक्षित होता है। इस संस्थाओं के आने के बाद महिलाओं से जुड़ी समस्याओं पर ज्यादा गहराई से अध्ययन किया गया, उनका निदान ढूंढा गया तथा लॉ कमीशन ऑफ इंडिया को महत्वपूर्ण सुझाव दिए गए, जिनके आलोक में विभिन्न कानून बनें।

---

*वरिष्ठ अधिवक्ता, उच्चतम न्यायालय, दिल्ली।

भारतीय समाज के कुछ हिस्सों में, जिस तरह एक बेटे की चाह में लोग सदियों से बालिकाओं की हत्या जन्म लेते ही करते हैं। वे लोग गर्भ में ही बालिका शिशु की हत्या करने लगे। यह तकनीक इस हद तक बढ़ी कि गर्भाधान करने के पहले ही ऐसा किया जा सकता है कि सिर्फ बालक शिशु का ही गर्भाधन हो सके, बालिका शिशु गर्भ में आ ही न सके। नतीजा यह हुआ कि भारत के कुछ राज्यों में बालिकाओं की संख्या बालकों से काफी कम हो गई। लिंग के आधार, पर जन्म लेने के पहले ही बालिकाओं के साथ भेद–भाव को देखते हुए कानून मंत्रालय ने प्री–कन्सेप्शन एण्ड प्रीनेरल डायग्नोस्टिक टेक्नीवस (प्रोहिबिशन ऑफ सेक्स सलेक्शन) कानून, 1994 बनाया।

इस कानून के अनुसार धड़ल्ले से चल रहे जेनेटिक काउन्सलिंग सेन्टर्स, जेनेटिक लेबरेटरीज तथा जेनेटिक क्लीनिक्स पर रोक लगाई गई। इन सबको चलाने के लिए इनका रजिस्ट्रेशन अनिवार्य किया गया। रजिस्ट्रेशन के बाद ही इनका प्रयोग सिर्फ तभी किया जा सकता था, जब भावी माता किसी तरह की ऐसी असमान्यता या बीमारी की शिकार हो, जो बच्चा तथा जच्चा के जीवन के लिए खतरनाक है। इन सब दोषों को पाए जाने के पश्चात् भी (1) स्त्री की उम्र 35 वर्ष से ज्यादा हो, (2) गर्भवती स्त्री के 2–3 गर्भपात खुद–ब–खुद हो गए हों, (3) गर्भवती स्त्री ड्रग्स, रेडियेशन, इन्फेक्शन या केमिकल से प्रभावित हो, (4) स्त्री या उसके पति के परिवार का मानसिक रोगी होने का इतिहास हो या और कोई महत्वपूर्ण कारण हो। इसके अलावा गर्भवती स्त्री की लिखित सहमति गर्भपात के लिए हो।

इस कानून के उल्लंघन की सजा तीन वर्ष सश्रम कारावास तक है।

इस कानून में 2003 में संशोधन भी लाया गया है, पर इस कानून का अपेक्षित लाभ नगण्य हैं। कारण है–इस कानून को क्रियान्वित करने में किसी की रुचि नहीं है। परिवार, समाज, डॉक्टर, पुलिस–प्रशासन सभी का 'माइन्डसेट' इस मामले में एक जैसा है। सभी बेटे की चाह रखते हैं, बेटी की नहीं। अतः जब भी इस प्रथा की रोक–थाम, कानून को पालन करने की बात आती है, सबकी एक–दूसरे के साथ समानुभूति रहती है। गर्भपात करते वक्त सबसे ज्यादा डॉक्टर दोषी नजर आते हैं जो कुछ हजार रुपयों के लिए गर्भपात कर देते हैं। वे काफी पढ़े–लिखे समृद्ध है। उन्होंने हर एक की जान बचाने की शपथ खाई होती है–उनके द्वारा इस तरह बालिका भ्रूण हत्या करना शर्मनाक है।

सन् 2005 में स्त्रियों को शारीरिक, यौन, मौखिक, भावनात्मक आर्थिक हिंसा से मुक्त कराने, सुरक्षित रखने का वादा किया।

इस कानून के आने से पहले घर के अंदर स्त्रियों की सुरक्षा का कोई मतलब नहीं था। वे घर के अंदर, घर के लोगों द्वारा प्रताड़ित होने के लिए मजबूर थीं। उन्हें भर पेट खाना नहीं देना, शिक्षा पाने के अवसर नहीं देना, उनके हिस्से की संपत्ति का खुद के लिए उपयोग करना, उन्हें गाली–गलौज, ताने देना, मारना–पीटना या यौन हिंसा तक का प्रयोग करना जैसे आम बात है। यह सब कुछ घर के अंदर की बात है या आपस की बात है, कह कर कोई भी अपराध करना सामान्य सी बात है। पर इस कानून ने इस स्थिति में बदलाव किया है।

इस कानून के अनुसार घर में रहने वाली बच्ची, पत्नी, माँ, बुआ, चाची या लिव–इन–रिलेशनशिप (सहजीवन) में रहने वाली स्त्री यदि किसी भी प्रकार घर के किसी सदस्य द्वारा प्रताड़ित होती है तो वह अदालत की शरण ले सकती है।

इस कानून में पहली बार, पीड़ित स्त्री द्वारा पुलिस या अदालत में न जा पाने की स्थिति में वह 'सर्विस प्रोवाइडर' या 'प्रोटेक्शन ऑफिसर' को सूचित कर सकती है, जो उसकी कंपलेंट मजिस्ट्रेट के यहां फाइल कर उसे आर्थिक सहायता, प्रताड़ना से रक्षा, समुचित इलाज, स्त्री–धन प्राप्त करवाना, शिक्षा पाने की सुविधा प्राप्त करना, नौकरी करने की स्वतंत्रता, साथ घर में सुरक्षित रहने या अलग घर लेकर रहने (जिसका खर्च उसको प्रताड़ित करने वाला देगा), हर्जाना दिलवाने आदि का आदेश अदालत से ला कर दे सकता है।

इस पूरी प्रक्रिया को संपन्न होने में कानूनन 2 महीने लगते हैं तथा तत्काल रिलीफ देने लायक स्थिति में बिना विपक्षी को सुने ही, रिलीफ दी जा सकती है। वैसे तो यह सारी प्रक्रिया 'दीवानी' है, पर यदि अदालती आदेश का विपक्षी द्वारा उल्लंघन किया जाता है तो एक वर्ष की सजा का प्रावधान भी है।

इस कानून में समझौता, बीच–बचाव कराने का प्रावधान है। मूल बात है कि परिवार का वातावरण सौहार्दयपूर्ण हो, कोई भेदभाव या मनमानी न हो। पहले यह समझा गया था कि प्रताड़ित करने वाला घर का पुरुष सदस्य ही होगा, पर अब अदालत ने साफ कर दिया है कि घरेलू हिंसा स्त्रियों द्वारा भी की जाती है और उनके विरुद्ध भी मामला चल सकता है।

यह कानून स्त्रियों पर किसी भी प्रकार की हिंसा होने पर त्वरित न्याय दिलाने के लिए बनाया गया, पर यहां भी अदालती कार्यवाही वर्षों चल रही है। इसके अलावा इस कानून का प्रयोग शहरों में हो रहा है, जबकि ग्रामीण समाज, जहां घरेलू हिंसा बड़े पैमाने

पर व्याप्त है, वहां इसका प्रयोग नहीं के बराबर है, कानून वहां अदालती इन्फ्रास्ट्रक्चर ही नहीं है।

सन् 2005 में ही हिन्दू उत्तराधिकार (संशोधन) कानून, 2005 आया। इस कानून की धारा–6 के अनुसार स्त्रियों को जन्म के साथ ही, पुश्तैनी संपत्ति पर घर के पुरुषों की तरह उत्तराधिकारी बना दिया गया। पुश्तैनी संपत्ति पर लड़कियों को वही अधिकार मिल गए जो अब तक लड़कों के रहे हैं। भले ही लड़कियों के दायित्व भी लड़के के समान हो गए।

यह सर्वविदित है कि आज पुरुष का वर्चस्व समाज में है, तो यह उसका संपत्ति पर मालिकाना हक होने की वजह से ही है। धन–संपत्ति से वंचित व्यक्ति वैसे ही काफी कमजोर स्थिति में होता है और यही हालत एक ही घर की संतान होते हुए भी स्त्री की होती है। उसे न चाहते हुए भी पुरुष की गुलाम होने के लिए मजबूर होना पड़ता है।

पूरे देश में यह संशोधन 2005 में आया पर भारत के कुछ राज्यों, जैसे कर्नाटक में यह संशोधन 30–7–1994 से; आंध्रा में 5–9–1985 से; तमिलनाडु में 25–3–89 से तथा महाराष्ट्र में 22–6–1994 से ही आ गया था। कहना न होगा कि ये राज्य स्त्रियों के मामलों में ज्यादा प्रगतिशील तथा अग्रजी रहते हैं।

पर दुःख के साथ कहना पड़ता है कि पुश्तैनी संपत्ति में बेटी को बेटे के बराबर का अधिकार अभी मात्र कागजों पर ही है। जो भी बेटी इस अधिकार की मांग करती है, उसके सबसे पहले तो, घर से रिश्ते टूट जाते हैं, और कहीं–कहीं उसे मुकदमे सामने हैं जिसमें भाई ने शादी के दिन बहन का कत्ल इसलिए कर दिया कि वह संपत्ति में से अपना हिस्सा मांग रही थी। पुरानी मान्यताओं को मानने वाले लोग कहते हैं–'पैतृक संपत्ति में से बेटियों को हिस्सा देने की बात ही नहीं उठती। मैंने अपनी संपत्ति अपने भतीजे के नाम एक लिख दी है जिससे कि हमारी संपत्ति हमारे पास रहें।' एक पंचायत में वहां की दो बेटियों द्वारा संपत्ति के हिस्से को मांगने के लिए अदालत की चौखट लांघना मंहगा पड़ा। उनके घर वाले कहते हैं– ''उन्होंने हमारे घर की इज्जत मिट्टी में मिला दी। पूरे गांव के सामने हमारी आंखें झुक गई है।'' हर किसी के गांवों में लड़कियों को संपत्ति के नाम पर कुछ दे देना अत्यंत शर्म की बात समझी जाती है। भाइयों के खिलाफ जाकर पैतृक संपत्ति में से हिस्सा मांगना, उनका हिस्सा छीनना, लड़कियों के लिए पूरे समाज में अपनी नाक कटवाने जैसा है।

यहाँ तो खैर अति है, पर भारत के अधिकांश राज्यों में ऐसा कम ही होता है कि अभिभावक अपने–आप बच्चों में बराबरी से संपत्ति का बंटवारा कर दें या मांगने पर चुपचाप, संबंध बिना खराब किए हिस्सा दे दें। कैसे यह कानून काफी अच्छा और स्त्रियों में भेदभाव की स्थिति को लगभग समाप्त कर देने वाला है, पर यह तब तक नहीं होगा जब तक इसका क्रियान्वन न हो। और इसके लिए सरकार को घरेलू हिंसा कानून की तरह 'सर्विस प्रोवाइडर' या 'प्रोटेक्शन ऑफिसरों' की नियुक्ति करनी होगी जो बेटियों को उनकी संपत्ति के हिस्से के आदेश को अदालत से निर्गत करवा कर घर पर लाकर दे सके।

हिन्दू एडॉप्शन एण्ड मेन्टेनेन्स एक्ट, 1956 के अनुसार पहले पति बच्चे को गोद ले सकता था और उसे इसके लिए पत्नी की सहमति लेनी पड़ती थी। पर पत्नी, पति के जिन्दा रहते बच्चा गोद नहीं ले सकती थी। यह प्रावधान पत्नी को पति के सामने समानता का अधिकार नहीं देता था। पर इस असमानता को एडॉप्शन एक्ट की धारा–8 ने 31–8–2010 से समाप्त कर दिया। अब पत्नी भी अपने पति की सहमति से बच्चा गोद ले सकती है। उस पर भी वे ही अन्य शर्तें लागू होगी जो एक पति पर लागू होती है।

वैसे एक गैर शादीशुदा, तलाकशुदा, विधवा, जिसके पति ने सन्यास ले लिया हो या जिसे सक्षम अदालत द्वारा पागल घोषित कर दिया गया हो, जो स्वस्थ मस्तिष्क की हो, बालिग हो, पहले भी बच्चा गोद ले सकती थी। इस ग्रुप में वह स्त्री शामिल नहीं थी जो शादीशुदा है और जिसका पति जीवित हैं अब यह बाधा दूर हो गई है– जो स्त्री को एक अतिरिक्त सम्मान तथा हिम्मत प्रदान करती है।

इसी प्रकार पहले पिता अकेला ही अपने बच्चे को गोद ले सकता था, पत्नी की सहमति आवश्यक नहीं थी, पर अब उसे पत्नी की सहमति, बच्चा गोद देने के पहले होगी। हिन्दू मैरिज एक्ट, 1955 में 24–9–2001 से संशोधन लाकर एक महत्वपूर्ण प्रावधान जोड़ा गया है। इसके अनुसार किसी भी प्रकार की अदालती कार्यवाही, जो इस कानून से संबंधित है, के अंतर्गत यदि अदालत को यह लगता है कि पत्नी के पास कोई आय का स्रोत नहीं है तो वह मुकदमे का खर्च तथा भरण–पोषण की मांग किए जाने पर, प्रतिपक्षी को नोटिस मिलने के बाद से 60 दिनों के अंदर पत्नी को प्रतिपक्षी से खर्च दिलवाएगी।

(वैसे यह प्रावधान पत्नी के आर्थिक रूप से सुदृढ़ होने तथा पति को आर्थिक रूप से बदहाल होने पर, पत्नी पर भी लागू होता है।)

यह एक ऐसा प्रावधान है जिसका लाभ अक्सर पत्नियों को प्राप्त होता है। खर्च मिलने पर पत्नी भी अपना मुकदमा अच्छी तरह लड़ सकती हैं। ऐसा न होने पर एक तरफा फैसला होना आम बात हो जाती है। इस प्रावधान पर कर्नाटक उच्च न्यायालय का फैसला भी है–आर. सुरेश बनाम चन्द्रा एम.ए.–ए.आई.आर. 2003, कर्नाटक 183.

संयुक्त परिवारों के टूट जाने पर भारत में वृद्धों का जीवन अत्यन्त कठिन हो गया है, खास कर विधवाओं का जीवन। उन्हें अपना जीवन अकेले, बिना किसी भावनात्मक सहारे के और अक्सर बिना पैसे के गुजारना पड़ता है। इसी वजह से आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा–125 के रहने के बावजूद सरकार को 2007 में 'मेन्टेनेन्स एण्ड वेलफेयर ऑफ पेटेन्टस एण्ड सीनियर सिटिजन्स एक्ट' लाना पड़ा। इस कानून की वहज से अब माता–पिता तथा सीनियर सिटिजन उन लोगों से (जिन्हें उनकी संपत्ति मरणोपरान्त प्राप्त होगी)– बच्चों से भरण–पोषण, दवा, सिर पर एक छत की मांग अदालत द्वारा कर सकते हैं। ये सीनियर सिटिजन वे हैं, जिनके पास धन तो है पर जिनके बच्चे नहीं हैं–दूर–दराज के वे रिश्तेदार हैं जिनके पास उनकी संपत्ति मरणोपरान्त चली जाएगी। यह तो स्थिति उनकी है जिनकी धरोहर बच्चों और रिश्तेदारों को जानी है, पर यदि ऐसा नहीं है, तब भी जिनके पास संपत्ति नहीं है, वे राज्य से अपनी देख–रेख की मांग कर सकते हैं।

यह कानून सन् 2008 से लागू हुआ है। इसके अनुसार 'बच्चे' वे हैं, जो वृद्धों के पुत्र–पुत्री, पोता–पोती हैं, पर इनमें नाबालिक बच्चे शामिल नहीं हैं। यहां भरण–पोषण का अर्थ है–भोजन, कपड़े, घर, चिकित्सा आदि। माता–पिता का अर्थ है–माता–पिता, जैविक, गोद लेने वाले, सौतेले पिता या सौतेली माता–भले ही माता–पिता वृद्ध न हो। 'सीनियर सिटिजन' का अर्थ है, वह जिसकी आयु 60 वर्ष या उससे ज्यादा है। 'रिश्तेदार' का अर्थ है–जिसके खुद के बच्चे नहीं हैं, पर जिसकी संपत्ति, उसकी मृत्यु के बाद वारिसों के पास चली जाएगी।

ऐसे वृद्ध जिन्हें भरण–पोषण की जरूरत हैं, वे 'मेन्टेनेन्स ट्रिब्यूनल' के पास खुद शिकायत पत्र डाल सकते हैं। यदि वे जाने में असक्षम हैं तो किसी और व्यक्ति को या किसी संस्था को अधिकार पत्र दे कर शिकायत पत्र डलवा सकते हैं या ट्रिब्यूनल खुद ही शिकायत दर्ज कर सकती है, यदि उसे किसी माध्यम से पता चले कि कोई वृद्ध या वृद्धा अभावों में जी रही है।

ट्रिब्यूनल प्रतिपक्षी को नोटिस मिलने के 90 दिनों के अंदर, मामले की जांच कर भरण–पोषण का अधिकार दिलवा सकती है।

यदि आदेश के बावजूद बच्चे या रिश्तेदार आदेश का पालन नहीं करते हैं तो प्रतिपक्षी के विरुद्ध वारण्ट निर्गत किया जा सकता है और उसे भरण–पोषण देने के लिए बाध्य किया जा सकता हैं।

इसके अलावा जिनका कोई नहीं है, उनके लिए राज्य सरकारें वृद्धाश्रम बनायेगी। ऐसे आश्रमों को हर जिले में बनाने की योजना है, जहां कम–से–कम 150 वृद्धों को रखा जा सकेगा। ऐसे लोगों को सरकारी अस्पतालों में रख कर इलाज करवाने का प्रावधान है। उनके लिए अलग लाईन लगने आदि की व्यवस्था का प्रावधान भी है।

इस कानून की जानकारी अब लोगों को हो रही हैं, पर आज भी भारत में वृद्ध माता–पिता बच्चों के खिलाफ मुकदमा करने में हिचकिचाते हैं। वे कहते हैं कि अपने ही बच्चों के खिलाफ कैसे वारण्ट निकलवाएं। वैसे अदालतें ऐसे लाचार लोगों की पूरी मदद देने में तत्पर रहती हैं। एक माँ, दादी को जिंदगी की शाम अच्छी तरह बिताने की व्यवस्था कर सरकार ने एक महत्वपूर्ण कानून दिया है। आशा की जाती है कि मथुरा, वृन्दावन, ऋषिकेष, हरिद्वार जहां वृद्ध माताओं, दादियों को हजारों की संख्या में भिखमंगों की तरह जीवन व्यतीत करना होता है, राज्य सरकारें अविलंब वृद्धाश्रम तथा अस्पताल की सुविधाएं देंगी। सन् 2006 में चाइल्ड मैरिज रेस्ट्रेक्ट एक्ट आया। यह कानून सबसे पहले 1929 में लाया गया था। उस समय भारत की गुलामी का समय था। ज्यादातर बच्चों के विवाह दूध पीते उम्र में ही हो जाता था। ऐसे विवाहों को धार्मिक स्वीकृति प्राप्त थी, पर इसके कुपरिणाम भी देखने में आते थे। छोटी सी उम्र में 'विधवा' होकर बड़ी कठिन परिस्थितियों में लड़कियाँ अपना जीवन गुजारने पर मजबूर थीं। विवाह का यह स्वरूप ब्रिटेन में कभी नहीं रहा। इसके बाद इस कानून का संशोधित रूप 1949 में तथा फिर 1978 में आया। इन कानूनों के सहारे धीरे–धीरे विवाह की उम्र बढ़ाई गई।

पर जिस मात्रा में बाल विवाहों को रोका जाना था, वैसा 1978 के कानून से नहीं हो पाया। इसीलिए 2006 में बाल विवाह कानून में और भी संशोधन किए गए।

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने 2001–2002 में कुछ सुझाव दिए, जो उसकी गहन सोच और अध्ययन पर आधारित हैं। केंद्रीय सरकार ने राज्य सरकारों, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग तथा राष्ट्रीय महिला आयोग की सभी अनुशंसाओं को मान लिया तथा नया कानून दिया।

इस कानून के कुछ महत्वपूर्ण बिन्दु निम्नलिखित हैं :–

(1) यदि बाल विवाह हो जाता है, चाहे इस कानून के आने के पहले या बाद में, तो ऐसा विवाह उस पक्ष के चहने पर निरस्त करवाया जा सकता है जो विवाह के समय बालक था। पर इस मामले में किसी स्त्री को सजा नहीं होगी। बाल विवाह को बढ़ावा देने वाले तथा बाल विवाह करवाने वाले व्यक्ति को 2 वर्ष तक की सजा तथा 1 लाख रुपए तक जुर्माना लगाया जा सकता है। (धारा–3)

(2) बाल विवाह के निरस्त हो जाने पर बालिका वधू का पालन–पोषण भत्ता उसके पूर्व पति (यदि वह बालिग है) को देना होगा जब तक कि बालिका वधू का पुनर्विवाह नहीं होता और यदि पूर्व पति नाबालिग है तो यह भार पूर्व पति के पिता या अभिभावक को उठाना होगा। पूर्व बालिका वधू को कितना भत्ता मिलेगा इसका निर्णय जिला अदालत करेगी। इसके साथ पूर्व बालिका वधू इस कालावधि में कहां रहेगी– यानी घर–इसका निर्णय भी अदालत करेगी। (धारा–4)

(3) इस प्रकार यदि बाल विवाह के फलस्वरूप किसी बच्चे का जन्म हो जाता है तो यह बच्चा कहाँ रहेगा– किसके पास रहेगा, इसका निर्णय भी जिला अदालत करेगी। यह निर्णय जिला अदालत द्वारा लिया जाएगा और इसमें बच्चे की अच्छी परवरिश, उसका कल्याण ही वह बिन्दु होगा जिस पर पर बच्चे की 'कस्टडी' का निर्णय होगा। (धारा– 5)

(4) बाल विवाह के परिणामस्वरूप हुए बच्चे, भले ही इस कानून से पहले या बाद में या तो गर्भ में आए या जन्म हुआ–पति–पत्नी का विवाह–बाल विवाह होने की वजह से निरस्त होने के बावजूद–बच्चों के कानूनन वैध होने पर कोई प्रश्नचिह्न नहीं लगेगा। वे हर हालत में अपने माता–पिता की वैध सन्तान ही कहलाएंगे।

यह स्पष्ट है कि यह कानून बाल विवाह (खासकर लड़कियों के लिए) पर अच्छी रोक लगाता है– दोनों ही तरफ के अभिभावकों को चेताता है कि यदि वे इस तरह के विवाह करवाते हैं तो उन्हें नतीजा भोगना पड़ेगा। इसके अलावा इस रोक से लड़कियों को शिक्षा से वंचित नहीं होना पड़ेगा, उनका विवाह कम–से–कम 18 वर्ष की उम्र में होगा, जिससे उनका शारीरिक, मानसिक उत्पीड़न रुकेगा। कम उम्र में विवाह, बच्चे लड़कियों के जीवन से खेलने जैसा है और ऐसा होने पर न तो उनका सशक्तिकरण हो सकता है और न ही विकास। इस दिशा में यह एक बड़ा कदम है।

भारत में, बच्चों पर यौन अपराधों की संख्या में पिछले कुछ वर्षों में, काफी बढ़ोत्तरी हुई है। पहले के कानून में बालिग और बच्चों, पर अपराध में कोई खास अन्तर नहीं था।

न तो बारिकी से छोटे–बड़े अपराधों का फर्क किया जाता था और न ही बच्चों के मामलों में काफी सख्त सजा का प्रावधान था। यौन छेड़–छाड़ के सभी मामले एक 'जेनरल' भारतीय दंड संहिता की धारा–354 में आते थे और उसकी सजा अधिकतम 2 वर्ष थी। अपराध जमानतीय था और शायद ही अधिकतम सजा अपराधी को मिलती थी। हरियाणा के डी.जी.पी. राठौर के मामले में रुचिका गहरोत्रा को जिस तरह न्याय न पाने पर जान तक देनी पड़ी, वह सर्वविदित है। एक ही तरह के अपराध में बालिगों की अपेक्षा बच्चों के मन में यह अपराध जिस तरह का असर डालता है, वह उनका बचपन, जवानी, सम्पूर्ण व्यक्तित्व ही नष्ट–भ्रष्ट कर देता है। अपराधी भी कम सजा, क्रम रिपोर्टिंग का लाभ उठाकर बच्चों को आसान शिकार समझते हैं। बलात्कार की पुरानी परिभाषा भी बच्चों के मुकदमों को कमजोर करती थी। मानव–अंग के प्रयोग के अलावा जिन वस्तुओं का प्रयोग यौन उत्पीड़न में होता है–उन्हें भी बलात्कार की व्याख्या में शामिल करने की मांग लंबे समय से हो रही थी। इन सबको ध्यान में रख कर अब किसी भी प्रकार का यौन उत्पीड़न 'बलात्कार' में शामिल किया गया है।

बच्चों के लिए अब अलग से ''यौन अपराधों से बच्चों की सुरक्षा कानून, 2012'' लाया गया है।

इस कानून के अनुसार बच्चों से किसी भी प्रकार की यौन छेड़–छाड़ किसी के भी द्वारा, उनका यौन शोषण के लिए व्यापार या उनकी पोर्नोग्राफी गंभीर अपराध है, जिसकी सजाएं पहले से काफी ज्यादा है। तीन वर्ष सश्रम कारावास से लेकर आजीवन कारावास तक। इस कानून के अनुसार पुलिस परिसर में पुलिस द्वारा, आर्मड फोर्सेस, सिक्युरिटी फोर्सेस के परिसर में या कहीं ओर फोर्सेस के द्वारा, किसी पब्लिक ऑफिसर द्वारा, जेल के स्टाफ या मैनेजमेंट द्वारा, रिमाण्ड होम, प्रोटेक्षन होम, ऑब्जरवेशन होम में रह रहे बच्चे के साथ स्टाफ या मैनेजमेंट के लोगों द्वारा, सरकारी या गैर–सरकारी अस्पताल के स्टाफ या मैनेजमेंट के लोगों द्वारा या शैक्षणिक संस्थान तथा धार्मिक संस्थान के लोगों द्वारा बच्चे का यौन शोषण गंभीर अपराध है।

इस कानून में पहली बार धार्मिक संस्थान में हो रहे या होने वाले बाल यौन शोषण की बात की गई है। 2013 में एक धार्मिक संस्थान के व्यवस्थापक के विरुद्ध, इस कानून के अन्तर्गत की गई कार्यवाही ने पूरे देश में सनसनी पैदा कर दी है। बच्चे वैसे भी शारीरिक, मानसिक तौर पर कमजोर तथा निरीह होते हैं। उन्हें बहलाकर, फुसलाकर, लालच देकर अपने वश में करना आसान होता है। वे नहीं जानते वे क्या कर रहे हैं, उनके साथ क्या हो रहा है, पर ऐसे शोषण के कुपरिणाम उन्हें जीवन भर भोगने पड़ते हैं। उनकी कम समझ और लाचारी को देखते हुए इस कानून में यह प्रावधान भी लाया

गया है कि किसी मीडिया, होटल, लॉज़, हॉस्पिटल, क्लब, स्टूडियो–फोटोग्राफिक फैसिलिटी वाली जगहों में काम करने वालों की यह जिम्मेदारी है कि वे जहां भी बाल यौन शोषण के चिह्न पाऐं फौरन पुलिस या स्पेशल जुवेनाईल पुलिस युनिट को खबर कर बच्चे की रक्षा के लिए कदम उठाएं। ऐसा न करने पर छः महीने तक सजा भी हो सकती है।

इसी प्रकार 16 दिसम्बर 2012 को 'निर्मया' का सामूहिक बलात्कार होने के बाद भारत में एक जन आन्दोलन उमड़ने के बाद 'वर्मा कमिटी' ने बलात्कार तथा अन्य अपराधों की संख्या में बेतहाशा बढोतरी के कारण और निदान का अध्ययन किया। इस कमिटि ने रेकॉर्ड समय में 'क्रिमिनल लॉ (एमेन्डमेण्ट)एक्ट, 2013 बनाया, जो 2 अप्रैल, 2013 को आ गया। इस कानून ने आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872, भारतीय दंड संहिता तथा 'यौन अपराधों से बच्चों की सुरक्षा, 2012 में महत्वपूर्ण संशोधन किए।

भारतीय दंड संहिता की धारा 100 में सातवां क्लॉज जोड़ा गया, जिसमें जानबूझकर किसी पर तेजाब फेंकना तथा तेजाब फेंकने या पिलाने का प्रयास करना, जिससे गंभीर चोट पहुंचने का खतरा हो, जोड़ा गया। सजा बढ़ाई गई। भा. दं. स. की धारा 166 में धारा 166 ए तथा 166–बी भी जोड़े गए। महिलाओं से संबंधित अपराधों में पुलिस द्वारा एफ. आई. आर. न रिकॉर्ड करने पर पुलिस अधिकारी को दो वर्ष तक की सजा का प्रावधान लाया गया। पीड़िता का इलाज न करवाने की सजा पुलिस अधिकारी के लिए 1 वर्ष कारावास की गई। भा. दं. सं. की धारा 354 (अश्लील छेड़–छाड़) की सजा बढ़ा कर 3 वर्ष की गई। साथ ही अश्लील छेड़–छाड़ की परिभाषा में बदलाव किया गया। पहले की तरह, किसी भी किस्म की छेड़–छाड–यौन हमले इसमें नहीं रहे बल्कि शारीरिक कॉन्टैक्ट या ऐसे पास आने की कोशिश, जो अस्वीकार्य है–काफी स्पष्ट है, इन्हीं तक सीमित किया गया। इसके अलावा इसमें यौनेच्छा जाहिर करना, महिला की इच्छा के विरुद्ध पोर्नोग्राफी दिखाना या द्विअर्थी शब्दों, जिसमें यौनिक भाषा का इस्तेमाल है, को अपराध माना गया। इसके अलावा 'स्टाकिंग' लगातार पीछा करना, 'वोयेरिज्म'–स्त्री को उसके एकान्त स्थल में बिना कपड़ों के देखने की कोशिश, उसकी इस अवस्था में फोटो खींचना आदि भी जोड़े गए। इसमें भी सजा को तीन वर्ष से 5 वर्ष तक का प्रावधान जोड़ा गया।

बलात्कार' की परिभाषा बदली गई। ताउम्र जेल में रहने की सजा दी गई है।

पर आश्चर्य की बात यह है कि जितना इलाज किया गया, मर्ज बढ़ता ही गया। निर्मया के मामले के बाद लगता था कि लोग स्त्रियों के प्रति इस घिनौनी हरकत से

बाज आएंगे, कड़े कानूनों का उन पर असर होगा, पर हुआ उलटा ही। स्त्रियों पर ऐसे अपराधों की संख्या कई–कई गुना बढ़ गई। बच्चियों को भी नहीं बख्शा गया। और तो और, नाबालिग अपराधियों ने भी इस तरह के अपराधों से खुद को दूर नहीं किया।

वास्तव में कड़े कानूनी प्रावधान अपराधियों का मनोबल नहीं गिराते। जब तक लॉ इन्फोर्सिंग ऐजेन्सीज–पुलिस, 'प्रासिक्यूशन' तथा न्यायपालिका अपना कर्तव्य सफलतापूर्वक नहीं निभाती–स्त्रियों की सुरक्षा नहीं हो सकती। 'कन्विक्शन रेट' इन मामलों में 24 प्रतिशत से कम है तथा अभियुक्तों की रिहाई 76 प्रतिशत है। एफ. आई. आर. होने में देरी, आधा–अधूरा एफ. आई. आर. दर्ज होना, मामले की जांच में बहुत सारी खामियों का होना, फैसला आने में काफी देर होना, गवाहों का देरी के कारण अपने बयान से पलटना, उन्हें अपराधियों द्वारा धमकाया जाना, उनकी सुरक्षा का इंतजाम न होना, स्त्रियों के साथ एक तरह की लापरवाही बरतना, उनके प्रति पूर्वाग्रहों से भरा होना आदि–आदि के कारण हैं, जिनकी वजह से अपराधियों को अपने जीत जाने का पूरा विश्वास हो जाता है।

कानून में अनेक प्रगतिशील तथा आवश्यक सुधारों के समावेश होने के बावजूद व्यवहारिकता में पुलिस, अदालत द्वारा उन उपायों की अनदेखी करना भी स्त्रियों के प्रति अन्याय है। जैसे हाल ही में मुंबई में हुए शक्तिमील के सामूहिक बलात्कार की शिकार लड़की को अनावश्यक रूप से वे पोर्नोग्राफी क्लिप्स कोर्ट में दिखाए गए, जिन्हें अपराधियों ने उसे बलात्कार के पहले देखने के लिए मजबूर किया था। नतीजा वही निकला जिसकी आशा थी। लड़की वहीं बेहोश हो गई। क्या इन क्लिप्स को दिखाना जरूरी था अपने ऊपर हुए बलात्कार को साबित करने के लिए? बिल्कुल नहीं, फिर ऐसा क्यों हुआ और किस कानून के अन्तर्गत। इसके अलावा उसको अदालत बुलाने की जरूरत भी नहीं थी। वीडियो कॉन्फ्रेसिंग से उसका बयान लिया जा सकता था। यह सब कहीं 'परवर्स प्लेजर' के लिए तो नहीं था।

जिस तरह बाल पीड़ितों के अभियुक्त के सामने नहीं लाया जाता, वैसा ही कुछ बालिग पीड़ितों के लिए भी किया जाना चाहिए। कार्यस्थल पर हुए पीड़ितों को भी अभियुक्तों के सामने करने की इजाजत नहीं है। वास्तव में यही तरीका हर प्रकार की यौन पीड़ितों के साथ करने की जरूरत है। यह सचमुच एक दुःखद स्थिति है कि घर से लेकर, समाज, पुलिस, अदालतें एक सुर में दोहराते पाए जाते हैं कि लड़की को रात में नहीं निकलना चाहिए, मित्र के साथ नहीं होना चाहिए, पर्याप्त कपड़े पहनने चाहिए, आदि–आदि। यही 'माइण्डसेट' हर जगह काम करता है–जिसका नतीजा है महिलाओं का पढ़ना–लिखना, बाहर काम करना–डर से भरा होता है।

जिस रफ्तार से महिलाओं के सशक्तिकरण, उनके विकास के लिए कानून बने हैं, लगता है भारत में महिलाओं की हर तरह की सुविधा–सुरक्षा प्राप्त है। वे महिलाएं, जिनका सशक्तिकरण तथा विकास हुआ है, वे पहले से ही ऐसी जगहों से आती हैं जहां मुश्किलें कम हैं, सुविधाएं अधिक हैं, पर बात उन स्त्रियों की है जो मध्यम या निम्न वर्ग से हैं। वे अथक प्रयास कर रही हैं शिक्षा प्राप्त करने की, बाहर नौकरी कर खुद अपने पांवों पर खड़े होने की, पर उनका मनोबल तोड़ने के पूरे तंत्र तैयार है। उनकी आधी शक्ति खुद को सुरक्षित रखने में चली जाती है। कुछ कर भी जाती हैं तो निर्मया की तरह, शक्तिनगर मिल की पीड़िता की तरह जान दे देती है, फिर खड़े होने की कोशिश करती है। चेन्नई की विनोधिनी की तरह तेजाब से जला दी जाती है, जिन्हें अन्ततः मरना पड़ता है। बलात्कार, ईव टीजिंग, दहेज–हत्या, तेजाब फेंकने की घटनाएं और न जाने कितने तरह के अत्याचार, समाज व्यवस्था का पूर्वाग्रह उनके विकास और सशक्तिकरण में बेड़ियों की तरह काम करती है।

कहना न होगा महिला सशक्तिकरण तथा विकास का अर्थ अलग–अलग वर्गों की स्त्रियों के लिए अलग–अलग है। भारत में इन वर्गों की संख्या सैकड़ों में है। प्रथम वर्ग में महिला राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, न्यायाधीश, वकील, चिकित्सक है तो अंतिम वर्ग में वह एक 'डायन' घोषित हो जाती हैं, जहां उसके बाल काट कर, निर्वस्त्र कर गलियों में घुमाया जाता है, पीटते–पीटते मार दिया जाता है। (लाहौर दंगा रांची का एक मामला– 5–11–13) : किसी वर्ग में बेटी का अपनी इच्छा से विवाह कर पति के घर जाना इतना बड़ा मामला बन सकता है कि पिता–उसका मित्र ही, बेटी के साथ सामूहिक बलात्कार कर मौत के घाट उतार देते हैं (5:11:2013), पूरे देश में गरीब लड़कियों की खरीद–बिक्री महज 5–10 हजार रुपयों में हो रही है, जिनमें आदिवासी, बंगाली, बिहारी, उड़िया लड़कियाँ बहुतायत में हैं। वे लड़कियाँ घरेलू काम, यौन हिंसा, शारीरिक हिंसा का शिकार होती हैं, बहुत कम मामलों में उन्हें बचाने की कोशिश होती है।

गरीब भारतीय महिलाओं को 'सरोगेसी' माँ भी बनना पड़ता है। यह अब एक व्यापार हो गया है, जिसका आकार–प्रकार काफी विस्तृत है। यह सब स्त्रियों का सशक्तिकरण या विकास तो हर्गिज नहीं है। असल में, नारी का सशक्तिकरण तथा विकास तब होगा, जब इसकी पहुंच हर जगह हो–हर वर्ग के पास हो, वह सुरक्षित रहकर पुरुष के समान बिना किसी हिचक के अपनी उन्नति कर पाए।

* * *

किराये की कोख का बढ़ता व्यापार एवं महिलाएं

*डॉ. सरोज व्यास

21 वीं सदी में तकनीकी विकास तीव्र गति से हुआ है। इस विकास से मानवीय जीवन ही नहीं मानव शरीर भी प्रभावित हुआ है। कृत्रिम अंगों का निर्माण एवं उनका प्रत्यारोपण आज आम होने जा रहा है। इसी प्रकार इस तकनीकी विकास ने उन महिलाओं के लिए भी आशा की किरण जगाई जो मातृत्व–सुख से वंचित थी। समाज में जहां एक ओर जन्म देने वाली माँ को उच्च स्थान प्रदान कर पूजा जाता है, वहीं जन्म देने में असमर्थ महिला को समाज में घृणा व तिरस्कार का सामना करना पड़ता है। तकनीकी विकास के कारण ऐसी महिलाएं जो मातृत्व सुख से वंचित हैं वे भी किसी दूसरी महिला की कोख का सहारा लेकर आज मातृत्व सुख का आनन्द ले रही हैं।

अमेरिका में आज छात्राएं अपने अंडे प्रजनन हेतु बेच रही हैं। ऐसे–ऐसे कार्टून दिखाई पड़ते हैं जिमनें लिखा गया है कि क्या आप बच्चा पैदा करने जा रहे हैं, अथवा बाहर से निकलवाने का नोटिस देने जा रहे हैं। इस प्रकार किसी वस्तु–निर्माण की तरह बच्चों का निर्माण हो रहा है। विश्व के धनी देशों के लोग कम लागत के कारण बच्चों की चाह में भारत की ओर रूख कर रहे है। कम लागत व लचर कानून इन विदेशी दम्पतियों के लिये वरदान साबित हो रहा है। किराये की कोख में प्रजनन की ऐसी प्रणाली होती है, जिसमें एक महिला दूसरे के भ्रूण को अपने गर्भ में पालकर जन्म देती है। किराये की कोख से बच्चों का जन्म आज सामान्य सा हो गया है। बच्चों के इस प्रकार जन्म ने मानवाधिकारों के क्षेत्र में एक नयी बहस को जन्म दिया है। ऐसा लगता है किसी कारखाने से उत्पादन हो रहा है। आज इस विषय पर आ रहे विज्ञापनों को पढ़ने से ऐसा लगता है, मानो बच्चा न होकर बाजार का एक उत्पाद हो गया है। इस प्रजनन पर्यटन बाजार का भारत में आज अन्तर्राष्ट्रीयकरण हो गया है।

---

*प्राचार्य, फेयरफील्ड इंस्टीटयूट ऑफ मैनेजमेंट एंड टेक्नोलॉजी (सम्बद्ध गु. गो. सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय, दिल्ली)

कानून के जानकारों, समाजशास्त्रियों, चिकित्साविदों, शिक्षाविदों एवं मानवाधिकार वादियों के सम्मुख किराये की कोख के व्यवसायीकरण ने जवलन्त प्रश्न खड़े किये है। यथा–इस प्रकार बच्चों के जन्म से बच्चों एवं उनकी जननी के स्वास्थ्य पर प्रभाव क्या होंगे? विपरित प्रभाव होने पर, उनका समाधान कैसे होगा? इस विधि में दी जाने वाली चिकित्सा/औषधियों के विपरित परिणाम क्या होंगे? इन परिणामों की रोकथाम कैसे होगी? बच्चे को जन्म देने के लिए क्या महिला पर कोई बाहरी दबाव है या वह स्वयं तैयार है? क्या पैसे के लालच में वह दूसरे के बच्चे को जन्म दे रही है? अथवा क्या वह ऐसा अपने पति या सास के दबाव में कर रही है? ऐसा करने से वह महिला सामाजिक जीवन में अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा कर सकेगी? पैसे के लिए यदि महिला अपने शरीर का इस्तेमाल कर रही है तो क्या यह मानवीय गरिमा के अनुकूल है? इस प्रणाली द्वारा जन्म देने से क्या उसके प्रजनन अंगों पर विपरित प्रभाव नहीं पड़ेगा? ऐसे में यदि ज्यादा बच्चों का जन्म हो गया तो क्या होगा? बीच में यदि गर्भपात हो गया तो क्या होगा? गर्भस्थ शिशु के जैविक परिजनों की मृत्यु या तलाक हो जाने पर क्या होगा? जन्म के पश्चात उसे जैविक परिजनों को कब दिया जाना चाहिए? यदि जन्मदात्री बच्चा देने से मना कर दे, तो क्या होगा? क्या धनाड्य लोग इससे गरीबों का शोषण नहीं कर रहे? इस प्रकार जन्म देने वाली महिलाएं अधिकांशतः निरक्षर ही क्यों हैं? जैविक माता यदि जन्म देने में सक्षम हों तो क्या दूसरे की कोख का सहारा लेना उचित है? इस प्रकार जन्में बच्चे पर क्या नस्लवादी परिणाम नहीं होंगे? किराये की कोख के बढ़ते व्यापार को कैसे विधि–सम्मत नियंत्रित किया जा सकता है? इस सम्पूर्ण प्रणाली में कानून के प्रावधान कहाँ–कहाँ, किस प्रकार व कैसे लागू होंगे? वर्तमान में कानून की स्थिति क्या है, क्या प्रावधान हैं, क्या होने चाहिए?

भारत में विदेशी लोगों द्वारा किराये पर कोख लेना आम होता जा रहा है। गुजरात का आनंद क्षेत्र जो कि मक्खन के कारण प्रसिद्ध था, आज प्रजनन पर्यटन के कारण विश्व में प्रसिद्ध होता जा रहा है। यहाँ अमेरिका, कनाड़ा व यूरोप के देशों से आवक बढ़ती जा रही है। यह वस्तृवादी व्यवसाय अब आनंद तक ही सीमित नहीं रहा, अपितु भारत के विभिन्न भागों में इसका विस्तार होता जा रहा है। गरीब, लाचार व अनपढ़ महिलाओं को पैसों के लालच में इस व्यवसाय में या तो भागीदार होना पड़ता है या उनके पति/परिजन परिवार की माली हालत सुधारने के लिए बाध्य करते है। इस व्यवसाय में बिचौलियों की चांदी ही चांदी है। जहां वे इन गरीब महिलाओं की कोख से कमाई करते है, वहीं निःसंतान दंपतियों से माल बटोरकर उनका भी शोषण करते है।

इस पूरी प्रक्रिया में अपनी कोख देने वाली महिला, चिकित्सा केन्द्र कर्मियों व भावी संतान के जैविक परिजनों के बीच एक कानूनी या तथाकथित वस्तुविक्रय रूपी कानूनी समझौते पत्र पर हस्ताक्षर होते है। इस प्रकार तीनों पक्ष सरसरी दृष्टि से कानूनी रूप से इस समझौते की शर्तो का पालन करने को अपने आप को बाध्य करते है। बच्चे के जन्म के पश्चात् उसे उसके जैविक माता–पिता को सौंप दिया जाता है, तथा जन्म देने वाली महिला को कोख के किराये का पूरा भुगतान कर दिया जात है। इस प्रकार इस समझौते की शर्ते पूरी हो जाती है। जैसे–जैसे बच्चा पैदा करने की इस प्रक्रिया का चिकित्सा के क्षेत्र में अंतर्राष्ट्रीयकरण व बाजारीकरण हुआ है, वैसे–ही–वैसे इसे नियंत्रित करना जटिल होता जा रहा है। किराये की कोख देने वाली महिलाओं को समूह में एक नियत स्थान पर भेड़–बकरी की तरह रखा जाता है। उनकी दिनचर्या निर्धारित होती है। प्रारम्भ में उन्हें कुछ पैसा दिया जाता है। बाकी पैसे का भुगतान प्रसव के बाद किया जाता है। इन महिलाओं का खाना–पीना, चिकित्सा, औषधियां, घूमना–फिरना, सोना सब निर्धारित दिनचर्या के अनुसार होता है। सभी गभर्वती महिलाएं रोजाना एक–एक दिन की गणना कर अपनी रिहाई के दिनों की बाट जोहती है। सप्ताह में किसी नियत दिवस को जेल के कैदियों की भांति अपने निर्धारित निवास–स्थान पर अपने परिजनों से मुलाकात कर सकती है, तथा पैरोल की तरह कभी किसी विशेष प्रयोजन हेतु कुछ दिनों के लिये अपने घर जा सकती है। इन बेबस महिलाओं की मानवीय गरिमा इस प्रक्रिया के मध्य खंडित–विखंडित होती है। इनकी हैसियत एक भ्रूण–वाहक मात्र की होती है।

इन महिलाओं का शरीर मानो इनका न होकर पराया हो गया है। इस भ्रूण में न पति के शुक्राणु व न ही अंडा होता है। इस प्रकार उत्पन्न बच्चे से उसका कोई सीधा आनुवांशिक सम्बन्ध नहीं होता है। बच्चे को जन्म देने वाली ऐसी माता का बच्चे पर कोई कानूनी अधिकार भी नही होता। दास–प्रथा के जमाने में भी इसी प्रकार जन्मदात्री का शिशु पर कोई अधिकार नहीं होता था। कई बार उक्त महिलाएं बच्चा देने के बाद भावनात्मक समस्या से उत्नन्न मानसिक रोगों का शिकार हो जाती है। गर्भपात हो गया तो हाथ खाली रह जाता है। वकील का खर्चा उठाना, इनके बूते से बाहर है। ऐसी स्थिति में ये ठगी की ठगी रह जाती है। प्रसव के पश्चात् इन महिलाओं के पतियों का व्यवहार बदलने से इनकी स्थिति दयनीय हो जाती है तथा परित्यक्ता का जीवन जीने को बाध्य होना पड़ सकता है। किराए की कोख से उत्पन्न बच्चों की स्थिति पर भी ध्यान देना अति आवश्यक है। भारत के योजना आयोग ने विगत में सम्बंधित मंत्रालयों, विभागों एंव राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग के साथ बैठक करके इस विषय पर

व्यापक चर्चा एवं विचार–विमर्श किया है। इसमें बच्चे को जन्म देने वाली माँ के स्वास्थ्य सम्बन्धी अधिकारों, भ्रूण–चयन, बच्चों की नागरिकता से सम्बंधित विषयों पर चिंता प्रकट की गई है। बच्चे के अधिकारों की इस समूची प्रक्रिया में अनदेखी आज भी हो रही है।

आज इस समूचे परिदृय को हमें महिला अधिकारों के दृष्टिकोण से भी देखना होगा। पश्चिमी पृष्ठभूमि की ओर जब हम ध्यान देते होते है, तो पाते है कि गर्भपात का कानून ही 1975 में अस्तित्व में आया। यूरोप में इटली से महिलाएं हवाई जहाज से यात्रा करके ब्रिटेन या हॉलैंड गर्भपात हेतु जाती थी। कालान्तर में गर्भपात एवं गर्भ–निरोध सम्बन्धी पहलू प्रजनन अधिकारों का अंग बन गए है। बीजिंग सम्मेलन में पहली बार महिलाओं के अधिकार और मानव अधिकार पर पुरजोर बहस हुई। महिलाओं के प्रजनन के अधिकार ने कब, कैसे, कितने बच्चों को जन्म देना है, या देना भी है या नहीं को इसे विश्वपटल पर मान्यता मिली।

इसी क्रम में यह प्रश्न मुखरता के साथ उठा कि, क्या मातृत्व को जैविक परिभाषा की सीमा में बाँधा जा सकता है? क्या गोद लेने वाली महिला माँ नहीं होती? ब्रिटेन, अमेरिका, कनाड़ा, जापान में कानूनों में विभिन्नता तो है, परन्तु वाणिज्यिक रूप में किराये की कोख लेना प्रतिबंधित है। सऊदी अरब व चीन में भी यही स्थिति है, परन्तु चीन में प्रतिबन्ध के बाद भी इस क्षेत्र में चोरी–छिपे कालाबाजारी पनपती जा रही है। यदि हम यूरोप की बात करें तो, रूसी–गणराज्य में यह वैध है, परन्तु यूक्रेन में मात्र वैवाहिक लोगों के लिए वैध है। ऑस्ट्रेलिया में यह एक कानूनी अपराध है। भारत में प्रभावी कानून के अभाव में विदेशी लोगों ने जैविक उपनिवेशवाद को स्थापित कर लिया है। किराये की कोख से उत्पन्न विषय अपने आप में जटिल ही नहीं अपितु विरोधाभासी भी है। इसकी धुरी का केन्द्र बिंदु पैसा और मात्र पैसा ही है। इसकी नैतिकता पर प्रश्नचिन्ह आम जनता ही नहीं, अपितु धार्मिक संस्थाएं व सरकारें भी प्रश्नचिह्न लगाती है। प्रसव की क्रिया मानो एक नौकरी के जैसी हो गयी है, तथा बच्चा मानो एक उत्पाद होकर ही रह गया है। जैसे किसी वस्तु का क्रय–विक्रय करते समय शर्ते रखी जाती है, कमोबेश यह प्रक्रिया भी इसी बाजारी हिस्से के समकक्ष हो गयी है।

भारत में गरीबी के कारण किराये की कोख देने को तत्पर महिलाएं बहुतायत से उपलब्ध है। ऐसी महिलाएं प्रायः समाज के नीचे के तबके/वर्ग की होती हैं, जिनकी आर्थिक स्थिति अत्यंत दयनीय होती है। समाज में अपनी इज्जत या साख बचाने हेतु प्रायः गुप्त रूप से अपनी कोख किराये पर देती है। ऐसी महिलाओं की स्थिति अत्यन्त पीड़ादायक हो जाती है, जब जन्म के बाद बच्चे के जैविक माता–पिता कतिपय कारणों से बच्चा लेने नहीं आते व अपने बच्चों के साथ इसे पालना उनके लिए संभव नहीं

होता। बच्चे का जन्म होने के उपरान्त जब बच्चा उससे ले लिया जाता है, तो नवजात शिशु जहां स्तनपान से वंचित हो जाता है, वहीं उसकी जननी अपने स्तन में उपस्थित दूध व न पिलाने से होने वाले परिणामों के बारे में मानसिक अवसाद का सामना करती है। भारत में कानून की स्थिति इस समस्या के निदान हेतु अक्षम व लचर है। वर्ष 2002 में सरोगेसी को कानूनी मान्यता प्राप्त हुई।

भारतीय चिकित्सा संगठन (आई.एम.ए.) ने कुछ सिद्धान्त इस हेतु प्रतिपादित किये है, परन्तु इन्हें कानूनी बाध्यता प्राप्त नहीं है। भारत में सम्बंधित पक्षों में जो समझौता होता है, वह वाणिज्यिक समझौते के रूप में होता है, जहां जननी को मात्र देय मुआवजे का उल्लेख होता है। भारत के विधि–आयोग ने इस विषय पर अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की है, परन्तु इस दिशा में प्रगति शून्य है। इसके अतिरिक्त कानून बनने वाला ए.आर.टी. बिल 2010 से अभी भी भारतीय संसद में आगे नहीं बढ़ पाया है। इस प्रकार गरीब महिलाएं अभी भी प्रभावी कानूनी प्रावधानों के अभाव में शोषण का शिकार होने को बाध्य है। भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने 2008 में बेबी मानसी यमादा बनाम भारत सरकार के प्रकरण में किराये के कोख के बढ़ते औद्योगिक स्वरूप के कारण गरीब महिलाओं के होते शोषण पर चिंता प्रकट की है। यहाँ यह भी ध्यान देना होगा कि यदि सरोगेसी पर कठोर कानून बनाए गए तो यह धंधा परदे के पीछे चलेगा जहां शोषण ज्यादा होगा व परिणाम भयंकर होंगे।

वर्तमान में भारत में भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद के द्वारा जारी वर्ष 2005 के दिशा–निर्देश जो अपने आप में पर्याप्त नहीं हैं, कानून का कार्य कर रहे हैं। भारत में विदेशियों की इच्छा के अनुरूप जवान औरतें कम पैसों में उनके भ्रूण को अपने गर्भ में पालकर जन्म देने को बहुतायत में उपलब्ध हैं। इन महिलाओं के धूम्रपान न करने व शराब न पीने की प्रवृति भी इन विदशी दम्पतियों को आकर्षित करती है। एक अनुमान के अनुसार भारत में किराये की कोख का पर्यटन व्यापार तीन बिलियन डॉलर प्रतिवर्ष को भी पार कर रहा है। अपनी कोख से दूसरा बच्चा जन्म देते वक्त किराये की कोख वाली महिलाओं को शल्य चिकित्सा से गुजरना पड़ता है। इस प्रकार इन गरीबों को पैसों के लिए अपना पेट कटवाना पड़ता है। भारत में अनुमानतः 25,000 से ज्यादा बच्चों का जन्म किराये की कोख से हो चुका है, जिसमें 50 प्रतिशत से ज्यादा पश्चिमी देशों के हैं। गरीब महिलाएं अपने स्वास्थ्य पर पड़ने वाले विपरित प्रभावों की चिंता किये बिना लगभग 4000 से 5000 अमेरिकी डॉलर के बदले पैसों की खातिर अपने गर्भ को किराये पर दे देती है। इस प्रकार बच्चे का जन्म जहां पति–पत्नी के सन्सर्ग से होना चाहिए, उससे न होकर किसी और के गर्भ से होता है। विडम्बना यह है, कि जन्म देने में सक्षम

अमीर महिलाएं स्वयं बच्चे को जन्म ने देकर किराये की कोख की ओर रूख करती हैं, जिससे वह प्रसव पीड़ा से बच सकें या उनके शरीर की सुन्दरता बनी रहे।

भारत में उपलब्ध सस्ती एवं आधुनिक चिकित्सा सुविधाओं ने किराये की कोख के व्यापार को नया आयाम दिया है। भारत एक तरह से जैविक उपनिवेशवाद के शिकंजे में जकड़ा जा चुका है, तथा प्रजनन पर्यटन केन्द्र के रूप में भी जाना जाने लगा है। गरीबी तथा कमजोर सामाजिक–आर्थिक स्थिति के कारण महिलाएं बहुतायत में इस बाजार का हिस्सा बन कर अपनी कोख गुमनाम होकर किराये पर देती हैं, जिससे जन्में बच्चे के जैविक माता–पिता के जीवन में खुशियां आ सकें। सभी पक्षों की यह नैतिक जिम्मेदारी बनती है, कि सभी के हितों की रक्षा हो। समझौता जब बराबरी का होगा, तो सभी के जीवन में खुशियों का आगमन होगा।

इस हेतु यह आवश्यक है कि जो भी लिखित कानूनी समझौता सम्बंधित पक्षों के मध्य होता है, उसमें बच्चे के हितों की पूर्ण रक्षा हो, एवं उसका स्वरूप अधिकारों पर आधारित पहल वाला होना चाहिए। जन्म देने वाली माँ की सेहत का बीमा होना चाहिए, जिससे उसके प्रसव के पश्चात् स्वास्थ्य सम्बन्धी हितों की रक्षा हो सके। सरोगेसी पर स्पष्ट कानून होना चाहिए जिसमें इसके अंतर्गत जन्म देने वाली महिला को मिलने वाले पैसे की कानूनी वैधता का भी उल्लेख होना चाहिए। जो भी समझौता लिखित में किया जाए, उसे बच्चे को जन्म देने वाली माँ को समझाना चाहिए, जिससे भ्रांतियों का निवारण हो सके। कानूनी प्रावधान बनाते समय इस बात का ध्यान रखना अति आवश्यक है, कि ये लागू होने में व्यवहारिक दृष्टिकोण वाले हों, अन्यथा किराये की कोख का व्यापार पर्दे के पीछे गुप्त रूप से होगा, जिसमें इन गरीब महिलाओं का शोषण व्यापक पैमाने पर होगा।

आज के परिदृश्य में भारत में किराये की कोख के व्यापार को रोकना तो संभव नहीं है, परन्तु प्रभावी कानून बनाकर इसे नियंत्रित तो किया जा सकता है। अधिकारों पर आधारित पहल यदि इस दिशा में हुई तो महिलाओं को शोषण से बचाकर उनके मानवाधिकारों की रक्षा की जा सकेगी। हमारे देश की सरकार एवं समाज के समक्ष यह एक चुनौती है, जिसका सामना समग्र प्रयासों से ही किया जा सकता है।

* * *

महिला सशक्तिकरण एवं दलित महिलाओं की स्थितिः चुनौतियाँ एवं समाधान

***डॉ0 शशि कुमार**

प्रस्तावना

भारत में स्वतन्त्रता मिलने के पहले, मध्यकाल में महिलाओं की स्थिति संतोषजनक नहीं थी। स्वतन्त्रता के बाद संविधान में किये गये अनेक प्राविधानों के जरिये महिलाओं की स्थिति में क्रमशः गुणात्मक सुधार अवश्य हुआ है परन्तु ग्रामीण क्षेत्र में अब भी वंचित समुदाय की महिलाओं की स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आ सका है। उनकी कमजोर स्थिति के अनेक कारण हैं विशेषतः शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य, राजनैतिक एवं आर्थिक भागीदारी आदि की असमानता के कारण उनकी स्थिति निम्नतर बनी हुई है।

महिला सशक्तिकरण की पहल सर्वप्रथम नैरोबी में सन् 1985 में आरम्भ हुई। इसके बाद विश्व के अनेक भागों में इस पहल ने एक आन्दोलन का रूप ले लिया। वस्तुतः महिला सशक्तीकरण का सामान्य अर्थ है– महिला को शक्तिसम्पन्न बनाना, परन्तु पूर्ण रूप से इसका अभिप्राय सत्ता–प्रतिष्ठानों एवं जीवन के सभी क्षेत्रों में महिलाओं की सुनिश्चित समान भागीदारी से है। निर्णय लेने की क्षमता सशक्तिकरण का एक बड़ा मानक कहा जा सकता है। इसके फलस्वरूप महिलाओं को वैधानिक, राजनैतिक, शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में पुरूषों के बराबर निर्णय लेने की स्वतन्त्रता से है।

भारत में महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए अनेक प्रयास किये गये हैं जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार हैं–

---

*उपाचार्य, मानवाधिकार विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, लखनऊ।

1. संविधान में 93वें एवं 94वें संशोधन के द्वारा ग्राम पंचायतों में एक–तिहाई सीटें महिलाओं के लिये आरक्षित की गई हैं किन्तु कुछ राज्यों में महिलाओं की हिस्सेदारी 50 प्रतिशत या इससे अधिक भी है। उदाहरणार्थ बिहार में महिलाओं की भागीदारी लगभग 54 प्रतिशत है।
2. महिलाओं को निर्णय लेने का प्रभावी अधिकार और आर्थिक, सामाजिक तथा नागरिक स्वतन्त्रता प्रदान की गयी है।
3. महिलाओं को सही अर्थों में सशक्त और समर्थ बनाने के लिये यह आवश्यक है कि सबसे पहले उन्हें घरेलू मामले में निर्णय का अधिकार मिले तथा परिवार या कार्यस्थल पर भी उन्हें पुरुषों के समान ही अधिकार प्राप्त हो।

महिला सशक्तीकरण का सबसे व्यापक तत्व है उन्हें सामाजिक पद, प्रतिष्ठा और न्याय प्रदान करना। महिला सशक्तीकरण के प्रमुख लक्षण हैं– शिक्षा, सामाजिक असमानता और स्थिति बेहतर स्वास्थ्य, आर्थिक अथवा वित्तीय सुदृढ़ता और राजनीतिक सहभागिता।

प्रस्तुत आलेख का मुख्य उद्देश्य वंचित समुदाय की महिलाओं विशेषकर दलित महिलाओं के सशक्तीकरण की प्रक्रिया को जानना तथा उन कारकों की पहचान करना है जो दलित महिलाओं के विकास में बाधक हैं और ऐसे कारकों की भी पहचान करना जिसके कारण उनकी स्थिति सुदृढ़ की जा सके।

महिला सशक्तीकरण का अभिप्राय

भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतान्त्रिक देश है। स्वतन्त्रता के बाद लगभग छह दशकों में भारतीय समाज में अनेक परिवर्तन हुए जिसमें महिलाओं की स्थिति में भी थोड़ा सुधार हुआ किन्तु वंचित समुदाय विशेषकर दलित महिलाओं की स्थिति आज भी संतोषजनक नहीं है। भारत के लोकतान्त्रिक संविधान में अनेक मौलिक अधिकार एवं मानव अधिकार महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकार प्रदान किये गये। परिणामस्वरूप नागरिकों को मिले समान अधिकारों के साथ ही भारतीय महिलाओं को समान शैक्षिक अवसर तथा सम्पत्ति और विरासत में बराबर का अधिकार मिला जिससे सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक स्तरों पर महिलाओं का उल्लेखनीय विकास तथा सशक्तीकरण हो सका।

पंचायतीराज संस्थाओं में महिलाओं के लिये 33 प्रतिशत आरक्षण के प्रावधान ने न केवल महिला सशक्तीकरण के लिये अवसर उपलब्ध कराया बल्कि निर्णय लेने की

प्रक्रिया में महिलाओं की सहभागिता में वृद्धि के लिए एक क्रांतिकारी कदम साबित हुआ। आरक्षण से अभिप्राय समाज में शोषण व असमानता का शिकार हो रही जनसंख्या को संरक्षणात्मक अवसर देना है जिससे वे भविष्य में निर्णय प्रक्रिया का हिस्सा बनें और कालान्तर में स्वयं को लोकतांत्रिक शक्ति का एक महत्वपूर्ण एवं सक्रिय हिस्सा बनें।

महिलाओं में जागरूकता लाने के अनेक उपाय किये गये हैं ताकि गरिमापूर्ण जीवन के लिए उनमें क्षमता निर्माण किया जा सके। राष्ट्रीय महिला आयोग ने भी महिलाओं के सशक्तीकरण के लिए अनेक कार्य किये हैं जैसे– कानूनी जागरूकता, पारिवारिक महिला लोक अदालतें और विचार गोष्ठी/कार्यशाला/सलाह मशविरा का आयोजन इत्यादि। समाज में कन्या भ्रूण हत्या जैसी अमानवीय प्रथा को रोकने के लिए राष्ट्रीय महिला आयोग ने अनेक महत्वपूर्ण कदम उठाये ताकि इस तरह की बुराई एवं महिलाओं के विरुद्ध होने वाले अपराध को रोका जा सके। कन्या भ्रूण हत्या के अलावा महिलाओं के खिलाफ हिंसा, बाल विवाह, दहेज उत्पीड़न एवं बलात्कार जैसे जघन्य अपराध को रोकने के लिए समय–समय पर आयोग ने अपनी भूमिका कर निर्वहन बहुत ही संवेदनशीलता के साथ किया है।

भारत में दलित महिलाओं के अधिकार

भारतीय संविधान के द्वारा दलित महिलाओं को पुरुषों के ही समान अनेक अधिकार प्रदान किये गये हैं जो इस प्रकार हैं:

1. अनुच्छेद–14 में प्रावधान है कि राज्य किसी भी व्यक्ति को कानून के समक्ष समता एवं कानून के संरक्षण से वंचित नहीं कर सकता।
2. अनुच्छेद–15 में समानता की अवधारणा का प्रवर्तन इस ढंग से है कि यह अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों की परिस्थितियों से निश्चित रूप से संबंधित है–राज्य, धर्म, नस्ल, जाति, लिंग, जन्म–स्थान व इनमें से किसी एक के आधार पर भेदभाव नहीं करेगा।
3. अनुच्छेद–16 में सरकारी नौकरियों में समान अवसर प्रदान करने के साथ–साथ आरक्षण की भी व्यवस्था की गयी है।
4. जातिगत आधार सामाजिक ढांचे में अस्पृश्यता के रूप में सिर पर मैला ढोना एक अत्यन्त अनादरपूर्ण कृत्य है।
5. जातिगत आधार पर सामाजिक ढांचे में अस्पृश्यता के रूप में सिर पर मैला ढोना एक अत्यन्त अनादरपूर्ण कृत्य है। अनुच्छेद–17 के अनुसार अस्पृश्यता का उन्मूलन

हो चुका है तथा इसका किसी भी रूप में प्रचलन निशिद्ध है। अस्पृश्यता से आर्विभूत किसी भी निर्योग्यता के प्रवर्तन को अपराध बना दिया गया है तथा कानून के अनुसार दण्डनीय बनाया गया है।

6. अनुच्छेद–46 में राज्य के नीति निदेशक तत्व के अन्तर्गत यह प्रावधान है कि राज्य विशेष देखभाल द्वारा कमजोर वर्गों तथा विशेषकर अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के शैक्षणिक तथा आर्थिक हितों को बढ़ावा देगा तथा सामाजिक अन्याय एवं शोषण के विरुद्ध हर तरह से रक्षा प्रदान करेगा।

सुनियोजित हिंसा भारतीय समाज का विशिष्ट लक्षण रहा है। जातिगत हिंसा की शिकार दलित महिलाओं को उनकी सुरक्षा के लिए संवैधानिक अधिकारों के अतिरिक्त राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी अनेक अधिकार दिये गये हैं। उदाहरणस्वरूप–सन् 1998 में ही आन्ध्र प्रदेश में देवदासी प्रथा के विरुद्ध कानून बनाया गया था जिसका नाम आन्ध्र प्रदेश देवदासी निरुद्ध अधिनियम, 1988 है और इसी प्रकार अनुसूचित जाति एवं जनजाति; अत्याचार निवारण अधिनियम, 1989 सन् 1996 में इस अधिनियम को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए संशोधित किया गया और इसे नागरिक अधिकार सुरक्षा अधिनियम का नाम दिया गया। कालान्तर में जब दलितों के विरुद्ध अत्याचार बढ़ गए तथा अनुसूचित जातियों व जनजातियों के सदस्यों के ऊपर शारीरिक हिंसा, सामूहिक हत्या, बलात्कार, आगजनी इत्यादि गम्भीर प्रहारों के रूप में बर्बरताएं बढ़ गयीं तो सुरक्षा हेतु विशेष कानून पारित किया गया जिसे अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति; अत्याचार निवारण अधिनियम, 1989 के नाम से जाना जाता है। इसके तहत कठोर दण्डात्मक कार्यवाही का प्रावधान किया गया है जिससे दलितों के विरुद्ध भय का संचार तथा अत्याचार न हो। इसी प्रकार अस्पृश्यता प्रचलन अधिनियम, 1955, संविधान के अनुच्छेद 17 की ध्येय पूर्ति के लिए अधिनियमित किया गया। हाथों से मानवीय मल की सफाई तथा जलविहीन शौचालयों के निर्माण; निषेध अधिनियम, 1993 का निर्माण कर दलित महिलाओं के सशक्तीकरण के लिए प्रयास किया गया।

महिला सशक्तिकरण एवं मानवाधिकार

मानव के सर्वांगीण विकास के लिए दिये गये अधिकार मानवाधिकार कहलाते हैं। दरअसल से अधिकार व्यक्ति में जन्म से ही अन्तर्निहित होते हैं। मानव अधिकार तथा मूल स्वतन्त्रतायें मानवीय गुणों के विकास तथा संबंधित आवश्यकताओं को संतुष्ट करने में सहायक होती है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर दलित महिलाओं के विरुद्ध होने वाले अत्याचार एवं अन्य अमानवीय कृत्यों के विरुद्ध अनेक प्रयास किये गये जिसके अन्तर्गत

मानवाधिकार की सार्वभौमिक घोषणा पत्र सन् 1948, नस्ली भेदभाव के उन्मूलन संबंधी अन्तर्राष्ट्रीय अधिनियम 1965, महिलाओं के प्रति सभी प्रकार के भेदभाव के उन्मूलन संबंधी अभिसमय 1979, नागरिक एवं राजनैतिक अधिकारों की अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदा 1966, आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों की अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदा, 1966 तथा अन्य अनेक अन्तर्राष्ट्रीय घोषणाओं एवं प्रसंविदाओं के माध्यम से विश्व के प्रत्येक मनुष्य को मानवाधिकार प्रदत्त किये गये है। सभी राष्ट्रों का यह मौलिक तथा नैतिक कर्तव्य है कि वे सभी स्त्री–पुरूषों को समान अधिकार प्रदान करें तथा उनकी रक्षा करें।

यद्यपि भारतीय संविधान ने स्त्रियों को पुरुषों के तुल्य मूल अधिकार प्रदत्त किये हैं तथा सदियों से शोषित महिलाओं को समान स्तर पर लाने हेतु विशेष उपबन्ध किये हैं जिस कारण आज महिलाओं ने शिक्षा के माध्यम से अपनी बुद्धिमत्ता एंव दक्षता को प्रमाणित कर दिखाया है और जीवन के हर क्षेत्र में चाहे वह शिक्षा, सरकारी सेवा, व्यवसाय या राजनीति हो अभूतपूर्व प्रगति की है। परन्तु यद्यपि आज के नवीन युग में भी स्त्रियों के प्रति भेदभाव एवं हिंसा की घटनाएँ देखने–सुनने को मिल जाती है। पारम्परिक समुदाय में स्त्रियों के साथ आज भी पारम्परिक तरीके से भेदभावपूर्ण व्यवहार किया जाता है तथा उनके मानवाधिकारों की उपेक्षा की जाती है। भारतीय समाज में आज भी स्त्रियों को दोयम दर्जे का नागरिक तथा पुरुषों से निम्न माना जाता है।

भारत में दलित महिलाओं की स्थिति

आर्थिक विषमताएँ तथा दलित महिला के मानव अधिकार में निकट का संबंध है। भारतीय समाज में दलित महिला की आर्थिक स्थिति बहुत दयनीय है। आर्थिक स्तर पर देखा जाए तो दलित भूमिहीन हैं और पर्याप्त लगभग 43 प्रतिशत महिलाएं खेतिहर–मजदूर हैं जिनकी दैनिक मजदूरी इतनी कम है कि पर्याप्त जीविकोपार्जन उनके लिए अत्यन्त कठिन है। चूँकि कृषि कार्य केवल अल्प समय/मौसमी एवं प्रकृति पर निर्भर हैं इसलिए अधिकतर समय ये दलित महिलाएं बेरोजगार ही रहती हैं और आर्थिक तंगी तथा गरीबी की मार झेलती रहती हैं। यद्यपि भारत में पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं की साक्षरता बहुत कम लगभग 65.57 प्रतिशत है किन्तु जहाँ तक दलित महिलाओं की साक्षरता की बात आती है तो शिक्षा के क्षेत्र में इनकी साक्षरता मात्र 19.46 प्रतिशत ही है जबकि आजादी के लगभग 65 वर्ष बाद अनेक दावों के बावजूद उनकी स्थिति दयनीय बनी हुई है। शिक्षा के क्षेत्र में दलित महिलाएं अभी भी अत्यन्त पिछड़ी स्थिति में हैं।

दासी प्रथा–दलित महिलाओं के विरुद्ध एक सामाजिक कलंक

दक्षिण भारत के अनेक क्षेत्रों में देवदासी प्रथा आज भी प्रचलित है। सामाजिक तथा धार्मिक व्यवस्था ऐसी है जहाँ दलित किशोरियों का देवता से विवाह कर दिया जाता है। कहीं–कहीं तो स्वयं माता–पिता भी इस प्रथा में सम्मिलित हो जाते हैं और इस प्रथा को बढ़ावा देते हैं। इस ''दैविक–विवाह'' को सामाजिक स्वीकृति भी मिली हुई है। इस प्रथा के अन्तर्गत सवर्ण जाति के सामंत तथा साहूकार दलित महिला का यौन शोषण करते हैं। आज भी यह प्रथा तेलंगाना और कर्नाटक के कई क्षेत्रों तथा महाराष्ट्र के पश्चिमी क्षेत्र जैसे कोल्हापुर, शोलापुर तथा धारवाड़ में प्रचलित है। देवदासी प्रथा एक ऐसी रूढ़िवादी प्रथा है जिसमें दलित कन्याओं को स्थानीय देवता को समर्पित कर दिया जाता है। परिणामस्वरूप दलित महिलाओं की मौन दासता बनी रहती है।

इस सामाजिक बुराई के अलावा मैला ढोने के प्रथा से भी दलित महिलाएं अत्यन्त पीड़ित हैं। सदियों से सिर पर मैला ढोने की कुप्रथा अनेक ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में सदियों से प्रचलित हैं जहाँ आज भी दलित महिलाएं सिर पर मैला ढोती हैं और समाज की इस अमानवीय कुरीतियों को झेल रही हैं। जहाँ तक महिलाओं के प्रति अपराध की बात आती है दलित महिलाओं के खिलाफ बलात्कार जैसे जघन्य अपराध अधिकांशतः कारित होते हैं। राष्ट्रीय अपराध ब्यूरो, 2012 की एक रिपोर्ट के अनुसार सन् 2012 ई0 में दलित महिलाओं के खिलाफ 1576 बलात्कार के मामले दर्ज किये गये जबकि इनके खिलाफ कारित बलात्कार के 5427 मामले लम्बित हैं।

निष्कर्ष

स्वतन्त्रता के पश्चात् संविधान द्वारा अपनायी गयी लोकतान्त्रिक व्यवस्था के अन्तर्गत सभी व्यक्तियों को समान अधिकार, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक न्याय व अवसर की समानता बिना किसी भेदभाव के प्रदान की गयी किन्तु सामाजिक व्यवस्था में अपेक्षित परिवर्तन देखने को नहीं मिलता। निःसन्देह भारत सरकार ने समय के साथ–साथ अनेक कानूनों का निर्माण शोषित समुदाय के अधिकारों की रक्षा के लिये किया परन्तु कानूनों का सही प्रवर्तन न होने के कारण आज भी दयनीय स्थिति बनी हुई है। बिना सामाजिक सहयोग के कानून प्रायः असहाय हो जाते हैं। अतः यदि महिलाओं या दलित महिलाओं को पूर्णरूप से सशक्त करना है तो उन्हें स्वयं आगे आना होगा तथा अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होना होगा और साथ ही सरकार को भी इच्छाशक्ति दिखानी होगी ताकि जो भी अधिकार महिलाओं को विभिन्न कानूनों के अन्तर्गत दिये गये हैं उनके प्रवर्तन को सुनिश्चित कराया जा सके अन्यथा समस्त प्रक्रिया केवल कागजी होगी जो हमारे लक्ष्य से अत्यन्त दूर होगी।

सन्दर्भः–

1. Kotani, H(ed)(1997)- Caste System, Untouchability and the Depressed (New Delhi:Manohar).

   कोटानी, एच0 (इडी01997)–कास्ट सिस्टम, अनटचबिलिटी एण्ड द डिप्रेस्ड (नई दिल्ली : मनोहर)

2. P.G. Jogdand (1995) - Dalit Women : Issues and Perspective (New Delhi: Gyan Publication).

   पी0 जी0 जोगदण्ड (1995) – दलित वूमेन–इस्यूज़ एण्ड परस्पेक्टिव (नई दिल्लीः ज्ञान पब्लिकेशन)

3. Bhai, P. Nirmal (1986) - Harijan Women in Independent India (B.R. Publishing Corp.)

   भाई, पी0 निर्मल (1986) – हरिजन वूमेन इन इनडिपेन्डेन्ट इण्डिया; बी0 आर0 पब्लिशिंग कारपो0)

4. Chinne Rao, Yagati (2003) - Dalits Struggle for Identity (Kanishka, New Delhi)

   चिन्नी राव, यागाती (2003) – दलित स्ट्रगल फार आइडेन्टिटी (कनिष्क, नई दिल्ली)

5. Thorat, Sukhdeo, 'Oppression and Denial-Dalit Discrimination in the 1990'-Economic and Political Weekly. February 9, 2002-PP-574-576.

   थोराट सुखदेव, 'आप्रेशन एण्ड डिनायल–दलित डिस्क्रिमिनेशन इन द 1990' इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, फरवरी 9, 2002–पी0 पी0–574–576

6. Tarachand KC.(1992)-Devadasi Custom-Rural, Social Structure and Flesh Market, (New Delhi, Reliance Publications).

   ताराचन्द के0 सी0 (1992). देवदासी कस्टम–रूरल, सोशल स्ट्रक्चर एण्ड फ्लेश मार्केट (नई दिल्ली, रिलायन्स पब्लिकेशन)

7. Human Rights Watch Report (1992)

   ह्यूमन राइट्स वाच रिपोर्ट (1992)

***

महिला सशक्तिकरण एवं उनके अधिकार

***पंकज कुमार**

आज के माहौल में महिला सशक्तिकरण की बात करने से पहले हमें सवाल का जवाब ढूंढना जरूरी है कि क्या वास्तव में महिलायें अशक्त हैं? यदि अशक्त है तो इतने सारे संवैधानिक उपायों के बाद भी महिलाएं विकास की मुख्य धारा से क्यों नहीं जुड सकी?

इतिहास गवाह है कि मानव सभ्यता के विकास के साथ—साथ ताकतवर को ही अधिकार मिला है। धीरे—धीरे इसी सिद्धांत को अपनाकर पुरूष जाति ने अपने शारीरिक बनावट की फायदा उठाते हुए महिलाओं को दोयम दर्जे पर ला कर खड़ा कर दिया और औरतों ने भी उसे अपना नसीब व नियति समझकर, स्वीकार कर लिया।

भारत में ही नहीं, दुनियाभर में महिलाओं के खिलाफ भेदभाव और शोषण की नीतियों का सदियों से ही बोलबाला रहा है। इतना जरूर कह सकते हैं कि मापदंड व तरीके अलग—अलग रहे हैं।

सीता से लेकर द्रौपदी तक को पुरूषवादी मानसिकता से दो—चार होना पड़ा। हर युग में पुरूष के वर्चस्व की कीमत औरतों ने चुकाई है। हमारे देश में देवी समान पुजनीय नारी के आदर और सम्मान में काफी गिरावट आई है।

विश्व की आबादी का एक चौथाई ग्रामीण महिलाएं एवं बालिकाएं हैं। लेकिन वे सभी आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक सूचकांक के निम्नतम् पायदान पर हैं। आय, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा और निर्णय प्रक्रिया में उनकी सहभागिता काफी कम है। दूसरी ओर ग्रामीण और कृषि क्षेत्र के अवैतनिक सेवा कार्यों में उनका योगदान बहुत ज्यादा है।

*इग्नू, समाज कार्य विद्यापीठ, ब्लॉक—15, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली

साल 2011 में इंदिरा गांधी शांति पुरस्कार समारोह में राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी ने भी महिलाओं के सशक्तिकरण पर जोर देते हुए कहा था कि राष्ट्र की आर्थिक गतिविधियों में महिलाओं की उचित भागीदारी के बिना सामाजिक प्रगति की उम्मीद करना बेमानी है।

संयुक्त राष्ट्र के एक सर्वेक्षण के मुताबिक जहाँ–जहाँ महिलाओं की व्यापार और कॉरपरेट जगत में अहम भागीदारी रही है, वहाँ करीब 53% ज्यादा लाभांश और करीब 24% ज्यादा बिक्री दर्ज की गई। लेकिन, कुछ महिलाओं को ऊंचाई पर देख, हम अशिक्षित महिलाओं को नजर अंदाज नहीं कर सकते। हमारे देश में ऐसी अशिक्षित महिलाओं की संख्या ज्यादा है, जो आज भी गरीबी, कुपोषण और घरेलू हिंसा की शिकार हैं यही नहीं ये महिलाएं बेटी को जन्म देने के फैसले के लिए भी वे पुरूषों पर निर्भर हैं।

इसी साल संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव श्री बान की मून ने भी अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस के मौके पर आयोजित एक समारोह में महिलाओं की बराबर की भागीदारी पर जोर दिया था। उन्होंने कहा था कि ग्रामीण महिलाओं और युवतियों की पीड़ा समाज की महिलाओं और लड़कियों को प्रतिबिम्बित करती है। अगर संसाधनों पर समान अधिकार हो और वे भेदभाव और शोषण से मुक्त हों तो ग्रामीण महिलाओं की क्षमता पूरे समाज की भलाई के स्तर में सुधार ला सकती है।

सही मायने में देखा जाए तो महिला सशक्तिकरण का अर्थ ही है महिला को आत्म–सम्मान देना और आत्मनिर्भर बनाना, ताकि वे अपने अस्तित्व की रक्षा कर सकें।

वैसे तो सरकार, सार्वजनिक प्रशासन और अन्य व्यवसायों में महिलाएं पहले से कहीं अधिक अपने प्रभाव का इस्तेमाल कर रही हैं, लेकिन ग्रामीण इलाकों में स्थिति बिल्कुल विपरीत हैं।

ऐसे में 'गांवों का देश' कहे जाने वाले देश भारत को बहुत लम्बा सफर तय करना है ताकि महिलाएं और बालिकाएं अपने बुनियादी अधिकारों, आजादी और सम्मान का लाभ उठा सकें, जो उनका जन्मसिद्ध अधिकार है। इससे सिर्फ ग्रामीण महिलाओं का सशक्तिकरण ही नहीं बल्कि, इसके साथ–साथ सामाजिक विकास को भी नई गति मिलेगी।

बदलते समाज के परिप्रेक्ष्य में देखें तो गृहस्थी के साथ सामाजिक–आर्थिक क्षेत्र में भी लोगों का विश्वास अब महिलाओं के प्रति बढ़ा है। आज महिला समूहों द्वारा उत्पादित खाद्य सामग्री के साथ दैनिक उपयोग की अनेक वस्तुएं राज्य की प्रायः हर छोटी–बड़ी दुकानों में देखने को मिल जाती है। बाजार में महिलाओं द्वारा निर्मित वस्तुओं को अब महत्व मिल रहा है।

भारत सरकार ने वर्ष 2001 को महिला सशक्तीकरण वर्ष (स्वशक्ति) घोषित किया और महिलाओं के सशक्तीकरण की नीति भी पारित की।

समाजिक सशक्तिकरण

16 दिसम्बर, 2012 को दिल्ली में चलती बस में 23 वर्षीया छात्रा से सामूहिक दुष्कर्म मामले को लेकर दिल्ली में जो विरोध–प्रदर्शन हुआ उसे ध्यान में रखकर दिल्ली सरकार ने महिलाओं के लिए एक विशेष हेल्पलाइन नंबर '181' शुरू किया जो सीधे मुख्यमंत्री सचिवालय की निगरानी में काम कर रहा है। इस विशेष नंबर की शुरूआत करते हुए दूरसंचार मंत्री श्री कपिल सिब्बल ने इस नंबर को पूरे देश में लागू करने की बात कही थी। जो महिलाओं के सामाजिक सशक्तीकरण की दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रयास है।

देश के विभिन्न राज्यों में संचालित महिला हेल्पलाइन में प्राप्त शिकायतों के द्वारा हिंसा की शिकार महिलाओं तक पहुंचने की कोशिश की जाती है। समाज में पीड़ित महिलाओं को मनौवैज्ञानिक परामर्श भी दिया जाता है।

सामाजिक सशक्तीकरण के अंतर्गत उत्पीड़ित महिलाओं के सामाजिक एवं आर्थिक पुनर्वास करने के उद्देश्य से सरकार द्वारा जिला स्तर पर अल्पावास गृह की स्थापना की जा रही है। अनैतिक व्यापार रोकथाम अधिनियम, 1896 तथा हिंसा संरक्षण अधिनियम, 2005 के अनुसार महिलाओं एवं किशोरियों की खरीद–फरोख्त से बचाने तथा घरेलु हिंसा की शिकार महिलाओं को संरक्षण एवं सुरक्षा देना अल्पावास गृह का मुख्य उद्देश्य है। इसके अंतर्गत अभी हाल ही में बिहार सरकार ने विशेष रूप से कामकाजी महिलाएँ जिन्हें अपने कार्य के दौरान 5 वर्ष या उससे कम उम्र के बच्चों को कार्यस्थल पर रखने में सुविधा होती है। जिनके परिवार में बच्चों की देखरेख करने वाला उनके सिवाय कोई नहीं है, राज्य सरकार ने वैसे बच्चों के लिए राज्य में 100 पालनाघर खोले हैं जिसमें स्वादिष्ट एवं पौष्टिक अल्पाहार, अन्य उपकरणों की व्यवस्था तथा खिलौने एवं खेलने के अन्य साधनों के साथ–साथ मनोरंजन का भी प्रावधान किया गया है।

महिलाओं में कानून का व्यावहारिक ज्ञान बढ़ाने के लिए सामाजिक जागरूकता अभियान चलाया जा रहा है। नुक्कड़ नाटकों के जरिये सक्षम वातावरण के निर्माण के उद्देश्य से दहेज उत्पीड़न, ट्रैफिकिंग, बाल–विवाह, भ्रूण हत्या, कानूनी साक्षरता, आर्थिक स्वावलंबन के मुद्दे पर लोक कलाओं की प्रस्तुति करके महिलाओं को सामाजिक रूप से सशक्त किया जा रहा है।

शैक्षिक सशक्तीकरण

भारत के विकास में महिला साक्षरता का बहुत बड़ा योगदान रहा है। इस बात को नकारा नहीं जा सकता कि पिछले कुछ दशकों से ज्यों–ज्यों महिला साक्षरता में वृद्धि हुई है, भारत के विकास के पथ पर अग्रसर हुआ है। इसने ने केवल मानव संसाधन के अवसर में वृद्धि की है, बल्कि घर के आँगन से ऑफिस के कारीडोर के कामकाज और वातावरण में भी बदलाव आया हैं। महिलाओं के शिक्षित होने से न केवल बालिका–शिक्षा को बढ़ावा मिला, बल्कि बच्चों के स्वास्थ्य और सर्वांगीण विकास में भी तेजी आई है। महिला साक्षरता से एक बात और भी सामने आई है कि इससे शिशु मृत्युदर में गिरावट आ रही है और जनसंख्या नियंत्रण को भी बढ़ावा मिल रहा है हालांकि इसमें और प्रगति की गुजांइश हैं।

आर्थिक सशक्तीकरण

स्वयं सहायता समूहों में कार्य करने के कारण महिलाओं के आत्मविश्वास, स्वाभिमान, आत्मा–गौरव इत्यादि में वृद्धि होती है क्योंकि घरेलु परिधि के बाहर एक समूह के रूप में छोटी–छोटी बचत इकट्ठी कर, ऋण लेकर, लघु उद्यम स्थापित कर समूह की बैठकों की कार्रवाई संचालित कर महिलाएं आत्मनिर्भर हुई हैं। स्वयं सहायता समूह के सदस्य के रूप में काम करने के कारण महिलाओं की स्वयं निर्णय लेने की शक्ति का विकास होता है। महिलाओं द्वारा बैंकों के साथ लेन–देन, कागजी कार्रवाई इत्यादि करने से उनमें आत्म–विश्वास पनपता है। समूह की गतिविधियों के संचालन, बैठकों में भाग लेने से महिलाओं की स्वनिर्णय की क्षमताओं का विकास होता है जिससे धीरे–धीरे परिवार और समुदाय में उनकी सो को आवाज मिलती है और समूह के सदस्य के रूप में महिलाओं की गतिशीलता बढ़ जाती है। घर की चार दीवारी में कैद रहने वाली महिलाएं इन समूहों के माध्यम से पंचायत संस्थाओं, बैंक, सरकारी तंत्र, गैर–सरकारी संगठनों, सूक्ष्म वित्त संस्थानों इत्यादि के साथ संपर्क में आती हैं जिससे उनके पास अधिक सूचना एवं संसाधन उपलब्ध होते हैं। सूचना एवं संसाधनों की उपलब्धता महिलाओं को सशक्त करती है। स्वयं सहायता समूह के सदस्य के रूप में महिलाएँ

आर्थिक रूप से आत्म–निर्भर बनती हैं जिससे परिवार में उनकी स्थिति में सुधार होता है तथा इस प्रकार उपलब्ध धन का वे अपने निजी कार्य अथवा बच्चों की शिक्षा व स्वास्थ्य इत्यादि में उपयोग करती हैं। अध्ययनों से स्पष्ट है कि आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर महिलाओं के साथ घरेलु हिंसा के मामले कम होते हैं। हमारे देश में प्रायः महिलाएं सिलाई, कढ़ाई, पापड़ बनाने, अचार बनाने जैसे कई कार्य करती हैं किंतु इन्हीं कार्यों को स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से बड़े पैमाने पर वणिज्यिक आधार पर किया जाता है। इन समूहों को सरकारी तथा गैर–सरकारी संगठनों द्वारा कौशल प्रशिक्षण भी दिया जाता है जिससे महिलाओं की स्वयं की व्यक्तिगत या सामूहिक शक्ति बेहतर करने की क्षमता का विकास होता हें

सांस्कृतिक सशक्तीकरण

महिला सशक्तीकरण के अंतर्गत महिलाओं के सांस्कृतिक सशक्तीकरण के लिए मुख्य रूप से मेला का आयोजन किया जाता है जिसका उद्देश्य परम्परागत कौशल तथा लोक चित्रकला, लोक नाट्यकला, लोकगीत आदि को जीवित रखना है। स्वयं सहायता समूह के द्वारा उत्पादित वस्तुओं का प्रदर्शन करना भी मेला का एक अहम उद्देश्य होता है। विलुप्त होती सांस्कृतिक परम्पराओं और इन कलाओं से जुड़े समुदायों के बीच कला की व्यावसायिक गुणवत्ता को बढाकर तथा आजीविका के साथ जोड़कर राष्ट्रीय पहचान स्थापित करना इस योजना का मुख्य लक्ष्य है।

राजनैतिक सशक्तीकरण

महिलाओं के उत्थान के लिए सामाजिक व आर्थिक सशक्तीकरण पर्याप्त नहीं है बल्कि राजनीतिक सशक्तीकरण सबसे महत्वपूर्ण है। स्वयं सहायता समूहों को महिलाओं के राजनैतिक सशक्तीकरण के रूप में भी देखा जा सकता है हालांकि पंचायतों में महिलाओं को एक तिहाई आरक्षण के फलस्वरूप गांव की सत्ता में महिलाओं को भागीदारी का अवसर मिला है। इस प्रकार से सत्ता में भागीदारी के फलस्वरूप महिला समूह एक ऐसे संगठन के रूप में उभर कर आए, जिनमें महिलाएं गांव के विकास के बारे में सोचने लगीं। ऐसे कई उदाहरण सामने आए हैं जब महिला प्रतिनिधियों ने ग्रामीण समस्याओं पर प्रशासन का ध्यान आकर्षित किया और उन्हें हल करने की पहल की हालांकि अभी भी संसद और विधानसभाओं में महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण दिया जाना शेष है। राजनीति में सक्रिय महिलाओं में पूर्व राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवी पाटिल, पूर्व प्रधानमंत्री स्व. इंदिरा गांधी, कांग्रेस अध्यक्षा श्रीमती सोनिया गांधी, पूर्व मुख्यमंत्री उत्तर प्रदेश – सुश्री मायावती, पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री– सुश्री ममता

बनर्जी, तमिलनाडु की मुख्यमंत्री – सुश्री जयललिता, दिल्ली की मुख्यमंत्री – श्रीमती शीला दीक्षित, सदन में विपक्ष की नेता श्रीमती सुषमा स्वराज आदि महिला नेत्रियों ने भारतीय राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है जिसे हम राजनैतिक सशक्तीकरण के रूप में देख सकते है।

पिछड़े राज्यों में महिला सशक्तीकरण की प्रगति

(क) छत्तीसगढ़ : राज्य की महिलाएं व्यक्तिगत रूप से और संगठित होकर आर्थिक गतिविधियों में सक्रिय भागीदारी कर सकें, इसके लिए उन्हें 'छत्तीसगढ़ महिला कोष' की ऋण योजना तथा सक्षम योजना के तहत आसान शर्तों पर केवल तीन प्रतिशत ब्याज दर पर ऋण उपलब्ध कराया जा रहा है। साथ ही व्यावसायिक कुशलता प्रदान करने के लिए स्वावलम्बन योजना, उद्‌यमिता जागरूकता कार्यक्रम और कौशल उन्नयन के माध्यम से उन्हें निःशुल्क प्रशिक्षण भी दिया जा रहा है। छत्तीसगढ़ महिला कोष के माध्यम से पिछले करीब दस वर्षों में 20 हजार से अधिक महिला स्वसहायता समूहों को आमदनी मूलक गतिविधियों के लिए 30 करोड़ 34 लाख 50 हजार रूपए की ऋण राशि वितरित की जा चुकी है। इन योजनाओं की मदद से राज्य की हजारों महिलाएं सामाजिक–आर्थिक रूप से सक्षम बन चुकी हैं। राज्य में संचालित करीब 50 हजार आंगनबाड़ी केन्द्रों और मिनी आंगनबाड़ी केन्द्रों के माध्यम से लगभग 26 लाख बच्चों और गर्भवती व शिशुवती माताओं के लिए पोषण पूरक आहार तैयार करने की जिम्मेदारी प्रदेश के महिला स्व–सहायता समूहों को ही दी गयी है। उचित मूल्य की दुकानों के संचालन के साथ ही स्कूली बच्चों के लिए मध्यान्ह भोजन तैयार करने का कार्य भी महिला स्व–सहायता समूहों द्वारा प्राथमिकता से किया जा रहा है। इसके अलावा महिला स्व–सहायता समूहों द्वारा बड़ी, पापड़, अचार, मसाला, दलिया, मुरब्बा छत्तीसगढ़ी व्यंजन, सेनिटरी और फिनाइन निर्माण के साथ ही बकरी पालन, मछली पालन, कोस कृमि पालन, लाख की खेती, मशरूम उत्पादन, बांस शिल्प और काष्ठ शिल्प का कार्य भी किया जा रहा है।

महिलाओं के समग्र विकास के साथ उन्हें आत्मनिर्भर बनाने के लिए उपयुक्त वातावरण बनाने और राज्य के सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक जीवन में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करने के उद्देश्य से छत्तीसगढ़ प्रदेश की महिला सशक्तीकरण नीति भी बनाई गई है। घरेलु हिंसा, देहज प्रताड़ना, टोनही प्रताड़ना और संपत्ति विवाद से परेशान महिलाओं को पुलिस या न्यायालयीन कार्यवाही से राहत दिलाने तथा उनकी सुविधा के लिए विकासखंड स्तर पर महिलाओं की शिकायतों की सुनवाई हेतु महिला अदालतों का भी गठन किया गया है। महिलाओं की सुरक्षा और सरंक्षण के लिए राज्य

में छत्तीसगढ़ टोनही प्रताड़ना निवारण अधिनियम 2005, घरेलु हिंसा से महिला संरक्षण अधिनियम 2005 सहित अनेक कानून लागू किये गये हैं। महिलाओं एवं बालिकाओं की आपातकालीन सहायता के लिए दूरभाष हेल्पलाइन 1091 की स्थापना की गई है। महिलाओं एवं बलिकाओं की सहायता के लिए राज्य के सभी थानों में महिला डेस्क की स्थापना का निर्णय भी एक अच्छी पहल है, जहाँ केवल महिला कर्मी ही तैनात होगी। इन योजनाओं के सकारात्मक परिणाम भी सामने आये हैं।

(ख) मध्यप्रदेश :– मध्यप्रदेश में भी लाखों की तादाद में महिला स्वयं सहायता समूह गठित किए गए। ये समूह सरकारी एजेंसियों के अलावा महिला आर्थिक विकास निगम तथा स्वयं सेवी संस्थाओं द्वार संचालित किए जा रहे हैं। कई सरकारी योजनाओं का लाभ भी इन समूहों के माध्यम से महिलाओं को दिया जाता रहा है। स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा गठित समूहों ने राजनैतिक पहलुओं को भी छूने का प्रयास किया है। पिछले कुछ सालों में ऐसी कई घटनाएं सामने आई, जब महिला समूहों ने जल संकट जैसी कई समस्याओं के निदान के लिए ग्रामसभा में न सिर्फ अपनी आवाज बुलंद की, बल्कि उसे समाधान के प्रयास भी किए। इसके अलावा गांव में स्कूल, आंगनबाड़ी, राशन– दूकान की मॉनिटरिंग भी इन समूहों की महिलाओं ने की, जिससे गांव की सार्वजनिक सेवाएं ज्यादा उत्तरदायी हो सकी।

सत्ता और विकास में जन भागीदारी के इस दौर में महिला स्वयं सहायता समूह ज्यादा बेहतर भूमिका निभा सकते हैं। यह देखा गया है कि इन समूहों के माध्यम से महिलाओं के आपस में मिल बैठने का अवसर मिला, जो न सिर्फ आर्थिक बचत और आपसी बचत और आपसी सुख–दुख बांटने तक सीमित रहा, बल्कि इससे विकास में उनकी भागीदारी के लिए भी अनुकूल वातावरण बना। समता, सामाजिक न्याय और पंचायत के उत्तरदायित्व जैसे मामलों में भी इस समूहों की महत्वपूर्ण भूमिका है।

यह देखा गया है कि स्वयं सहायता समूहों के कारण सत्ता और विकास में महिलाओं की भागीदारी संभव हो पाई है। कई स्थानों पर महिलाओं ने श्रमदान के जरिए गांव के विकास में अपन भूमिका निभाई, तो कई महिलाओं ने गांव में शिक्षा, स्वास्थ्य, आंगनबाड़ी और राशन की दूकान जैसी सेवाओं के लिए आवाज उठाई। हरदा जिले के ग्राम छुरीखाल की महिलाओं ने तो आंगनबाड़ी नियमित रूप से संचालित करने के मुद्दे पर ग्रामसभा में आवाज उठाई और आज ये महिलाएं खुद आंगनबाड़ी का निरीक्षण कर रही है। कहा जाता है कि उनमें यह आत्मविश्वास समूह में इकट्ठे होने की वजह से आया। इस तरह और भी कई उदाहरण है, जहाँ स्वयं सहायता समूह की महिलाओं ने विकास की मिसाल कायम करने में सफलता हासिल की है।

(ग) बिहार :– बिहार में त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं को पचास फीसदी आरक्षण देकर महिला सशक्तिकरण की भूमिका में एक अच्छा प्रयास किया गया है, लेकिन इसमें भी बहुत दिक्कते आई, गावों में खासी दिक्कतें आईं, क्योंकि घर के पुरूष तो मान जाते हैं, लेकिन गांव के दंबगों का कहना था कि इस तरह तो महिलाएँ हाथ से निकल जाएंगी। उन्हें डर था कि इस तरह तो उनकी गांव में बनी सालों की सत्ता हिल जाएगी। इसलिए वे बार–बार घर के पुरुष को डराते रहते कि महिलाओं को ज्यादा आजादी देने की जरूरत नहीं है। अगर महिलाएं पंचायत में चुनकर आती तो गांव के लोग हंसते और ताने मारते। खैर! पिछले कुछ सालों से महिला स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से महिला सशक्तिकरण की प्रक्रिया चल रही है। इसके अंतर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं के राजनैतिक के बचत समूह गठित कर उनके आर्थिक सशक्तिकरण के प्रयास किए जा रहे हैं किंतु इन समूहों को महिलाओं के सशक्तिकरण के रूप में भी देखा जा सकता है। पंचायतों में महिलाओं के पचास फीसदी आरक्षण के फलस्वरूप गांव की सत्ता में महिलाओं को अपनी भागीदारी निभाने का अवसर जरूर मिला है।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर महिला मानवाधिकार

संयुक्त राष्ट्र के चार्टर की प्रस्तावना में कहा गया है कि "हम संयुक्त राष्ट्र के लोग मूलभूत मानवाधिकारों में मानव की गरिमा, महत्त्व व मूल्य में तथा स्त्री, पुरुष के समान अधिकारों में आस्था व्यक्त करते हैं। साथ ही चार्टर में महिलाओं के समानता के अधिकारों की घोषणा की गई है।" अनुच्छेद 16(1) के अनुसार वयस्क पुरुष व स्त्रियों को मूल, वंश, राष्ट्रीयता या धर्म के कारण किसी भी सीमा के बिना विवाह करने और परिवार स्थापित करने का अधिकार है। अनुच्छेद 23(2) के अनुसार स्त्री पुरुष में भेदभाव किए बिना समान कार्य के लिए समान वेतन पाने का अधिकार है। अनुच्छेद 26(1) के अनुसार सभी व्यक्तियों को शिक्षा पाने का अधिकार है चाहे वे स्त्री हो या पुरुष।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर महिलाओं के समुचित विकास पर संयुक्त राष्ट्र ने विश्व महिला सम्मेलन आयोजित करने का निर्णय लिया ताकि महिलाएँ स्वयं के विकास के संदर्भ में अपने विचार व्यक्त कर सके तथा नीति निर्धारण में उनके विचारों को प्रमुखता दी जा सके। इस परम्परा के अंतर्गत विभिन्न विश्व महिला सम्मेलन आयोजित किए जा चुके है।

प्रथम विश्व महिला सम्मेलन सन् 1975 मेक्सिको : इस सम्मेलन में वर्ष 1975 से 1984 को महिला दशक के रूप में घोषित किया तथा पंचवर्षीय योजनाएँ बनाई गई

जिनमे स्त्री शिक्षा, लिंग भेदभाव मिटाना, महिलाओं के लिए रोजगार के अवसर बढाना, नीति निर्धारण में महिलाओं की भागीदारी, समान राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक अधिकार देने आदि पर बल दिया गया।

नई दिल्ली सम्मेलन 1997 : ''वीमेंस पोलिटिकल वाच'' नामक गैर सरकारी संगठन ने संयुक्त राष्ट्र संघ और राष्ट्रीय महिला आयोग के सहयोग से विश्व सांसद सम्मेलन नई दिल्ली में आयोजित किया, इसका उद्देश्य महिलाओं की सत्ता में भागीदारी बढ़ाना था।

भारत में महिला मानवाधिकार : मानवाधिकारों, विशेषकर महिलाओं के अधिकारों की प्राप्ति के लिए भारत ने भी लम्बे समय से संघर्ष किया है। सदियों से भारत में सती प्रथा, पर्दा प्रथा, दहेज प्रथा, अधिकार विहीनता, रूढिवादिता समाज का मुख्य अंग था परंतु 19वीं शताब्दी में पश्चिमी शिक्षा के आगमन से संस्कृतियों का टकराव हुआ जिसके फलस्वरूप महिला अधिकारों की बात की जाने लगी। लोग परंपरागत ढांचे से बाहर निकलकर सोचने लगे और महिलाओं की शिक्षा को बढ़ावा दिया जाने लगा। भारत में राष्ट्रीय स्तर पर मानवाधिकारों को लागू करने के लिए 1950 में संवैधानिक उपाय किए गए।

भारतीय संविधान में मूल अधिकारों के संदर्भ में महिलाओं के लिए प्रावधान

अनुच्छेद 15 : इस अनुच्छेद का कोई भी प्रावधान राज्य को महिलाओं और बच्चों के लिए विशिष्ट प्रावधान बनाने से नहीं रोक सकता।

अनुच्छेद 16 : राज्य के अधीन किसी पद के संबंध में धर्म, वंश, जाति, लिंग के आधार पर कोई नागरिक अयोग्य नहीं होगा।

अनुच्छेद 39 : पुरुष और स्त्री दोनों को समान रूप से जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार होगा। दोनो का समान कार्य के लिए समान वेतन। महिलाओं के लिए प्रसूतिकाल में राहत की व्यवस्था तथा काम के स्थान पर मानवीय सुविधा की व्यवस्था करेगा।

अनुच्छेद 51 : प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के विरूद्ध हो। संविधान के नीति निर्देशक तत्वों में महिलाओं के अधिकार सुनिश्चित किए गए हैं। अनुच्छेद 325, 326 इसके अंतर्गत

निर्वाचक नामावली में महिला और पुरुष को समान रूप से मत देने और चुने जाने का अधिकार देता है।

भारत में महिला मानवाधिकारों को मूल अधिकारों के साथ जोड़ा गया है तथा महिलाओं के लिए विस्तृत अधिकारों की विवेचना की गई है। इस संदर्भ में संविधान में निम्नांकित अधिनियमों को स्थान दिया गाय है :–

1. **सती प्रथा निवारण अधिनियम 1987** : इस अधिनियम के अंतर्गत सती कर्म करने के लिए कारावास और जुर्माना दोनों की सजा का प्रावधान है।
2. **दहेज़ निवारण अधिनियम 1961 (संशोधित 1986)** : इसके अंतर्गत दहेज़ लेने और देने के लिए दंड की व्यवस्था की गई है तथा दहेज़ मृत्यु पर 7 वर्ष से लेकर आजीवन कारावास का प्रावधान है।
3. **अनैतिक व्यापार निवारण अधिनियम 1956 (संशोधित 1986)** : इसके अंतर्गत व्यवस्था है कि संदिग्ध या अपराधी महिला से पूछताछ, तलाशी एवं गिरफ्तारी केवल महिला पुलिस या महिला सामाजिक कार्यकर्त्ता द्वारा की जाएगी।
4. **विशेष विवाह अधिनियम 1954** : इसमें महिलाओं को पैतृक संपत्ति में उत्तराधिकारी प्रदान किया गया है। हिन्दू विवाह अधिनियम, 1954 स्त्रियों को भरण–पोषण और दम्पत्तिक प्रदान करता है।
5. **स्त्री अशिष्ट रुपण (प्रतिबंध) अधिनियम 1986** : इस अधिनियम के अंतर्गत किसी भी महिला को इस प्रकार से चित्रित नहीं किया जाएगा जिससे उसकी सार्वजनिक नैतिकता को आघात पहुंचे। इस अधिनियम में फिल्म सेंसर बोर्ड के गठन का प्रावधान किया गया है जो ऐसी फिल्मों पर रोक लगाएगा जिनमें महिलाओं की मर्यादा भंग होती है।
6. **समान पारिश्रमिक अधिनियम 1976** : इसके अंतर्गत समान कार्य हेतु महिलाओं को भी पुरुषों के समान पारिश्रमिक देने का प्रावधान किया गया है।
7. **73वां एवं 74वां संविधान संशोधन 1993** : इस अधिनियम के अंतर्गत महिलाओं को त्रिस्तरीय पंचायतों में एक तिहाई आरक्षण प्रदान करने का प्रावधान है।

महिलाओं के कानूनन अधिकार

1. यदि कोई व्यक्ति किसी महिला की इच्छा के विरूद्ध संभोग करता है तो यह बलात्कार कहलाएगा उस महिला को ऐसे अपराधी के विरूद्ध थाने में शिकायत करने का अधिकार है। धारा –376, सजा 7 से 10 वर्ष
2. पहली पत्नी के जीवित रहते दूसरा विवाह करना। धारा 494ए, सजा 10 वर्ष
3. बेइज्जती करना, झूठे आरोप लगाना। धारा 499ए, सजा 3 वर्ष
4. दहेज। धारा 304 क, सजा आजीवन कारावास
5. दहेज मृत्यु। धारा 304 ख, सजा आजीवन कारावास
6. आत्माहत्या के लिए दबाव बनाना धारा 306, सजा 10 वर्ष
7. महिला की सम्मति के बगैर गर्भपात कराना। धारा 313, सजा 10 वर्ष या आजीवन कारावास/जुर्माना,
8. ससुराल पक्ष के लोगों द्वारा की गई क्रूरता जिसके अंतर्गत मारपीट से लेकर कैद में रखना, खाना न देना व दहेज़ के लिए प्रताड़िता करना। धारा 498, सजा 3 वर्ष
9. यदि किसी सार्वजनिक स्थल जैस–स्कूल, कॉलेज, सड़क या अन्य किसी भी स्थान पर कोई व्यक्ति किसी महिला के साथ छेड़छाड़, अभद्र व्यवहार या अश्लील टिप्पणी करता है तो उस महिला को ऐसे अपराधी के विरूद्ध शिकायत दर्ज करने का अधिकार है। धारा 354, सजा 2 वर्ष
10. यदि किसी विवाहित स्त्री का पति या पति के रिश्तेदार उसे शारीरिक या मानसिक रूप से प्रताड़ित करते है या दहेज की मांग करते हैं तो उक्त लोगों के खिलाफ पुलिस में शिकायत दर्ज करने का कानूनी अधिकार है। धारा 498(अ.), सजा 3 वर्ष
11. अगर कोई व्यक्ति किसी महिला का अपहरण करता है या उसको जबरन किसी व्यक्ति से शादी करने के लिए मजबूर करता है तो उसके विरूद्ध शिकायत दर्ज कराई जा सकती है। धारा 366, सजा 10 वर्ष
12. अगर काम के क्षेत्र या समय में कोई व्यक्ति किसी महिला से शारीरिक संबंध की मांग करता है, कामुक वचन कहता है एवम् मौखिक या इशारों में कामुकता का प्रदर्शन करता है तो महिला को अपने नियोक्ता से उसकी शिकायत करने का अधिकार है।

13. शब्द, प्रयोग, अंगविच्छेद या अन्य कार्य (जैसे– अश्लील शब्द कहना, कोई ध्वनि, अंग विशेष के इशारे या कोई वास्तु प्रदर्शित करना) जो किसी महिला के लज्जा का अनादर करने के उद्देश्य से किया गया हो एवम् जो उस महिला की एकांतता का अतिक्रमण करता हो, इसके खिलाफ थाने में रिपोर्ट दर्ज करने का अधिकार है। धारा 509, सजा 1 वर्ष

महिला संरक्षण अधिनियम, 2005

घरेलु हिंसा का अर्थ

1. व्यक्ति अगर व्यथित महिला के स्वास्थ्य की सुरक्षा, उसके जीवन अंग या कल्याण को नुकसान पहुंचाता है, क्षतिग्रस्त करता है या खतरा पहुंचाता है या ऐसा करने की कोशिश करता है तो वह घरेलु हिंसा में शामिल है।
2. इसके अंतर्गत शारीरिक दुरुपयोग, मौखिक और भावनात्मक दुरुपयोग तथा आर्थिक दुरुपयोग, यौन दुरुपयोग शामिल हैं।

शारीरिक दुरुपयोग

शारीरिक दुरुपयोग का मतलब है कि कोई भी कार्य या आचरण जो ऐसी प्रकृति का हो जो कि व्यथित महिला के जीवन अंग या स्वास्थ्य को शारीरिक कष्ट पैदा करता है। इसके अंतर्गत हमला करना, अपराधिक अभित्रास और आपराधिक बल इस्तेमाल करना शामिल हैं।

यौन दुरुपयोग

यौन प्रकृति का कोई भी आचरण जो महिला की गरिमा का दुरुपयोग करता है, अपमानित करता है, तिरस्कृत करता है या उसको भंग करता है।

मौखिक और भावनात्मक दुरुपयोग

अपमान, हंसी उड़ाना, तिरस्कार, गाली देना और संतान विशेषकर लड़का नहीं होने पर अपमानित करना और हंसी उड़ाना। व्यथित महिला को शारीरिक कष्ट पहुंचाना।

घरेलु हिंसा की सूचना

1. कोई भी व्यक्ति घरेलु हिंसा की सूचना संबंधित संरक्षण अधिकारी को दे सकता है।

2. सूचना देने वाले व्यक्ति का कानून में कोई दायित्व नहीं है।

दहेज लेने–देने पर सजा

1. अगर कोई व्यक्ति दहेज लेने या देने या उसके उकसाने को दोषी पाया जाता है तो उसे 5 साल का कारावास तथा जुर्माना जो 15000 रुपए से कम न हो या दहेज का मूल्य जो भी अधिक हो वह सजा दी जा सकती है।
2. उपहार स्वेच्छा से दिए जा सकते हैं, लेकिन उपहारों की सूची बनाना जरूरी है। इसके अलावा ये उपहार रीति–रिवाज और परम्परा के अनुसार दिए गए हों तथा देने वाले की आर्थिक क्षमता के मुताबिक इनका मूल्य हो।
3. किसी भी प्रकार से दहेज की मांग करने पर कम से कम छह माह और अधिकतम दो वर्ष का कारावास हो सकता है तथा 10,000 रुपए का जुर्माना भी हो सकता है।

दाम्पत्य अधिकारों से वंचित करना

1. दहेज लाने के लिए महिलाओं को उनके दाम्पत्य अधिकारों से वंचित रखने, उन्हें प्रताड़ित करने और उनका शोषण करने के दोषियों को सजा हो सकती है। दोषी व्यक्तियों को एक वर्ष का कारावास तथा 500 रुपए की जुर्माने की सजा हो सकती है।
2. पति जो अपनी पत्नी को दहेज के कारण उसके दाम्पत्य अधिकार से उसे वंचित करते हों उन्हें एक वर्ष का कारावास तथा 10,000 रुपए की सजा भी हो सकती है। जुर्माने की रकम पत्नी को न्यायालय के आदेश पर मुआवजे के रुप में भी दी जा सकती है।

गुजारा भत्ता और खर्चे

1. पति के दोषी पाए जाने के बाद महिला 2 महीने के भीतर गुजारा भत्ता और खर्चे के लिए आवेदन कर सकती है। आवेदन मिलने के बाद कोर्ट गुजारा भत्ता के लिए आदेश दे सकता है। ऐसा आदेश जारी करने से पहले कोर्ट दोनों पक्षों को उचित सुनवाई का मौका देगा जिसके अनुसार गुजारे भत्ते की रकम तय की जाएगी। इस अपराध पर मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट या प्रथम वर्ग के न्यायिक मजिस्ट्रेट विचार कर सकते हैं।
2. कोर्ट में मामले की शिकायत पुलिस अफसर, पीड़ित व्यक्ति या उसके रिश्तेदार अथवा माता–पिता, कोई भी मान्यता प्राप्त कल्याणकारी संस्था कर सकती है या

फिर कोर्ट अपनी ओर से भी अपराध के तथ्यों के विषय में जानकारी होने पर विचार शुरू कर सकती है।

3. दहेज गंभीर अपराध है। पुलिस स्टेशन में शिकायत दर्ज होने के बाद पुलिस अधिकारी तुंरत उस पर कार्यवाही कर जांच की प्रक्रिया शुरू कर सकता है, लेकिन बिना वारंट या मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना आरोपी व्यक्ति को गिरफ्तार करने की शक्ति नहीं है।
4. दहेज का अपराध गैरजमानती है। बिना मजिस्ट्रेट के आदेश पर आरोपी को जमानत पर रिहा नहीं किया जा सकता है। इसमें अपराध आपसी समझौते से नहीं निपटाए जा सकते हैं और न ही शिकायतकर्त्ता दूसरे पक्ष के साथ समझौता होने पर केस वापस ले सकता है।
5. दहेज निषेध अधिनियम के तहत कभी भी शिकायत दर्ज करायी जा सकती।
6. दहेज संबंधी अपराध में आरोपी व्यक्ति की जिम्मेदारी है कि वह सिद्ध करे कि उसने ऐसा अपराध नहीं किया है।
7. राज्य सरकारी के पास यह शक्ति है कि वे दहेज निषेध अधिकारी को नियुक्त करे।
8. राज्य सरकार सलाह समिति नियुक्त करे। जिसका कार्य दहेज निषेध अधिकारियों को सलाह व सहयोग देना होगा।

दहेज हत्या

1. दहेज हत्या मानी जाएगी दहेज की मांग को लेकर अगर किसी महिला की मौत विवाह के सात साल भीतर संदिग्ध हालत में हो, जलने के कारण या शरीर पर चोट के कारण हो, पति व ससुराल वालों की प्रताड़ना से मौत हुई हो।
2. इस मामले में पति या उसके रिश्तेदारों को महिला की मौत के लिए दोषी माना जाएगा।
3. दोषी व्यक्ति को 7 साल से 20 साल (आजीवन कारावास) तक की सजा हो सकती है।
4. दहेज हत्या गम्भीर अपराध है। इस मामले में पुलिस दोषी व्यक्ति को बिना वारंट के भी गिरफ्तार कर सकती है।
5. केवल सेशन कोर्ट की दहेज हत्या के अपराध के मामले में विचार कर सकता है।

मजिस्ट्रेट जांच

1. मजिस्ट्रेट जांच का आदेश दे सकता है जब किसी व्यक्ति की पुलिस संरक्षण में मृत्यु हो या कोई महिला खुदकुशी करे या उसकी विवाह से 7 साल के भीतर संदेहास्पद स्थिति में मृत्यु हो।
2. अगर विवाहित महिला की मृत्यु विवाह के 7 साल में हो तो तथा कोर्ट यह पाए कि उसके पति या ससुराल वालों ने सताया है बाकी तथ्यों को ध्यान में रखते हुए कोर्ट यह मान सकती है कि उस महिला को उसके पति व ससुरावालों ने खुदकुशी के लिए उकसाया है।

विवाह विधि संशोधन विधेयक 2010 के प्रावधान

इस विधेयक में तलाक के बाद हिन्दू महिलाओं को पति की अचल व पैतृक संपत्ति में हिस्सा देने का प्रावधान है। तलाक होने की स्थिति में पति की संपत्ति में पत्नी और बच्चों का अधिकार सुनिश्चित होगा। विधेयक के अनुसार तलाक की स्थिति में पत्नी को पति की अचल संपत्ति से मिलने वाले हिस्से की मात्रा का निर्धारण न्यायलय करेगा। तलाक के दौरान सभी तथ्यों पर विचार कर न्यायाधीश फैसला करेंगे कि पत्नी को कितना गुजारा भत्ता दिया जाना चाहिए। अदालत के फैसले से असहमति होने पर उसे उच्च अदालतों में चुनौती देने का प्रावधान है। इसके अलावा बच्चों के भरण–पोषण का अनुपात तय करने के लिए अदालत को भी ज्यादा अधिकार दिए गए हैं। संशोधित विधेयक में शादी न चल पाने की सूरत में पुरुष या स्त्री में कोई भी तलाक के लिए आवेदन कर सकता है।

राज्यसभा ने विवाह (संशोधन) विधेयक 2010 को 26 अगस्त, 2013 को मंजूरी प्रदान की। लोकसभा इसे पहले ही पारित कर चुकी है।

और अंत में यही कहना है कि .....

जो लोग नारी को मात्र विषय भोग की वस्तु मानते हैं वो भूल जाते हैं कि नारी सबसे पहले माँ है, यदि वह माँ के रूप में हमें ना मिलती और हम पर करुणा, ममता, संस्कार आदि गुणों की वर्षा ना करती तो क्या होता ? तब ना हम होते और ना ही यह संसार होता। तब केवल शून्य होता। उस शून्य को भरने के लिए ईश्वर ने नारी को हमारे लिए सर्वप्रथम माँ बनाया। महिला नारी के रूप में जब माँ बनती है तो वह हमारे जीवन का आध्यात्मिक पक्ष बन जाती है जबकि पिता भौतिक पक्ष बनता है और जीवन इन दोनों से ही चलता है।

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ने कहा है : स्त्रियों की मान–हानि साक्षात् लक्ष्मी और सरस्वती की मान–हानि है।

आवश्यकता इस बात की है की लम्बी–चौड़ी कागजी योजनाओं के बजाए उपलब्ध संसाधनों के अनुरूप योजनाए बनाकर समुचित प्रकार से लागू की जाए एवं अमल में लाए जाने के लिए जिम्मेदार व्यक्तियों की जबावदेही भी तय होनी चाहिए। जब महिलाओं को राजनैतिक व सामाजिक अधिकार मिल जाएंगे तो वह स्वतः प्रगति के रास्ते पर चल पड़ेगी। महिलाओं को विकास से दूर रखकर विकास का सपना नहीं देखा जा सकता है।

हमें दूरस्थ गांवों में रहने वाली महिलाओं के जीवन पर भी ध्यान देना होगा। महिला देश में सक्रिय है। किंतु यह आयोग मात्र कुछ शहरी महिलाओं के लिए है। यह आयोग तब तक निरर्थक है जब तक यह स्वयं ग्रामीण महिलाओं के जीवन स्तर को ऊंचा उठाने के लिए ग्रामीण परिवेश में जाकर कार्य करने में अक्षम है। नारी सशक्तीकरण का अर्थ है नारी का शिक्षाकरण। शिक्षा से आज भी ग्रामीण अंचल में नारी 90 प्रतिशत तक अछूती है। उसे शिक्षित करना देश को विकास के रास्ते पर डालना है। इससे नारी वर्तमान के साथ जुड़ेगी। नारी सशक्तीकरण का यही अंतिम ध्येय है।

* * *

मानव अधिकार और भारतीय महिलाएँ

*डॉ. श्रीराम येरणकर

मानव अधिकार मानव मात्र के नैसर्गिक, अविच्छेद्य एवं अनन्य अधिकार हैं। ये व्यक्तित्व के विकास, शोषणरहित समाज के निर्माण, आर्थिक समृद्धि और विश्व शान्ति के लिए अपरिहार्य हैं। मानव अधिकारों की अपरिहार्यता पर, दीर्घकालिक संघर्ष के बाद आम सहमति सम्भव हो सकी है किन्तु अधिकारों की आवश्यकता, प्रकृति एवं क्रियान्वयन के विविध पक्षों पर आज भी विवाद है। जिन पक्षों पर आम सहमति है वह भी सशर्त है। इसका मूल कारण यह है कि लोकतंत्र, प्रगति एवं विकास की उल्लेखनीय व्यवस्थाओं में लैंगिक न्याय, लैंगिक समता उपेक्षित है एवं महिलाएँ हाशिए पर हैं।

वर्तमान काल में संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना के साथ महिला और मानवाधिकार की सोच प्रारम्भ हुई। प्रकृति ने स्त्री को स्वाभाविक कोमलता प्रदान की है और पुरुषों को बल। इसी कारण स्त्रियों की स्थिति सारे संसार में पुरूष के पश्चात् मानी जाती है, किन्तु इस भिन्नता को असमानता में प्रकृति ने नहीं, अपितु सामाजिक संरचनाओं ने परिणत किया है। अतः यह असमानता, अधिकारहीनता और अन्याय की स्थिति परिवर्तनीय है, बशर्ते इसकी उचित व्याख्या एवं प्रतिरोध किया जाय। उक्त व्याख्या एवं प्रतिरोध का सुदृढ आधार है–महिला की मानव के रूप में स्वीकारोक्ति तथा उन सभी अधिकारों की वैधता जो 'मानव–अस्तित्व' के रूप में उसके साथ जुडें हैं। इस अर्थ में यह निर्विवाद होना चाहिए कि ''महिला अधिकारों का हनन मानव अधिकारों का हनन है'' किन्तु ऐसा नहीं है। इस सामान्य एवं सतही तौर पर निर्विवाद वक्तव्य के लिए कानूनी दर्जा हासिल करने के लिए भी महिला संगठनों को लम्बे संघर्ष की आवश्यकता पडी। संघर्ष की लम्बी अवधि में, संयुक्त राष्ट्र संघ की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही तथा उससे महिला आन्दोलनों को समय–समय पर संघर्ष को जारी रखने तथा त्वरित करने

---

*प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान विभाग, जीजामाता महाविद्यालय, बुलडाणा (महाराष्ट्र)।

के लिए सम्बल भी मिला। सन् 1948 में संयुक्त राष्ट्र संघ ने मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा की जिसे विश्व के अधिकांश देशों द्वारा स्वीकार किया जा चुका है। इस घोषणा में सभी प्रकार के भेदभाव–लैंगिक–भेदभाव को समाप्त करने का आह्वान किया गया। 1975 में पहली बार ''महिलाओं की प्रास्थिति'' पर चिन्ता व्यक्त की गई तथा 1977 में ''महिलाओं की व्यक्तिगत गरिमा'' का प्रश्न उठाया गया। 1978 में ''महिलाओं के प्रति सभी प्रकार के भेदभाव समाप्त करने'' के लिए समिति के गठन का प्रस्ताव किया गया। इस समिति ने 1992 में ''महिलाओं के प्रति हिंसा को उनके खिलाफ भेदभाव'' की संज्ञा दी तथा इसी वर्ष ''महिलाओं के प्रति हिंसा'' का प्रश्न अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दे के रूप में चर्चित हुआ। 1993 में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा महिलाओं एवं बालिकाओं के अधिकारों को मानव–अधिकारों के अभिन्न भाग के रूप में स्वीकार किया गया तथा महिलाओं के प्रति हिंसा को समाप्त करने के आशय से नवीन घोषणा जारी की गई (कौशिक, 2005 प्र0 41)। 1994 में उक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिए, विभिन्न देशों में लैंगिक हिंसा के तथ्य संकलित करने के लिए विशेष हिंसा के तथ्य संकलित करने के लिए विशेष प्रतिवेदकों की नियुक्ति की गई। 1995 में बीजिंग सम्मेलन में महिला अधिकारों के लिए मानव–अधिकारों के रूप में संघर्ष की विस्तृत रणनीति जारी की गई। इस सम्मेलन में 189 देशों के प्रतिनिधियों ने घोषणा और कार्यमंच का अनुमोदन किया जिसका उद्देश्य सार्वजनिक एवं निजी जीवन के सभी क्षेत्रों में महिलाओं के योगदान में आनेवाली बाधाओं को समाप्त करना था। इस मंच ने महिलाओं की स्थिति के सम्बन्ध में एक दर्जन महत्वपूर्ण क्षेत्रों की पहचान की इनमें निरंतर बढते बोझ की त्रासदी, शिक्षा प्राप्ति के क्षेत्र में असमान तथा अपर्याप्त सुविधाएं, महिलाओं के प्रति बढते अत्याचार, संघर्ष की स्थितियों का महिलाओं पर प्रभाव, आर्थिक ढांचों, नीतियों तथा उत्पादन प्रक्रिया में महिलाओं का योगदान एवं असमानता की संरचनाओं, अधिकारों और निर्णय प्रक्रिया में सहभागिता में असमानता, महिला विकास के लिए उपलब्ध अपर्याप्त तंत्र, अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय स्तरपर मान्य महिला मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता और निष्ठा का अभाव, समाज में महिलाओं के योगदान को प्रचारित करने में जनसंचार माध्यमों की अपर्याप्त भूमिका, प्राकृतिक संसाधनों के प्रबन्धन और पर्यावरण के संरक्षण में महिलाओं के योगदान को अपर्याप्त मान्यता एवं अपर्याप्त समर्थन तथा बालिकाओं की शोचनीय स्थिति सम्मिलित हैं।

भारतीय संदर्भ की विशिष्टता की जब भी चर्चा होती है तब भारतीय सांस्कृतिक धरोहर, उसमें नारी की उच्च, उत्कृष्ट दैवीय छवि, परिवार संस्था की अक्षुण्णता एवं उसके फलस्वरूप सामाजिक संरचना की समरसता एवं स्थायित्व को मूल आधारों के

रूप में विवेचित किया जाता है। इस तरह के विवेचनों में अक्सर ऐतिहासिक तथ्यों, अन्तर्विरोधों एवं परिवर्तन के तत्वों की अनदेखी कर दी जाती है। स्त्री अधिकारों की दृष्टि से, जैसा कि विभिन्न शोधों से स्पष्ट हुआ है, वैदिक युग में भारत में स्त्रियों की प्रास्थिति सभी क्षेत्रों – सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक, में समानता पर आधारित थी। एक गृहस्थ सूत्र में स्त्रियों के लिए 'यज्ञोपवीतनी' प्रसंग उपलब्ध है। वेदों की रचना में लगभग 200 श्लोकों का योगदान स्त्रियों का माना गया है। राजनैतिक सभाओं, क्रिया–कलापों में भी स्त्रियों की सक्रिय सहीभागिता का उल्लेख मिलता है। समृध्दि, ज्ञान एवं शक्ति के दैवीय प्रतीकों – लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा के अतिरिक्त साहस एवं धैर्य की प्रतीक पंचकन्याओं – अहिल्या, तारा, मन्दोदरी, कुन्ती एवं द्रौपदी की अर्चना का विशेष महत्व बताया गया है। उत्तर वैदिक काल में भी स्त्रियों की प्रास्थिति अच्छी थी। (पुनम धंडा, 2012 पृ015)। उत्तर वैदिक युग के बाद परवर्ती आर्यों के काल में सामाजिक संरचना में जटिलता, कठोरता, संकीर्णता, अपारदर्शी व्यवस्थाओं का उद्भव एवं स्त्रियों की भूमिका को प्रजनन एवं पारिवारिकता तक सीमित किया जाने लगा तथा बाल–विवाह, बहु–विवाह, दहेज, विधवा उत्पीड़न, पर्दा प्रथा, सती जैसी कुप्रथाओं ने स्त्री को अधीन स्थिति में अवस्थित किया। मध्यकाल में महिलाओं की स्थिति में और गिरावट आयी। भारतीय संस्कृति की मुगलों से रक्षा करने के लिए ब्राह्मणों ने कड़े नियमों का प्रावधान किया। बालविवाह, पर्दा प्रथा, सती प्रथा का प्रचलन हुआ एवं महिलाएँ पुरुषों पर पूर्णरूपेण निर्भर होती गयीं। ब्रिटिश काल अठारहवी शताब्दी के आखिरी वर्षो से आजादी पाने तक का काल है (झुमा मंडल, 2009 पृ0 185)। इसमें अशिक्षा, कन्यादान का आदर्श, पुरुशों पर आर्थिक निर्भरता, संपत्ति में अधिकारों की समाप्ति, संयुक्त परिवार व्यवस्था, बाल विवाह, वैवाहिक कुरीतियां, मुस्लिम आक्रमण आदि स्त्रियों के मानवाधिकारों के हनन के प्रमुख कारण थे।

उन्नीसवीं शताब्दी में राजा राम मोहन राय, महर्षि दयानन्द, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर एवं अन्य समाज सुधारकों द्वारा स्त्रियों की स्थिति में सुधार लाने हेतु महत्वपूर्ण प्रयत्न किये गये। इनके फलस्वरूप सती प्रथा निशेध अधिनियम, 1829 : भारतीय दंड संहिता, 1860 : साक्ष्य अधिनियम, 1872 : बालविवाह निरोधक अधिनियम, 1929 : हिन्दू स्त्रियों का संपत्ति पर अधिकार अधिनियम, 1937 : एवं अलग रहने और भरण पोषण हेतु स्त्रियों का अधिनियम, 1946 पारित किये गये (रमेशकुमारी 2008 पृ0 67) स्वतंत्र भारत में भी संविधान निर्माण के समय मौलिक अधिकारों में समान दर्जा एवं अन्य उपबंधों द्वारा भी महिला अधिकारों की व्यवस्था की गई है।

भारतीय सामाजिक परिवेश, संविधान और महिला अधिकार

भारतीय समाज में अंतर्निहित स्त्री–पुरुष असमानता और उसके प्रभाव स्वतंत्रता पूर्व युग में भी भारतीय नेताओं के लिए चिन्ता के विषय थे। वस्तुतः भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन विकास के लिए भारतीय महिलाओं के आंदोलन के रूप में घनिष्ठ रूप में अंतः परिवर्तित हो गया। असमानता और सम्बद्ध मुद्दों के दृष्टिगत स्वतंत्र भारत के संविधान में न केवल महिलाओं को समानता की गारंटी दी गई है, अपितु राज्य को यह शक्ति भी दी गयी है की वह महिलाओं के पक्ष में सकारात्मक भेदभाव के उपाय अपनाये। भारतीय संविधान की प्रस्तावना में स्पष्ट शब्दों में मानवाधिकारों –साथ ही महिलाओं के मानवाधिकारों के प्रति राज्य की प्रतिबद्धता का उद्घोश है। संविधान के भाग–3 के अन्तर्गत मूल अधिकारों के रूप में भी महिलाओं को मानवाधिकार प्राप्त हैं। अनुच्छेद 14 भारत के प्रत्येक नागरिक – महिला एवं पुरुष – को विधि के समक्ष समान संरक्षण प्रदान करता है। अनुच्छेद 15(3) महिलाओं एवं बच्चों के पक्ष में राज्य को विशेष 'सकारात्मक' कदम उठाने का अधिकार देता है। अनुच्छेद 16 के आधार पर प्रत्येक नागरिक – महिला एवं पुरुष – को लोकनियोजन के विषय में अवसर की समानता प्राप्त है। अनुच्छेद 21 विधायिका एवं कार्यकारिणी दोनों के अतिक्रमण से संरक्षण प्रदान करता है। अनुच्छेद 23 मानव के दुर्व्यापार और बलात्श्रम का प्रतिषेध करता है तथा शोषण के विरुद्ध अधिकार देता है। अनुच्छेद 32 न्यायिक संरक्षण का लाभ प्रदान करता है। (कश्यप 2011 पृ0 96)

संविधान के भाग–4 में राज्य द्वारा अनुसरणीय कुछ नीति निर्देशक तत्व उल्लिखित हैं, जो पुरुष एवं स्त्री को समानता प्रदान करते हैं। अनुच्छेद 39 जीविकोपार्जन के समान अधिकार तथा समान कार्य के लिए समान वेतन का प्रावधान करता है। इसी प्रकार अनुच्छेद 42 में काम की न्यायसंगत और मानवोचित दशाओं तथा प्रसूति सहायता का उपबन्ध है। अनुच्छेद 43 में न्यूनतम मजदूरी का प्रावधान है तथा महिला अधिकारों की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण अनुच्छेद–44 है जो सभी 'पंथिक नियमावलियों' से परे एकसमान नागरिक संहिता की अनुशंसा करता है (कश्यप 2011 पृ0 156)। संविधान के भाग–4 में 42 वें संशोधन (1976) के बाद 'मूल कर्तव्यों' के प्रावधान जोडे गए जिनमें एक नागरिक कर्तव्य 'महिला की गरिमा' का सम्मान करना भी है। संविधान के अन्य सामान्य प्रावधानों में भी लिंगभेद का प्रतिषेध है तथा अनुच्छेद 325 एवं 326 सभी नागरिकों – स्त्री एवं पुरुष दोनों – को वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचन प्रणाली में लिंगभेद का निषेध करते हैं। (कश्यप 2011 पृ0 320) वस्तुतः भारतीय संविधान में कानून के शासन की बुनियादी प्रतिबद्धता मे स्त्री–पुरुष समानता अन्तर्निहित

है, जो महिलाओं के लोकतान्त्रिक अधिकारों को संरक्षित करती है। 73 वें एवं 74 वें संशोधनों के बाद महिलाओं के लिए स्थानीय निकायों में 33.3 प्रतिशत आरक्षण के बाद महिला अधिकारों की स्थिति में गुणात्मक परिवर्तन की शुरूआत देखी जा सकती है, जो अवश्य ही महत्त्वपूर्ण है। अब यह आरक्षण 50 प्रतिशत किया गया है।

उपर्युक्त संवैधानिक प्रावधानों के अतिरिक्त संविधानप्रदत्त विधियों द्वारा भी महिला अधिकारों को संरक्षण प्रदान किया गया है। अनैतिक व्यापार निवारण अधिनियम 1956, आपराधिक विधि (संशोधन) अधिनियम 1983, दहेज प्रतिशेध अधिनियम 1961/1984, सती निवारण अधिनियम 1934, विशेष विवाह अधिनियम 1956, हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956, विशष विवाह अधिनियम 1964, द मेडिकल टर्मिनेशन ऑफ प्रेग्नेन्सी ऐक्ट 1972, कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम 1984, स्त्री और बालक संस्था (अनुज्ञापन) अधिनियम 1956, मुस्लिम स्त्री (विवाह विच्छेद पर अधिकार संरक्षण) अधिनियम 1986 आदि। निश्चय ही उपर्युक्त अधिनियमों के क्रियान्वयन से महिलाओं की वैधानिक स्थिति अपेक्षाकृत मजबूत हुई है। यद्यपि कानून ने महिलाओं को अनेक प्रकार की सुरक्षात्मक व्यवस्थाएँ दी हैं किन्तु महिलाएं इन अधिकारों का उपयोग नहीं कर पा रही हैं और वे सामाजिक रूप से अनुनयपूर्ण निर्योग्यताओं का तथा निम्न स्तर का जीवन व्यतीत कर रही हैं। सामान्यतः वे अपने इन अधिकारो का उपभोग करने में अपनी अज्ञानतावश असफल हैं। यही कारण कानूनी रुप सें पुरुषों के साथ समानता के उद्देश्य की प्राप्ति में असफल हैं। दूसरा अन्य कारक जो कि महिलाओं को उनके अधिकारों के प्रयोग में बाधक है वह है सामाजिक संरचना जो कि ग्रामीण क्षेत्रों में मानव के व्यवहार को नियन्त्रित करती है। सामाजिक आदर्श एवं सामाजिक मूल्य जो कि स्त्रियों के द्वारा अपने अधिकारों के प्रयोग के पक्ष में नहीं है और इस प्रकार के सामाजिक विधानों के व्यवहारिक रूप से लागू होने में बाधक सिद्ध होते है। इनका उद्देश्य महिलाओं की स्थिति को ऊपर उठते देखना नहीं है।

भारत में महिलाओं की स्थिति सम्बन्धी समिति ने दिसम्बर 1974 में 'समानता की ओर' शीर्षक के तहत सरकार को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। यह रिपोर्ट जो अपने डाटाबेस में मूल्यवान और देश में महिलाओं के प्रति व्यापक और सतत् भेदभाव के प्रस्तुतीकरण में प्रभावशाली है, फरवरी 1975 में राज्य सभा में पेश की गई। सभा ने 13 मई, 1975 को इस पर विचार कर एक प्रस्ताव स्वीकृत किया जिसमें प्रधान मंत्री से आग्रह किया गया कि वह भारतीय महिलाओं पर निरन्तर होनेवाले आर्थिक और सामाजिक अन्यायों, असमर्थताओं और भेदभावों को यथा संभव समाप्त करनेवाले विशिष्ट प्रशासनिक और विद्यायी उपायों का एक व्यापक कार्यक्रम प्रारंभ करें। 27 मई,

1976 को रिपोर्ट पर लोकसभा में विचार किया गया। इसके अतिरिक्त 6 जुलाई, 1977 को रिपोर्ट के क्रियान्वयन पर 'आधे घंटे की चर्चा' भी हुई।

भारत में महिलाओं की स्थिति सम्बन्धी समिति के प्रतिवेदन प्रस्तुत किये जाने के बाद से महिलाओं संबंधी कानून के क्षेत्र में मिश्रित कार्यवाही की गयी। जहाँ तक महिलाओं के सिविल अधिकारों का सम्बन्ध है, अभी भी परम्पराओं और प्रथाओं की विविधता ने जड़ें जमा रखी हैं। विधान की दृष्टि से, दृढ़ीकरण के पुराने सिद्धान्त से ऊपर समानता की अवधारणा की दिशा में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई है। तुलनात्मक दृष्टि से सामाजिक कानूनों के संदर्भ में भारत की महिलाएँ अन्य देशों की महिलाओं से कहीं आगे हैं। लेकिन महिलाओं के अधिकारों की रक्षा करने वाले और उन्हें बढावा देने वाले कानूनों का कार्यान्वयन केवल धीमा, असन्तुलित और लापरवाहीपूर्ण ही नहीं रहा है और केवल यही नहीं कि महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से पुरूषों से अत्याधिक पीछे रखा जाता है, बल्कि यह भी कि कानूनों का प्रवर्तन अत्यन्त असन्तोषपूर्ण रहा है (मोहिनी गिरी, 1997 पृ059)

भारतीय समाज में जाति, वर्ग और लिंग के आधार पर विविध प्रकार के भेदभाव करने की सुदृढ सांस्कृतिक विरासत रही है। परम्परागत रूप से मजबूत पितृसत्तात्मक मानदंड महिलाओं को दासता और आज्ञाकारिता की सीमा में रहने का निर्देश देता है। यद्यपि यह सत्य है कि महिलाओं का स्थान लगभग सभी समाजों में एक समस्या है और मानव विकास में आज यह एक मुलभूत समाज की विभिन्न सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक असमानताओं से अलग नहीं किया जा सकता। जाति, समुदाय और वर्ग पर आधारित हमारे परम्परागत सामाजिक ढाँचे में निहित असमानताएँ विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं की स्थिति पर विशेष प्रभाव डालती है। महिलाओं के समाज द्वारा स्वीकृत अधिकार और उनकी सम्भावित भूमिका, उनके व्यवहार और उनके प्रति दूसरों के व्यवहार के मानक विभिन्न वर्गों और क्षेत्रों में विभिन्न हैं। ये विकास की अवस्था और प्रणाली तथा सामाजिक सोपान में उनकी स्थिति से बहुत प्रभावित होते हैं। इससे महिलाओं की स्थिति के सम्बन्ध में व्यापक और सामान्य बातें अवास्तविक बन जाती हैं। अतः यह आवश्यक है कि समाज के विभिन्न स्तरों में महिआलों की स्थिति और उनके कार्य की वास्तविकता को समझा जाए।

उन सभी जटिल प्रक्रियाओं ने, जिन्हें आधुनिकीकरण, प्रजातन्त्रीकरण, नागरीकरण, औद्योगिकरण, विकास आदि सामान्य शब्दावली द्वारा व्यक्त किया जाता है, विभिन्न रूपों में, महिलाओं की स्थिति को प्रभावित किया है। परन्तु इसके प्रभाव का कोई समान प्रतिमान ढूंढना सम्भव नही है, क्योंकि इन प्रक्रियाओं ने सभी वर्गो की महिलाओं को

समान रूप से प्रभावित नहीं किया है परन्तु सामान्य रूप से यह स्वीकार किया जाता है कि महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन सामाजिक परिवर्तनों के प्रतिमानों और दिशा का सूचक है। यदि इस परिवर्तन की दिशा संविधानिक निर्देशों के अनुरूप पुरूषों एवं महिलाओं के कार्यो के समतावादी वितरण की ओर है, तो परिवर्तन हितकर है, परन्तु यदि आधुनिकीकरण में संलग्न विभिन्न शक्तियों का परिणाम असमानताओं की वृद्धि में होता है, तो यह संविधान की भावनाओं के विपरीत होगा।

बदलता परिदृश्य

सामाजिक–सांस्कृतिक प्रभावों से उत्पन्न महिलाओं की निर्योग्यताओं तथा दबावों से यह पता चलता है कि अभी भी अधिकांश महिलाओं के लिए संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों और अवसरों का उपयोग करना बहुत ही दूर की बात है। समाज अभी भी ऐसे मानदंड तथा प्रथाएं स्थापित करने में सफल नहीं हुआ है जिससे महिलाएं उन बहुमुखी भूमिकाओं को निभा सकें जिनको पूरा करने में वर्तमान संदर्भ में उनसे आशा की जाती है। महिलाओं के साथ आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, स्वास्थ्य, शिक्षा, चिकित्सा, पोषण और कानूनी सभी क्षेत्रों में भेदभाव का व्यवहार किया जाता है, इस कारण से महिलाओं के सशक्तिकरण की आवश्यकता महसूस की गई।

महिलाएँ विश्व–समाज की आधी जनसंख्या हैं, किन्तु आज भी वे जीवन के हर क्षेत्र में पुरुषों से पीछे है। यह सही है कि बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में महिलाओं की स्थिति में थोड़ा बहुत सुधार आया, उनमें जागरूकता भी उत्पन्न हुई, किंतु स्थिति अभी उतनी परिवर्तित नहीं हुई है, जिस पर संतोष किया जा सके। केवल इतना हुआ कि महिलाएँ, विशेष रूप से शहरी क्षेत्र में रहने वाली महिलाएँ, शिक्षा के क्षेत्र में कुछ आगे आई हैं। वे सीमित संख्या में आत्मनिर्भर हुई हैं, रोजगार में लगी हैं। सीमित दायरे में वे सामाजिक क्षेत्रों में आगे बढी हैं। वे कार्यालयों, औद्योंगिक इकाइयों, विद्यालयों, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक मंचों पर भी दिखाई दे रही हैं। किंतु ऐसी महिलाओं की संख्या उंगलियों पर गिने जाने तक सीमित है, साथ ही इन महिलाओं में भी अधिकांश पुरुषों के अन्यायपूर्ण व्यवहार एवं अत्याचार से मुक्त नहीं हैं।

पाश्चात्य संस्कृति के बढ़ते प्रभाव के कारण भोगवादी प्रवृत्तियां भी बढी हैं। नैतिकता एवं आध्यात्मिकता का ह्रास हुआ है, पाश्चात्य संस्कृति की भांति हमारे देश में भी लोग महिलाओं को भोग–विलास की वस्तु समझने लगे, अतः महिलाओं के असम्मान और शोषण का ग्राफ ऊपर उठने लगा। लोगों को यह तथ्य स्वीकारना चाहिए कि हमारे देश में महिलाओं का दर्जा देवी का है, माँ, बहन, पत्नी का है, भोगवादी वस्तु का नहीं।

न ही हमारे देश में महिलाओं का स्थान विज्ञापन पर खुलेपन का है। पाश्चात्य संस्कृति के कारण आज विज्ञापनों में महिला का खुला प्रदर्शन भी महिलाओं के शोषण एवं बढते अत्याचार का कारण बन चुका है। तात्पर्य यह है कि हमारे देश की परम्परा, सभ्यता, संस्कृति में महिलाओं को गृहणी एवं सम्मानीय माना गया है, वहीं पाश्चात्य संस्कृति में महिला को भोगवादी बिकाऊ वस्तु माना गया है। अतः यह आवश्यक हो गया है, कि हम अपनी सभ्यता और संस्कृति के नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों को पुनः जीवित करें और अपनी मानसिकता को इसी अनुरूप बनाऐ रखें कि महिलाओं का सम्मान सर्वोपरि है। महिलाओं को भी अपने सम्मान एवं शोषण के बारे में खुद सतर्क रहना होगा। आज महिलायें खुलापन, उदारीकरण और नारी स्वतंत्रता के नाम पर अपनी सोच को स्थिर नहीं रख पा रही है। लेकिन कोई भी कदम उठाने से पूर्व उन्हें यह अच्छी तरह सोच–समझ लेना चाहिए कि मर्यादा में रहकर ही महिला 'अस्तित्व' सुरक्षित रह सकता है।

आज महिलाएँ हर क्षेत्र में अपनी तरक्की का परचम लहरा रहीं है। महिलाएँ वायु सेना में भर्ती होकर देश की रक्षा सेवा का भार संभाल रही हैं। रक्षा सेवाओं में महिलाओं की भागीदारी निःसंदेह गौरव की बात है, क्योंकि अभी तक महिलाएँ सभी क्षेत्रों में पुरुषों के साथ कंधें से कंधा मिलाकर सहयोग कर रही थीं, किन्तु कठिन सेवाओं में उनकी संख्या अल्प थी। पर अब कोई भी क्षेत्र महिलाओं की सेवा से अछुता नहीं रहा है। आज की महिला दहेज के विरुद्ध अपनी आवाज बुलंद करती है। दहेज के विरुद्ध शादी के मंडप में फेरों से इन्कार करने के मामले प्रकाश में आ रहे हैं, एवं बाल–विवाह के विरोध में भी लड़कियाँ खुलकर सामने आ रही हैं। सरकार द्वारा किये गये प्रयासों की सार्थकता भी दिखाई दे रही है। घरेलू हिंसा अधिनियम 2005 के अन्तर्गत घरेलू हिंसा का स्पष्टीकरण किया गया है। 'सर्व शिक्षा अभियान' ग्रामीण महिलाओं की शिक्षा को प्रोत्साहन करके शिक्षा के स्तर में सुधार दर्शाएगा। अतः हर तरह से महिलाओं को सशक्त किये जाने के प्रयास जारी हैं। किन्तु 21 वी सदी में उन्हें उनके नैसर्गिक अधिकार दिलाना शेष है। अतः इस नयी सदी में यह आशा अवश्य की जानी चाहिए कि हर क्षेत्र में महिलाओं को उनका जायज हक मिले, एवं उनका शोषण समाप्त हो।

भारत का संविधान लिंग, जाति, रंग, आस्था आदि का भेद मिटा सबको अधिकार देने को कटिबद्ध है। किन्तु आजादी के 67 वर्ष गुजर जाने के बाद भी महिला पुरुष में असमानता जारी है। महिलाओं ने हर क्षेत्र में अपनी प्रतिभा का लोहा मनवाया है। वह किसी की क्षेत्र में पुरुषों से पीछे नहीं रही हैं तथापि महिलाओं पर शोषण एवं अत्याचार जारी है। आज महिलाएँ अपने ही घर में सुरक्षित नहीं है और अपनों के द्वारा ही शोषण,

अत्याचार की शिकार हैं। गृह मंत्रालय के अपराध रिकार्ड ब्यूरों की रिपोर्ट के अनुसार 44 मिनट में अपहरण और 47 मिनट में एक बलात्कार होता है। प्रतिदिन लगभग 22 हत्याएँ दहेज हेतू होती है। इस रिपोर्ट के अनुसार भारत के दिल्ली (16%), हैद्राबाद (8.1%), बंगलोर (6.5%), अहमदाबाद (6.4%) और मुंबई (5.8%) इन पांच बडे शहरों में महिलाओं के खिलाफ अधिक अपराध होते है। इसमें दिल्ली का प्रथम क्रमांक है। (एन.सी.आर.बी. 2010) बलात्कार एवं छेडछाड़ जैसी घटनाओं को उदारीकरण से बढी कुप्रवृत्तियों ने और अधिक बढावा दिया है। सूचना परिदृश्य में भी यही प्रवृत्ति देखी जा रही है। सूचना का प्रसार हुआ है, पर उसके रूप और गुण पर सामंती प्रवृत्तियों की ही जकड है। टी.वी. विज्ञापन उपभोक्तावादी समाज को जिंदा रखने का सफल टॉनिक बन रहा है। इन विज्ञापनों में महिलाओं को अत्यन्त सक्रिय और सुंदर–सुघढ़ रूप के साथ पेश किया जाता है। इससे महिलाओं पर एक किस्म का सामाजिक दबाव बनता है, कि वे अपनी पहचान विज्ञापन में दिखाई जाने वाली उसी वस्तुरूपी महिला से करें। अतः यह महिला की जिस छवि को पेश करता है वह अलोकतांत्रिक और पितृसत्तावादी मूल्यों पर आधारित हैं, जिसमें या तो वह नायक के जीवन की सजावटी वस्तु की तरह होती है या फिर उसकी सार्थकता उसके मिटने में ही दिखाई जाती है – भले ही वह शारीरिक या मानसिक स्तर पर हो। इस तरह महिला के प्रति वर्तमान समय और समाज की जीवनदृष्टि में कोई बुनियादी फर्क नहीं आया है। एक ओर तो उससे अपेक्षाएँ बदली नहीं है और दूसरी ओर आर्थिक जीवन पर पड़ने वाले निरन्तर दबावों और बढती हुई भौतिकता की मांग यह है की महिलाएं भी अनिवार्यतः उत्पादक व्यवस्था का अंग ही बने।

मानव अधिकारों के संरक्षण का जो अभिनव और विधि–सम्मत आंदोलन विश्व में प्रारंभ हुआ, वह निश्चय ही मानवता के संरक्षण और विकास का एक उज्ज्वल सोपान और महत्त्वपूर्ण अध्याय है। भारत सहित संसार के अधिकांश देशों में इस अभियान ने महिलाओं के प्रति समानता, वैचारिक सहृदयता और उत्तरदायित्व बोध का सूत्र सामने रखा है। लगातार मानसिक और बौद्धिक प्रेरणा विकृतियों के शमन का माध्यम बनती है। सामाजिकता में पुरुष और महिला सम्बन्धी भावनात्मक असंतुलन और विकृति धीरे–धीरे शताब्दियों में जमती गयी। उसके शर्मनाक रूपों को तथ्यों, तर्को, विचारों, कानूनों और परम्पराओं के द्वारा परास्त करने में भी लम्बा समय लगेगा। विधिवेत्ता कितने ही कानून एवं दण्ड का प्रावधान करें, समाजशास्त्री कितने ही समाज सुधारक प्रयास करें, जब तक व्यक्ति की सोच में विशेषतः भूमंडलीकरण के दौर में उपजी कुमनोवृत्तियों के शमन हेतु मुलभूत परिवर्तन नहीं आता, तब तक महिला उत्पीडन एवं शोषण से मुक्ति नहीं पा सकती।

वर्तमान संदर्भ में महिलाओं की असंतोषजनक परिस्थितियों के प्रति समाज और सरकार जागरूक हो रहे हैं, महिला आंदोलन मजबूत हो रहे हैं, और महिलाओं की समस्याओं को राष्ट्र की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक कार्यसूचियों में रखने का सतत संघर्ष चल रहा है। तथापि महिलाओं के शोषण, उत्पीडन में लगातार इजाफा हुआ है। अतः महिला अधिकारों को लेकर सुलझे हुए चिन्तन और ठोस काम किये जाने की आवश्यकता है। असंगत भूमंडलीकरण की कोशिशों के मद्देनजर स्थानीय अस्मिता के सवाल को और मजबूती से उठाया जाना चाहिए। महिला अधिकार का सीधा संबंध जीने के अधिकार, एवं उनकी 'अस्मिता' से है, अतः मानव–अधिकारों में महिलाओं हेतु विशेष प्रावधान किये जाने की आवश्यकता है। नाइंसाफी से सुरक्षा के लिए महिलाओं को एक अलग वर्ग के रूप में माना जाना चाहिए तथा नीति–निर्माण एवं नियोजन के अन्तर्गत इसका ध्यान दिया जाना चाहिए। महिलाओं की समस्याएँ मुख्य रूप से सामाजिक पूर्वाग्रह और परम्परागत एवं पारम्परिक दृष्टिकोणों के सामाजिक व्यवस्था में घुले मिले होने के कारण हैं। इसमें सुधार केवल व्यवस्था परिवर्तन और सही आम राय विकसित करके ही किया जा सकता है। इसके लिए दो बातों पर ध्यान रखना आवश्यक है। पहली महिलाओं पर थोपी गयी अयोग्यता और असमानता को सम्पूर्ण समाज के शोषणवादी व्यवस्था के दबाव के कारण पीडित रहते हैं। दूसरे, यह महिलाओं पर निर्भर करता हैं कि वे अपने को कहां तक स्वतन्त्र कर पाती है। यद्यपि बाहरी सहायता उपयोगी हो सकती है लेकिन अपने को स्वतन्त्र करने का वास्तविक संघर्ष तो शोषित व्यक्ति या वर्ग को स्वयं ही करना होगा। इसमें सबसे बडी बात यह है कि आज की आधुनिकता के संदर्भ में नग्नता, नशाखोरी इत्यादि को महिला स्वतन्त्रता का नाम देकर महिलाओं के व्यापार तथा शोषण के जो नए तरीके अपनाए जा रहे हैं उनके प्रति महिलाओं को जागरूक होना होगा। अन्य संदर्भ में अंतर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय स्तरों पर एक गैर–सरकारी महिला आयोग बने, जो निगरानी एवं दबाव–समूह का काम करे। यद्यपि राष्ट्रीय स्तर पर महिला आयोग कि व्यवस्था है, परंतु यह महिलाओं का शोषण, उत्पीड़न के विरुद्ध न्याय दिलाने में अक्षम रहा है। यह वर्ग विशेष तक ही सीमित है। जहॉं उच्च वर्ग से संबंधित कोई मामला सामने आता है, वहॉं आयोग पर राजनीतिक प्रभाव काम करने लगता है। अतः इसे और अधिक अधिकार दिये जाने चाहिए। ताकि आयोग न्याय प्रक्रिया में सीधा हस्तक्षेप कर सके। इसके साथ ही राजनीतिक एवं आर्थिक फैसलों की प्रक्रिया में महिलाओं की भागीदारी को सुनिश्चित किया जाना बहुत जरूरी है तथा विभिन्न सामाजिक कुप्रथाओं के विरूद्ध एवं महिलाओं के कानूनी अधिकारों के बारे में उन्हें जानकारी हेतु सुचना के प्रसार को तेज किया जाना चाहिए। यह एक संयुक्त जिम्मेदारी है जिसमें सामुदायिक संगठनों, विधि प्रवर्तन तंत्र एजेसियों, शिक्षकों, न्यायपालिका एवं मास मीडिया के सतत सहयोग की आवश्यकता है।

संदर्भः–

1. कौशिक आशा (2005), भारत में मानव अधिकार, जयपुर, पंचशील प्रकाशन.
2. कुमारी, रमेश (2008), संस्कृति, साहित्य और स्त्री, दिल्ली, अकादमी प्रतिमा.
3. गिरी, मोहिनी (1997), राष्ट्रीय महिला आयोग रिपोर्ट.
4. मंडल, झुमा (2009), भारतीय समाज और महिलाओं की दशा, भारतीय राजनीति विज्ञान शोधपत्रिका
5. Crimes in India, 2010, NCRB, Ministry of Home Affairs, GOI.
6. Dhanda, Poonam (2012) Status of Women in India, RBSA Pub.
7. Kashyap, Subhash (2011), Our Constitution, New Delhi, NBT.

* * *

महिला हिंसा एवं लिंग भेद के संबंध में राष्ट्रीय एंव अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर कानूनी उपबंध

*डॉ. अनिला
*डॉ. लाला राम

मानव सभ्यता के विकासक्रम में मानव ने अपनी आवश्यकताओं एवं सुविधाओं को ध्यान में रखते हुये सामाजिक व्यवस्था का निर्माण किया। यह निर्माण कबीलायी समूहों ने अपनी प्राकृतिक दशाओं एवं उस समय की आवश्यकताओं के अनुसार किया था। आगे चलकर विश्व में दो प्रकार के समाज स्थापित हुये – पुरुष प्रधान एवं स्त्री प्रधान समाज। वर्तमान संदर्भ में विश्व के अधिकांश देशों में पुरुष प्रधान व्यवस्था है जबकि कुछ जनजातियों में स्त्री प्रधान व्यवस्था है। भारत में भी पुरुष प्रधान व्यवस्था है अपवाद स्वरुप खासी, गारों एवं नायर जनजाति समुदायों में स्त्री प्रधान व्यवस्था है। है। सम्भवतः लिंग भेद सामाजिक व्यवस्था का विश्वव्यापी एवं परम्परागत हिस्सा बन चुका है। परिवार रूपी यह सामाजिक भेदभाव कहीं न कहीं आगे जाकर हिंसा का स्वरूप ग्रहण कर लेता है। पारिवारिक भेदभाव व हिंसा मूल रूप से समाजिक व्यवस्था का प्रतिदर्पण ही होती हैं अर्थात् सामाजिक व्यवस्था जैसी होती है वैसा ही परिवार का ढांचा! अतः लिंग भेद परिवार से प्रारम्भ होकर समूह, समुदाय, राष्ट्र व अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर हमें दिखायी पड़ता है। लिंग भेद किसी राष्ट्र, प्रान्त या क्षेत्र की समस्या न होकर यह मूलतः मानव समुदाय के भीतर मानव निर्मित सामाजिक समस्या है, जिसके निर्माण के लिए कहीं न कही पुरूष प्रधान समाज जिम्मेवार है। सन् 1995 में बीजिंग में चौथे महिला विश्व सम्मेलन में संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव बत्रस गाली ने अपने उद्‌वोधन में कहा कि ''विश्व को महिला की दृष्टि से देखो...... महिला पुरुष वर्तमान में असमान विश्व में रह रहे है। लिंग भेद तथा असहनीय असमानतायें विश्व के विकसित एवं

*विधिवेता एवं शिक्षाविद – 21 गढ मगरी, रत्नेश्वर कॉलोनी, शोभागपुरा, उदयपुर, राजस्थान–313 001

अविकसित देशों में विद्यमान है।'' जातीय व्यवस्था के आधार पर जिस प्रकार समाज का खण्डात्मक विभाजन, संस्तरण, निर्योग्यताएँ, विशेषाधिकार, पेशे के चुनाव पर प्रतिबन्ध तथा विवाह सम्बन्धी नियम हैं उसी प्रकार मानव समाज ने पुरुष एवं महिला के आधार पर खण्डात्मक विभाजन की व्यवस्था कर रखी है। सामाजिक व्यवस्था में महिला को पुरुषों की अपेक्षा दोयम दर्जे की स्थिति प्रदान की है। इस तरह लिंग आधारित संस्तरण स्थापित किया गया। महिलाओं के सन्दर्भ में विश्व स्तर पर भिन्न –भिन्न निर्योग्यताओं का प्रचलन है, कुछ राष्ट्रों में नागरिकता सम्बन्धी निर्योग्यतायें, धार्मिक निर्योग्यतायें, तो कुछ सामाजिक क्षेत्र में निर्योग्यता स्थापित कर रखी है। दूसरी तरफ पुरुष ने सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक क्षेत्र में विशेष अधिकार अपने पास रख लिये। विश्व में कई ऐसे देश है जहाँ महिलायें पेशे का चयन नहीं कर सकतीं तो कुछ राष्ट्रों में पेशे का चयन तो कर सकती हैं, लेकिन महत्वपूर्ण निर्णयों में पुरुष का हस्तक्षेप रहता है। विवाह के संदर्भ में भी विभिन्न राष्ट्रों में पृथक–पृथक व्यवस्था है परन्तु इस व्यवस्था में भी महिलाओं की स्थिति दोयम दर्जे की ही है। इस तरह हम कह सकते हैं कि मानव समाज को भी दो जातियों में विभाजित कर रखा है – पुरुष व स्त्री जाति।

दासता, स्त्री व पुरुष की असमानता को जब अरस्तु अपने तर्क संगत आधार प्रदान कर इस प्राकृतिक निषक्तता को छुट की दुहाई देता है, तब मानवता की श्रेष्ठता का दार्शनिक आधार खिसकता प्रतीत होता है। अरस्तु का दार्शनिक विचार भेदभाव की इस धारणा पर आधारित था कि पुरुष स्त्रियों से एवं युनानी गैरयुनानियों से श्रेष्ठ है। इस मिथ्यात्मक तथ्य को सही ढंग से अर्थशास्त्री अर्मत्य सेन ने समझाने का प्रयास किया। अर्मत्य सेन ने सामाजिक अवसरों को सभी के लिए व्यापक स्तर पर खोलने की आवश्यकता को विकास का मुद्दा बनाया। आयु, जाति, भाषा, रंग, धर्म, राष्ट्र आदि के आधार पर व्याप्त भेदभाव में सर्वाधिक रुप में विश्व स्तर पर प्रचलित लिंग आधारित भेदभाव है। यह लिंग आधारित भेदभाव विश्व स्तर पर किसी न किसी रुप में अवश्य मौजूद है चाहे वह समाज विकसित, अविकसित, सभ्य, असभ्य, शिक्षित या अशिक्षित हो। विश्वव्यापी भिन्न भिन्न सामाजिक व्यवस्था में महिला हिंसाओं की रोकथाम के लिए कई तरह के प्रयास किये जा रहे हैं। महिला हिंसा की रोकथाम के लिए कई सामाजिक सुधार आंदोलन हुये। राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर महिला

हिंसा की रोकथाम के लिये आवाज उठायी गई उसी के परिणाम स्वरुप राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कानुनों/विधानों व संधियों का निर्माण हुआ। यहाँ हम महिला हिंसा एवं लिंग आधारित भेदभाव की समाप्ति के लिये किये गये संवैधानिक एवं कानूनी प्रावधानों को दो भागों में विभाजित कर देख सकते हैं –(1) अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर (2) राष्ट्रीय स्तर पर ।

1. अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर – अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर महिला हिंसा एवं लिंग आधारित भेदभाव की समाप्ति हेतु अन्तर्राष्ट्रीय घोषणा पत्र, कन्वेषन तथा सम्मेलन का आयोजन किया जाता रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय द्वारा समय समय पर अन्तर्राष्ट्रीय नीतियों में परिवर्तन कर महिलाओं को पुरुषों के समकक्ष स्थापित करने का प्रयास किया गया।

(अ) मानव अधिकार का सार्वभौमिक घोषणा पत्र – मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा पत्र की उद्देषिका में उल्लेखित किया गया है कि मानव परिवार के सभी सदस्यों की अर्न्तनिहित गरिमा तथा सम्मान अभेदपरक अधिकार विश्व में स्वतंत्रता, न्याय एवं शान्ति के आधार हैं। मूल मानव अधिकारों में मानव देह की गरिमा और महत्व तथा पुरुषों और स्त्रियों के समान अधिकारों में अपने विश्वास की पुनः पुष्टि की है और सामाजिक प्रगति करने और स्वतंत्रता के साथ उत्कृष्ट जीवन स्तर की प्राप्ति के निर्णय को शामिल किया गया।

- अनुच्छेद 1 में उल्लेखित है कि सभी मनुष्य गरीमा और अधिकारों की दृष्टि से जन्मजात स्वतंत्र और समान हैं।
- अनुच्छेद 2 में उल्लेखित है कि मानव अधिकार सार्वभौमिक घोषणा पत्र में घोषित अधिकार एवं स्वंतत्रता प्रत्येक व्यक्ति को प्राप्त है। इसे मूल, वंश, लिंग, भाषा, धर्म, विचार, राष्ट्र, जन्म व अन्य प्रस्थिति के आधार पर कोई विभेद नहीं किया जायेगा।
- अनुच्छेद 4 में किसी भी व्यक्ति की किसी भी प्रकार की दासता एवं दास व्यवहार निषिद्ध किया गया है।
- अनुच्छेद 5 में अमानवीय एवं अपमानजनक व्यवहार करने से रोका गया है।
- अनुच्छेद 7 में विधि के समक्ष सभी समानता तथा किसी भी भेदभाव के बिना विधि के समान संरक्षण के हकदार है।
- अनुच्छेद 12 में किसी भी व्यक्ति के एकान्त, परिवार, घर अथवा पत्र व्यवहार के साथ मनमाना व्यवहार नहीं किया जायेगा।
- अनुच्छेद 16 में वयस्क महिला व पुरुष को मुल वंश, राष्ट्रीयता अथवा धर्म के कारण किसी भी सीमा के बिना विवाह करने तथा परिवार स्थापित करने का अधिकार है तथा उन्हें विघटन का समान अधिकार प्राप्त है। विवाह के इच्छुक पक्षकारों की स्वतंत्रता व पूर्ण सहमति से ही विवाह किया जायेगा।

- अनुच्छेद 17 में प्रत्येक व्यक्ति अर्थात् पुरुष व महिला को सम्पति का स्वामी बनने का अधिकार है उन्हें किसी भी प्रकार से सम्पति से मनमाने ढंग से वंचित नहीं किया जा सकता।
- अनुच्छेद 19 में महिला व पुरुष को विचार एवं अभिव्यक्ति की स्वंतत्रता का अधिकार प्रदान किया गया है।
- अनुच्छेद 20 में प्रत्येक व्यक्ति अर्थात् महिला व पुरुष को शान्तिपूर्ण सम्मेलन व संगठन बनाने का अधिकार दिया गया है।
- अनुच्छेद 21 में महिला व पुरुष को अपने देश में लोकसेवा में समान अवसर प्राप्त है तथा प्रजातान्त्रिक व्यवस्था में भाग लेने का व चुनने का अधिकार है।
- अनुच्छेद 23 में महिला व पुरुष को काम करने एवं नियोजन के चुनाव की स्वतंत्रता एवं कार्य की न्यायोंचित एवं अनुकूल दशाओं का एवं बेरोजगारी के विरुद्ध संरक्षण का समान रुप से अधिकार प्राप्त है तथा किसी महिला पुरुष को किसी विभेद के बिना समान कार्य के लिये समान वेतन का अधिकार दिया गया।
- अनुच्छेद 26 में प्रत्येक व्यक्ति अर्थात् महिला व पुरुष को शिक्षा का अधिकार प्राप्त है। कम से कम प्राथमिक एवं मौलिक माध्यमिक स्तर पर शिक्षा निःशुल्क व अनिवार्य होगी। माता पिता को समान अधिकार दिया गया कि अपनी संतान को किसी भी प्रकार की शिक्षा दिलवा सकते है।
- अनुच्छेद 27 में प्रत्येक व्यक्ति अर्थात् महिला पुरुष समुदाय के सांस्कृतिक जीवन में मुक्त रुप से भाग लेने, कलाओं का आनन्द लेने एवं वैज्ञानिक प्रगति तथा उसके लाभों में हिस्सा प्राप्त करने का अधिकार है।
- अनुच्छेद 29 में यह प्रावधान किया गया है कि कोई भी देश इन अधिकारों एवं स्वतंत्रताओं का संयुक्त राष्ट्र संघ की परियोजनाओं एवं सिद्धान्तों के प्रतिकूल प्रयोग नहीं करेगा तथा प्रत्येक व्यक्ति अर्थात् पुरुष महिला पर अपने अधिकारों व स्वतंत्रताओं के प्रयोग में वही मर्यादायें लगायी जायेंगी जो अन्य व्यक्ति के अधिकारों एवं स्वतंत्रताओं की न्यायोचित अपेक्षाओं को पूरा करने में हस्तक्षेप नहीं करती हैं।

संयुक्त राष्ट्र चार्टर में महिला अधिकार – राष्ट्र संघ के अनुच्छेद 1(3) में संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रयोजनों में से एक प्रयोजन आर्थिक, सामाजिक या सांस्कृतिक मानवीय प्रकृति की अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को हल करने के लिये तथा मानवीय अधिकारों व मौलिक स्वतंत्रताओं के बिना जाति, प्रजाति, लिंग, भाषा या धर्म के भेदभाव

के बिना अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग प्राप्त करता है। अतः यह अनुच्छेद महिला एवं पुरुष के मानवीय अधिकारों को अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा बनाये रखने में समान स्तर रखता है।

मानव अधिकारों का संयुक्त राष्ट्र कमीशन – संयुक्त राष्ट्र संघ की आर्थिक एवं सामाजिक परिषद द्वारा स्थापित यह कमीशन समय–समय पर महिलाओं की स्थिति एवं उनकी स्वतंत्रता व समानता के विषयों पर अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमयों एवं घोषणाओं को तैयार करना तथा लिंग आधारित भेदभाव को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर रोकने का दायित्व भी दिया गया है।

महिलाओं की प्रस्थिति पर कमीशन – संयुक्त राष्ट्र संघ ने 1946 में आर्थिक एवं सामाजिक परिषद् द्वारा महिलाओं की प्रस्थिति पर कमीशन का गठन किया गया। इस कमीशन का मुख्य उद्देश्य राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं शैक्षणिक अधिकारों के क्षेत्र में महिलाओं की स्थिति पर अपनी रिपोर्ट तैयार करना तथा महिलाओं के अधिकारों के क्षेत्र में लिंग भेद आधारित भेद को समाप्त करने हेतु अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमय एवं घोषणाओं को तैयार करना।

लिंग आधारित समानता की उपलब्धियाँ

1. महासभा द्वारा 1949 में व्यक्तियों के अवैध व्यापार पर रोक एवं अन्य लोगों की वैश्यावृति द्वारा शोषण पर अभिसमय।
2. महासभा द्वारा 1952 में मतदान के अधिकार समेत महिलाओं के राजनीतिक अधिकारों पर अभिसमय।
3. अपने पतियों के कार्यों के बावजूद अपनी राष्ट्रीयता धारित किये रहने या परिवर्तन करने के अधिकार पर अभिसमय – 1957।
4. नियोजन एवं उपजीविका से सम्बन्धित भेदभाव पर अभिसमय –1960।
5. 1962 में महासभा द्वारा अंगीकार की गयी विवाह हेतु सम्मति। विवाह के लिये न्यूनतम आयु तथा विवाह के पंजीकरण पर अभिसमय।
6. महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव की समाप्ति पर घोषणा –1967।
7. संयुक्त राष्ट्र संघ ने 1982 में अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सहयोग के प्रोत्साहन हेतु महिलाओं की भागीदारी का एक घोषणा पत्र।

8. महासभा द्वारा 1979 में महिलाओं के विरुद्ध सभी प्रकार के भेदभावों की समाप्ति की घोषणा।

9. 1993 में महासभा ने महिलाओं में विरुद्ध हिंसा की समाप्ति पर घोषणा।

2. राष्ट्रीय स्तर पर – अधिनियमों का निर्माण कर महिलाओं को कानूनी रूप से सशक्त करने का प्रयास किया गया। महिलाओं पर होने वाली हिंसाओं की रोकथाम इन। विभिन्न कानूनों का निर्माण कर महिलाओं को सुरक्षा तथा अपराधियों को सजा दिलाने का प्रयास किया गया।

(अ) महिलाओं के लिए सामाजिक विधायन

- **सती प्रथा निवारण अधिनियम 1829 (संशोधन 1987)** : यह विधायन किसी भी विधवा को सती होने के लिए प्रेरित करने से रोकता है। यदि व्यक्ति सती होने के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उसे सहायता व दुष्प्रेरण करता है तो उसे भी अपराध की श्रेणी में रखा गया है।
- **हिन्दू विवाह पुनर्विवाह अधिनियम 1856** : समाज सुधारकों के प्रयत्न से हिन्दू विधवा पुर्नविवाह अधिनियम का निर्माण ब्रिटिश सरकार को करना पड़ा। इस अधिनियम में उच्च्य जातियों में विधवा विवाह निषेध को असंवैधानिक घोषित कर उसे विवाह करने की स्वतंत्रता का अधिकार प्रदान किया गया।
- **हिन्दू स्त्रियों का सम्पत्ति पर अधिकार अधिनियम 1937** : इस अधिनियम दाय भाग से नियंत्रित परिवार का यदि कोई व्यक्ति अपनी सम्पत्ति को बिना तय किये मृत्यु को प्राप्त कर लेता है तो उसकी विधवा को उसके बेटों के बराबर हिस्सा मिलने का प्रावधान किया गया है तथा यह अधिनियम अन्य नियमों से नियंत्रित परिवारों में भी विधवाओं को जीवित बेटों के सामन ही सम्पत्ति का हिस्सेदार मानता है। इस तरह से भारतीय हिन्दू समाज में विधवाओं को सम्पत्ति का अधिकार प्राप्त हुआ।
- **बाल विवाह निरोधक अधिनियम 1929 (संशोधन 1978)** : शारदा एक्ट नाम से एक अधिनियम पारित किया गया जिसके द्वारा बाल विवाह को गैर कानूनी ठहराया गया। 1978 शारदा एक्ट में संशोधन करते हुए महिलाओं की आयु 15 से बढ़ाकर 18 व पुरुष की आयु 18 से बढाकर 21 कर दी गयी।
- **विशेष विवाह अधिनियम 1872 (संशोधन 1923, 1954)** : सन् 1872 में ब्रिटिश सरकार द्वारा विशेष विवाह अधिनियम का निर्माण कर विवाह के धार्मिक

प्रतिबन्धों को दूर कर दिया तथा अन्तर्जातिय विवाह को वैधता प्रदान की गयी। 1923 में अधिनियम का संशोधन का तलाक का प्रावधान जोड़ दिया गया। 1954 में पूर्व के विशेष विवाह अधिनियम को समाप्त कर हिन्दू, इस्लाम, ईसाई ध र्मावलम्बियों के बीच विवाह की व्यवस्था को मान्यता प्रदान की। अब व्यक्ति को यह घोषणा करने की आवश्कता नहीं है कि वह किसी धर्म को नहीं मानता।

- **हिन्दू विवाह तथा विवाह विच्छेद अधिनियम 1955 (संशोधन 1976)** : इस अधिनियम में विवाह सम्बन्धी अधिनियमों को रद्द कर दिया गया तथा हिन्दूओं के अतिरिक्त बोद्ध, जैन, सिख धर्मों को इसमें सम्मिलित कर लिया गया। 1976 अधिनियमों को संशोधित कर कन्या को यह अधिकार दिया गया कि वह बालिग होने से पहले अपनी बचपन में की गयी शादी को रद्द कर सकती है। साथ ही साथ निर्दयता व परित्याग को विवाह विच्छेद का कारण भी मान लिया गया तथा अपनी सहमति से विवाह विच्छेद करने का भी अधिकार पुरुष व महिलाओं को प्रदान किया गया। हिन्दू पत्नी अपने पति से भरण पोषण पाने की हकदार होती है, विधवा पुत्र वधु अपने ससुर से भरण पोषण पाने की हकदार होगी।
- **हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956** : हिन्दू स्त्रियों के सम्पत्ति अधिकार को इस अधिनियम के द्वारा प्राप्त किया गया है। इस अधिनियम के द्वारा समस्त हिन्दूओं के लिए एक समान कानून का निर्माण किया गया तथा हिन्दू स्त्री की सीमित सम्पत्ति को समाप्त करके उसे सम्पत्ति पर पूर्ण अधिकार दिया गया।
- **हिन्दू दत्तक ग्रहण एवं भरण पोषण अधिनियम, 1956** : अधिनियम की धारा 20 में वृद्ध माता–पिता के भरण पोषण की व्यवस्था की गई है । धारा 20 (1) वृद्धजनों के भरणपोषण देने के लिए आबद्ध करती है। यह अधिनियम वृद्धजन के उत्तराधिकारी से भरण पोषण दिलाने की व्यवस्था करता है। साथ ही अविवाहित पुत्रियों को भी भरण पोषण देने के लिए बाध्य किया गया है।
- **महिलाओं तथा लड़कियों का अनैतिक व्यापार दमन अधिनियम 1956 (संशोधन 1986)** : वैश्यावृति जैसी कुप्रथा को समाप्त करने के उद्देश्य से यह अधिनियम बनाया गया। उस अधिनियम में महिलाओं को उसकी इच्छा के खिलाफ मजबूर करने पर उम्रकैद की सजा या कम से कम सात वर्ष तक की सजा का प्रावधान कर दिया गया तथा महिलाओं से सिर्फ महिला पुलिस अधिकारी द्वारा पूछताछ करने की व्यवस्था कर दी गयी।
- **दहेज प्रतिबंध अधिनियम 1961 (संशोधन 1984,1986)** : दहेज प्रतिबंध अधिनियम के तहत दहेज लेने व देने को अपराध की श्रेणी में रखा गया।

- **मातृत्व लाभ अधिनियम 1961** – यह अधिनियम उन महिलाओं को मातृत्व लाभ उपलब्ध कराता है जिन्हें कार्य करते हुए 80 दिन से ज्यादा हो गये हैं। ये महिलायें प्रसव/गर्भपात के लिए अवकाश पाने एवं निःशुल्क चिकित्सा सुविधा पाने की हकदार होगी।
- **समान पारिश्रमिक अधिनियम 1976** – यह अधिनियम समान कार्य के लिए समान वेतन की व्यवस्था करने का प्रावधान करता है। पुरुष तथा महिला के कार्यों को भिन्न–भिन्न नजरिये से आकलित करने पर पाबन्दी लगाता है।
- **मुस्लिम विवाह (तलाक के अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम 1986** : इस अधिनियम में मुस्लिम तलाकशुदा महिला को इद्दत की अवधि तक अपने पूर्व पति से गुजारा भत्ता पाने का हक दिया गया और अगर वह महिला तलाक के पूर्व या पश्चात् किसी बच्चे को जन्म देती है तो यह गुजारा भत्ता बच्चे की दो वर्ष की आयु तक कायम रहेगा। यह अधिनियम मुस्लिम महिला को मेहर वापस पाने तथा अपने निजी सामान अपने पास रखने का हक प्रदान करता है।
- **घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम 2005** : घरेलू हिंसा रोकथाम अधिनियम 2005 नियम 2006 महिलाओं के प्रति घर के भीतर होने वाली हिंसा की रोकथाम हेतु यह वृहद कानून बनाया गया, जिसमें शारीरिक एवं मानसिक दोनों प्रकार की हिंसाओं को सम्मिलित किया गया। इस अधिनियम के माध्यम से महिला व उसके आश्रितों के भरण पोषण, आवास, सुरक्षा, चिकित्सा तथा आर्थिक नुकसान की भरपायी के प्रावधान किये गये।
- **माता–पिता व वृद्धजन के भरणपोषण एवं कल्याण अधिनियम, 2007** : यह अधिनियम वृद्धजन एवं माता–पिता के भरण पोषण के लिये स्वतंत्र कानूनी व्यवस्था प्रदान करता है। इससे पूर्व भरण पोषण की जो व्यवस्था थी वह अन्य वर्ग के भरण पोषण के साथ की गई व्यवस्था थी।

(ब) महिलाओं के लिए संवैधानिक उपबन्ध

संविधान की उद्देशिका में कहा गया है '' हम भारत के लोग'' भारत को एक ''प्रभुत्व सम्पन्न लोकतान्त्रिक गणराज्य'' बनाने के लिये तथा उसके समस्त नागरिकों को न्याय, स्वतंत्रता और समानता दिलाने और उन सब में बंधुता बढ़ाने के लिये दृढ़ संकल्प करते हैं अर्थात् संविधान की उद्देशिका में महिलाओं को बराबरी का दर्जा दिया गया।

- विधि के समक्ष समता (अनु. 14),
- धर्म, वंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर कोई भेदभाव नहीं (अनु. 15),
- लोक नियोजन के अवसर की समानता (अनु.16),
- स्वतंत्रता का अधिकार (अनु. 19),
- मानव के अवैध व्यापार, बेगार और अन्य बलातश्रम का निशेध (अनु. 23),
- राज्य द्वारा अनुसरणीय कुछ नीति निर्देशक तत्व (अनु. 39)
- समान न्याय एवं विधिक सहायता (अनु. 39 क),
- काम की न्याय संगत एवं मानवोचित दशाओं तथा प्रसूति सहायता का उपबन्ध (अनु. 42),
- धर्म मूल, वंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान अथवा इसमें से किसी एक के आधार पर किसी व्यक्ति के साथ निर्वाचन नामावली में भेदभाव नहीं किया जायेगा (अनु. 325)।

(स) भारतीय दंड संहिता में महिलाओं के विरुद्ध अपराधों की रोकथाम

- **धारा 304 (ख) दहेज हत्या** – जब किसी स्त्री की मृत्यु जलने या शारीरिक क्षति द्वारा की जाती है या उसके विवाह के 7 वर्ष के भीतर सामान्य परिस्थितियों में उसकी मृत्यु हो जाती है और यह देखा जाता है कि उसकी मृत्यु से कुछ समय पूर्व उसके पति या पति के नातेदारों द्वारा दहेज को लेकर क्रूरता की गयी थी या तंग किया गया था तो ऐसी मृत्यु को दहेज मृत्यु की संज्ञा दी जायेगी।
- **धारा 354 में लज्जा भंग** – किसी स्त्री का लज्जा भंग करने के आशय से या यह सम्भाव्य जानते हुये कि वह इसके द्वारा लज्जा भंग करेगा, उस स्त्री पर हमला करेगा या आपराधिक बल का प्रयोग करेगा ऐसे अपराध में 2 साल के कारावास या जुर्माना अथवा दोनों से दण्डित किया जायेगा।
- धारा 366 में प्रावधान है कि यदि किसी स्त्री को बिना उसकी इच्छा से विवाह आदि करने के लिए व्यपहृत या अपहृत की जाती है या उसका उत्प्रेरण किया जाता है तो वह व्यक्ति 10 वर्ष तक के कारावास से और जुर्माने से अथवा दोनों से दण्डित किया जाएगा।

- धारा 366 (क) में अप्रर्याप्त वय लड़की का अपपयन है तथा 366 (ख) में विदेश से लड़की का आयात करने पर दस वर्ष तक के कारावास व जुर्माना अथवा दोनों से दण्डित किया जायेगा।
- धारा 372 में प्रावधान है कि जो कोई 18 वर्ष से कम आयु के व्यक्ति को वेश्यावृति के लिये बेचता है तो वह दस साल तक कारावास तथा जुर्माने से दण्डित किया जायेगा।
- धारा 373 में प्रावधान है कि जो कोई 18 साल से कम आयु के व्यक्ति को वेश्यावृति के प्रयोजन से खरीदता है वह 10 साल तक के कारावास तथा जुर्माना अथवा दोनों से दण्डित किया जायेगा।
- भारतीय दंड संहिता की धारा 376 में बलात्कार के लिए दो तरह के दण्ड का प्रावधान है। प्रथम यदि कोई साधारण व्यक्ति बलात्कार का अपराध करता है तो उसे 7 वर्ष से कम कारावास नहीं होगा लेकिन व 10 वर्ष या उम्रकैद हो सकेगी। लेकिन यदि यह अपराध किसी पुलिस अधिकारी, लोक सेवक, जेल प्रतिप्रेषण गृह या ऐसी संस्था के कर्मचारी द्वारा, अस्पताल के प्रबन्धक या कर्मचारी द्वारा उसकी स्थिति का लाभ उठाकर बलात्संग करता है या गर्भवती स्त्री से, 12 वर्ष से कम आयु की स्त्री से या सामूहिक बलात्संग किया जाता है उस स्थिति में कठोर कारावास जिसकी अवधि 10 वर्ष से कम नहीं किन्तु उम्रकैद हो सकेगी और जुर्माना भी लगेगा।
- **धारा 493 धोखाधड़ी से वैवाहिक सम्बन्ध** – पुरुष जो किसी स्त्री को जो विधिपूर्वक उससे विवाहित नहीं है वह विश्वास कारीत करेगा कि वह विधिपूर्वक उससे विवाहित है या विवाह करेगा और इस विश्वास में उस स्त्री के साथ सहवास कारीत करता है तो उसे 10 साल की साधारण या कठोर कारावास की सजा का प्रावधान किया है तथा जुर्माने से भी दण्डनीय होगा।
- **धारा 494 विवाह शुन्य** – कोई भी पुरुष– स्त्री अपने एक जीवित साथी के होते हुए अन्य विवाह करता है तो ऐसा विवाह शून्य विवाह कहलायेगा तथा इस कृत्य की सजा 7 साल तक साधारण या कठोर कारावास का प्रावधान किया गया तथा जुर्माने से भी दण्डनीय होगा।
- **धारा 495 में वैवाहिक धोखाधड़ी** – यह उपबन्ध जो कोई धारा 494 में परिभाषित अपराध अपने पूर्व विवाह उस व्यक्ति से छिपाकर करेगा जिसके पश्चात वृति विवाह कर लेता है तो ऐसी स्थिति में उसे 10 साल तक साधारण या कठोर कारावास से दण्डित किया जायेगा तथा जुर्माने से भी दण्डनीय होगा।

- **धारा 496 जानबूझकर गैर कानूनी विवाह** – यह उपबन्ध यह प्रावधान करता है कि कोई व्यक्ति बेईमानी से या कपटपूर्वक विवाहित होने का कर्म यह जानते हुए पूरा करता है कि यह विवाह विधिपूर्वक विवाह नहीं है ऐसे कृत्य पर 7 साल का साधारण या कठोर कारावास का प्रावधान किया गया तथा जुर्माने से भी दण्डनीय होगा।

- **धारा 497 में पत्नी की जानकारी होने के बाद भी सम्बन्ध स्थापित करना**– कोई व्यक्ति ऐसी महिला जो किसी अन्य की पत्नी है और वह इस सम्बन्ध में जानकारी रखता है उस पुरुष की सहमति या मौनाकुलता के बिना सम्बन्ध स्थापित करेगा तो वह बलातसंग के अपराध की कोटि में नहीं माना जायेगा। यह अपराध जारकर्म के अपराध का दोषी माना जायेगा और वह 5 साल का साधारण या कठोर कारावास तथा जुर्माने या दोनों से दण्डित किया जायेगा। ऐसे मामलों में पत्नी दुष्प्रेरक के रूप में दण्डनीय नहीं होगी।

- **धारा 498 में बहला फुसला कर, छिपाना और सम्भोग** – जो कोई किसी स्त्री को जो किसी अन्य पुरुष की पत्नी है और जिनका अन्य पुरुष की पत्नी होना वह जानता है उस पुरुष के पास से या किसी ऐसे व्यक्ति के पास से जो उस पुरुष की ओर से उसकी देखरेख करता है इस आश्य से उस महिला को ले जाता है या फुसला कर ले जाता है कि वह किसी अन्य व्यक्ति के साथ सम्भोग करे या इस आश्य से ऐसी किसी स्त्री को छिपायेगा या निरूद्ध करेगा तो ऐसी स्थिति में 2 साल साधारण या कठोर कारावास एवं जुर्माना या दोनों से दण्डित किया जायेगा।

- **धारा 498 (क) दहेज क्रूरता** – जो कोई किसी स्त्री का पति या पत्नी का नातेदार होते हुए ऐसी स्त्री के प्रति क्रूरता करेगा तो उसे इस कृत्य के लिए 3 साल की सजा एवं जुर्माना या दोनों से दण्डित किया जायेगा। यहां क्रूरता से तात्पर्य ऐसे कृत्य से है (क) जानबूझ कर किया गया ऐसा आचरण जो इस प्रकार है कि उस स्त्री को आत्महत्या करने के लिए प्रेरित करने या उस स्त्री के जीवन, अंग या स्वास्थ्य को क्षति या खतरा कारीत करने की संभावना है। (ख) किसी स्त्री को इस दृष्टि से तंग करना कि उसको या उसके किसी नातेदार को कोई सम्पति या मूल्यवान प्रतिभूति प्रदान करे या प्रदान न करने पर तंग किया जाता हो।

- **धारा 509 फब्तियां या अंग विच्छेद** – कोई व्यक्ति किसी स्त्री की लज्जा का अनादर करने के आश्य से कोई शब्द या फब्तियां कहता है, कोई ध्वनि या अंग विच्छेद करता है या कोई वस्तु प्रदर्शित करता है इन कृत्यों को स्त्री द्वारा सुना

या देखा जाता है। ऐसे अपराध के लिए एक वर्ष का कारावास या जुर्माना या दोनों।

- **धारा 125 भरण पोषण का अधिकार** – भारतीय दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 125 में सभी धर्म की विवाहित महिलाओं एवं वृद्ध माता–पिता को भरण पोषण प्राप्त करने का अधिकार प्रदान किया गया।

सारांश

पुरुष एवं महिला के मध्य समाज द्वारा निर्मित सामाजिक भेद समाप्त करने का प्रयास हमें घर से प्रारम्भ करना चाहिए। हमें अपने परिवार के शिशुओं को समान शिक्षा, समान अवसर एवं समतामूलक व्यवहार करने की सीख देने की आवश्यकता है। अक्सर हम बच्चों को लैंगिक भेद के आधार पर खिलौने का चयन एवं खरीद करते हैं। हमें लड़के व लड़की के आधार पर खिलौनों का चयन नहीं करना चाहिए। हमें अपनी उपभोगवादी संस्कृति को त्याग कर गैरलैंगिक संवेदनशील समाज की स्थापना करनी होगी। समाज में गिरते लिंगानुपात को रोकना होगा यदि नही रोका गया तो स्थिति और भयावह हो जायेगी। इस मानसिक विकार को समाप्त करने की पहल घर से प्रारम्भ करने की आवश्यकता है। न केवल परिवार बल्कि व्यक्ति का स्वयं से इसकी शुरूआत कर एक मिशाल कायम करनी चाहिए।

महिला हिंसा एवं सामाजिक सुधार के लिए सामाजिक कानूनी विधायनों की अवधारणा की मजबूती के साथ–साथ इन विधानों को भी मजबूत बनाया गया, जिसका परिणाम यह रहा कि आज हिंसा एवं लैंगिक भेद की रोकथाम के लिए केवल राष्ट्र स्तर पर ही विधायनों का निर्माण किया गया हो ऐसा नहीं है। आज राष्ट्रीय स्तर के साथ–साथ अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी अन्तर्राष्ट्रीय विधायनों व घोषणा पत्र का निर्माण कर हिंसा को रोकने का प्रयास किया गया। विधायनों का निर्माण एक लम्बे विकास क्रम का परिणाम है, जिसका प्रतिफल यह रहा कि प्रत्येक प्रकार की हिंसा एवं लैंगिक भेद की रोकथाम के लिए भिन्न–भिन्न कानूनों का निर्माण किया गया। इन कानूनों के माध्यम से केवल हिंसा एवं लैंगिक भेद रोकने का प्रयास किया हो, ऐसा नहीं है। हिंसा एवं लैंगिक भेद की रोकथाम के साथ–साथ हिंसा एवं लैंगिक भेद से ग्रसित महिला को समाजिक सुरक्षा प्रदान करने का प्रावधान किया गया है।

* * *

बौद्धिक–विमर्श के परिप्रेक्ष्य में महिला सशक्तिकरण की चुनौती : एक समीक्षा

*डॉ. पुनीत कुमार

*डॉ. मंजुलता गर्ग

वर्तमान इक्कीसवीं शताब्दी सदृश्य आधुनिक समय भी यदि अनेक विलंबनाओं, विडंबनाओं एवं विरोधाभासों का आखेट है, तो इसका सबसे बड़ा कारण स्वयं मनुष्य की वे प्रवृत्तियॉ हैं, जिन्हें स्वार्थ, अहं, वर्चस्ववादी मानसिकता व भौतिक सुख प्राप्ति की असीम लालसा इत्यादि का संबोधन दिया जा सकता है। अपनी इन्हीं नकारात्मक प्रवृत्तियों के वशीभूत होकर मनुष्य समुदाय की अग्रिम पंक्ति में स्थित नर जाति ने नारी समाज को प्रत्येक अवसरों पर अपमान, अवमूल्यन, अयोग्यता एवं उपेक्षा को प्रोत्साहित करने वाले घातक प्रहारों से आहत किया है। अपने इन ''घातक प्रहारों को बड़ी चतुराई से इस जाति ने धर्म, परंपरा, संस्कृति और सभ्यता सदृश्य आवरण भी प्रदान कर दिये हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि स्त्री समाज का इस प्रकार मानसिक अनुकूलन (conditioning) हो चुका है कि पुंसवादी मानसिकता को प्रशस्त करने वाले धर्म और संस्कृति इत्यादि की वह स्वयं सबसे बड़ी पहरूआ बनने की आकांक्षा के वशीभूत हो गयी है। अर्थात् नारी जीवन, अपना आकार पानी के समान अपने बर्तन के अनुरूप निर्धारित करने लगा। फलतः स्त्रियाँ गर्भ से लेकर प्रज्ञा तक प्रत्येक स्तर पर छली जाने के लिए अभिशप्त हैं। विडंबनापूर्ण तथ्य यह है कि स्त्रियों का यह अभिशप्त जीवन वर्तमान इक्कीसवीं शताब्दी में भी बना हुआ है।

---

*एसोसिएट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, शासकीय एस एम एस स्नातकोत्तर महाविद्यालय, शिवपुरी (म0प्र0)

*अध्यक्ष, शोधकेन्द्र एवं स्नातकोत्तर राजनीति, विज्ञान विभाग, शासकीय एस एम एस स्नातकोत्तर महाविद्यालय, शिवपुरी (म0प्र0)

महिला सशक्तिकरण की प्रासंगिकता

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता', कदाचित किसी भी सभ्यता एवं संस्कृति में नारी के लिए इतना महान उद्‌घोष उपलब्ध नहीं होगा, यह सत्य है, परन्तु यथार्थ यह भी है कि कन्या भ्रूण हत्या से लेकर जीवन के प्रत्येक सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं पारिवारिक क्षेत्र में महिलायें सभ्यता के प्रारंभ से ही लिंगभेद का आखेट होती चली आ रही हैं। 'लगभग पाँच लाख कन्याओं की हत्या प्रतिवर्ष गर्भ में ही कर दी जाती है।'[1] 'आंकड़े बताते हैं कि पिछले 20 वर्षों में भारत में महिलाओं के साथ हुए बलात्कार में 40 प्रतिशत, अपहरण के प्रकरणों में क्रमशः 50 प्रतिशत तथा छेड़छाड़ व दहेज हत्या के अपराधों में क्रमशः 60 प्रतिशत व 150 प्रतिशत की वृद्धि हुयी है।'[2] 'विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार भारत में हर 54 मिनट पर एक महिला के साथ बलात्कार होता है। सेंटर फॉर विमेंस डेवलपमेंट स्टडीज के आंकड़े बताते हैं कि भारत में हर दिन 42 महिलाओं के साथ बलात्कार किया जाता है, यानि हर 35 मिनट में एक बलात्कार...'[3]। 'भारत की कुल कार्यशक्ति का मात्र 6 प्रतिशत महिलायें हैं। वरिष्ठ प्रबंधन स्तर पर मात्र 4 प्रतिशत महिलायें हैं।'[4] इन कतिपय तथ्यों से यह स्वीकारना स्वाभाविक प्रतीत होता है कि महिला सशक्तिकरण का प्रश्न वर्तमान समय में भी अत्यन्त संवेदनशील प्रश्न है। नारी समाज की सोचनीय स्थिति के सन्दर्भों में तो महिला सशक्तिकरण का प्रश्न गंभीर है ही, राष्ट्र की संतुलित प्रगति के परिप्रेक्ष्य में भी स्त्री समाज का सर्वोन्मुखी विकास एक अपरिहार्य आवश्यकता है।

बौद्धिक–विमर्श का भावार्थ

आदिकाल से जिस प्रकार विभिन्न उपक्रमों के माध्यम से महिला समाज का पुंसवादी दृष्टिकोणों को स्थापित करने वाली मानसिकता के अनुरूप अनुकूलन का कार्य किया जाता रहा है, उसके क्षरण के कार्य का प्रारंभ भी मानसिक स्तर से ही करना होगा। अर्थात् महिला सशक्तिकरण को प्रोत्साहित करने वाली स्थितियों के निर्माण सम्बन्धी उद्यमों को वांछनीय सफलता तब प्राप्त होगी, जब उनके अनुकूल एक वैचारिक और बौद्धिक धरातल की रचना हो जायेगी। वैचारिक और बौद्धिक धरातल की यह 'रचना'

---

2. रायजादा अजीत (2000) 'महिला उत्पीड़न समस्या और समाधान', म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, पृ. 162।
3. वासुदेव शेफाली, रेणुका मेथिल (2002) 'बलात्कार' इंडिया टुडे (हिन्दी), नई दिल्ली, 11.9.2002, पृ. 22–23।
4. बनर्जी रूमू (2005) 'वोमेन जस्ट कृ' टाइम्स ऑफ इंडिया, नई दिल्ली 16.12.2005 ।

किसी प्रकार की विसंगति व विलंबना के कारण विकलांग न होने पाये, इसके लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि मानव समाज के प्रत्येक अंश की इस 'रचना' में जीवंत सहभागिता हो। स्पष्ट है कि महिलाओं की उपेक्षा सम्बन्धी स्वाभाविक प्रवृत्ति जो परंपरा, सभ्यता एवं संस्कृति में ही व्याप्त है, के द्रवीकरण हेतु सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षिक एवं धार्मिक सभी स्तरों के अभिजन समूह एवं निम्न स्तर के कार्यकारी तत्वों को आवश्यक बौद्धिक–विमर्श हेतु आमंत्रित, प्रोत्साहित एवं प्रेरित करना होगा। इस प्रक्रिया में स्त्री समाज का भी सम्मिलन अनिवार्य बनाना होगा, क्योंकि शताब्दियों से जिस वैचारिक और मानसिक पुंसवादी दृष्टिकोणों से वे स्वयं को 'देवी', 'श्रद्धा', 'सती' और 'आदर्श नारी' इत्यादि ढकोसलों से फुसलाती रही हैं, उनका प्रक्षालन भी अनिवार्य है। कदाचित तभी वे 'स्व' अथवा 'अस्मिता' इत्यादि शब्दों के वास्तविक अर्थों से स्पंदित हो सकेंगी। इस 'बौद्धिक–विमर्श' की केन्द्रीय विषयवस्तु होगी महिला के प्रति मानवीय दृष्टिकोण मात्र की स्थापना करना। इस बौद्धिक–विमर्श को अतिबौद्धिकरण, अति राजनीतिकरण एवं दैवीय स्पर्श से भी अशेष रहना होगा। तभी ऐसे किसी विमर्श को प्रभावशली व साध्योन्मुख बनाया जा सकेगा।

ऐतिहासिक सन्दर्भों में बौद्धिक–विमर्श

महिला सशक्तिकरण के प्रश्न पर बौद्धिक–विमर्श का कभी–भी अकाल नहीं रहा है। अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी से ही इस प्रकार के बौद्धिक–विमर्श को स्वीकारोक्ति मिलने लगी थी। 'अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी के विचारक मेरी उलनस्टोक्राफ्ट, हैरियट टेलर व जान स्टुअर्ट मिल जैसे सभी नारीवादियों ने दार्शनिक जान लॉक और रूसो के दर्शन की आलोचना यह कहते हुए की थी कि इनके दर्शन में वैयक्तिक स्वतंत्रता और सामाजिक परिवर्तन की चर्चा तो है, किन्तु इनकी उदारवादी विचारधारा स्त्री–पुरूष को समान अधिकार दिलाने में असमर्थ है। तत्पश्चात् उदारवादियों ने ऐसी सामाजिक संरचना की स्थापना की बात की, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति का महत्व हो, उन्हें समान सुविधा मिले।'[5] परन्तु इस काल का उदारवाद मात्र इतना ही प्रभाव स्थापित कर सका कि अमेरिका जैसे राष्ट्र में समान अधिकार संशोधन विधेयक पास हो गया, यद्यपि समाज से पितृसत्तात्मक दमनकारी नीतियों का उन्मूलन अभी भी एक दिवास्वप्न था।

उदार नारीवाद का उल्लेखनीय आन्दोलन बीसवीं सदी के साठ के दशक से प्रारंभ हुआ माना जा सकता है।' इस युग के प्रमुख विचारक हैं बेला अबलेक्स बेहटी फ्रीडा,

5. खेतान प्रभा (2000) 'स्त्री विमर्शः इतिहास में कृ'*हंस, संपा. राजेन्द्र यादव*, नई दिल्ली, पृ. 36, 37।

एलिजाबेथ हाउसमैन आदि'[6] इनका ये मत था कि स्त्री किसी भी स्तर पर पुरुष से ही नहीं है। पुरुषों को मिलने वाली सुविधाजनक स्थितियाँ यदि महिलाओं को मिले तो वे प्रत्येक स्थिति में पुरुषों के बराबर क्षमतावान सिद्ध होंगी। इस काल की विचारधारा की प्रमुख माँग थीं – 'महिलाओं को गर्भपात का अधिकार होना चाहिए, स्त्री को मानवीय गरिमा मिलनी चाहिए एवं पितृसत्तात्मक संरचना को बदला जाये..... इस समय की उल्लेखनीय पुस्तकें भी 'सेकेन्ड सेक्स' (सिमोन द बुवा)' सेक्सुअल पालिटिक्स' (केट मिलेट) 'डायलेक्टिक ऑफ सेक्स' (सुलामिथ फायरस्टोन) 'वुमैन स्टेट' (जूलियेट मिशेल)'[7] इन पुस्तकों में उल्लेखनीय तथ्य थे– स्त्री मुक्ति सम्बन्धी सारे सिद्धान्तों का स्रोत स्त्री का निजी जीवन है, स्त्री को दमन के विरुद्ध अपनी वाकहीनता से मुक्त होकर, सामाजिक मंचों पर मुखर होना होगा, स्त्री दमन का मुख्य कारण व्यक्तिगत सम्पत्ति की अवधारणा है। अर्थात् स्त्री दमन का मुख्य कारण पूंजीवाद है, पितृसत्ता नहीं और आर्थिक रूप से स्वावलंबी स्त्री ही पुरुषों के समान जीवन जी सकती है। बीसवीं सदी के सातवें दशक से नौवें दशक तक महिला मुक्ति सम्बन्धी बौद्धिक–विमर्श की केंद्रीय समस्या थी कि स्त्री पराधीनता किसी भी मूल्य पर समाप्त होनी चाहिए। इसका मानना था कि स्त्री श्रम द्वारा उत्पादन की दो प्रणालियाँ हैं। एक बाह्य जगत में उत्पादन की तथा दूसरी गृहस्थी में, जहाँ महिला दिन–रात मूल्यहीन श्रम करती है। इस काल के विमर्श की यह सशक्त आकांक्षा थी कि महिला श्रम के इस पक्ष का समाज द्वारा आर्थिक मूल्यांकन होना चाहिए, साथ ही साथ, मात्र आर्थिक संघर्ष ही नहीं, अपितु 'स्त्री–पुरुष का यौन संघर्ष और इससे जनित स्त्री के प्रति यौन हिंसा एवं उत्पीड़न[8] का भी सामाजिक आन्दोलन को संधान करना होगा। इस युग के विचारों का प्रतिनिधित्व करने वाले प्रमुख चिन्तक थे– ग्रामशी, डोना हार्वे एवं शीला रोवॉथम। 'ग्रामशी ने पारिवारिक सम्बंधों के निरंतर संघर्ष पर काफी प्रकाश डाला और इसे जन क्रांति का एक प्रभावी तथा निर्णायक तत्व माना।'[9] इस काल में सर्वप्रथम महिला सशक्तिकरण सम्बन्धी बौद्धिक–विमर्श के माध्यम से यह स्पष्ट हुआ कि अपने यौन जीवन में भी स्त्री को किस प्रकार शोषित एवं उत्पीड़ित होना पड़ता है। इसी समय के बौद्धिक–विमर्श ने यह भी स्पष्ट किया कि यह कहना कि पुरुष वर्चस्ववादी व्यवस्था एवं महिला की तत्सम्बंधित पराधीनता में ही समाज का हित निहित है, मात्र एक षड़यंत्र है और 'स्त्रियोचित गुणों का निर्धारण स्त्री की जैविकता से नहीं बल्कि स्त्री की राजनैतिक शक्तिहीनता तथा

---

6. –––वही–––, पृ. 37।
7. –––वही–––।
8. –––वही–––, पृ. 38।
9. –––वही–––, पृ. 40।

सामाजिक सम्बन्धों में अधीनस्थ भूमिका की स्वीकृति से होता है। .. (जूलिया क्रिस्तोवा ने स्पष्ट कहा कि) वह हमेशा निषेध अर्थात जो वह नहीं है; संबाद्ध के द्वारा ही व्याख्यायित होती रही है। स्त्री प्राकृतिक संरचना नहीं बल्कि सत्ता की एक सामाजिक संरचना है और ... स्त्री संघर्ष को क्रांतिकारी वर्गीय संघर्ष तथा साम्राज्यावाद के विरुद्ध अन्य संघर्षों से अलग नहीं किया जा सकता।'[10] स्पष्ट है कि बीसवीं सदी के नौवें दशक की समाप्ति तक यह स्पष्ट हो चुका था कि महिला सशक्तिकरण का पथ केन्द्रीय सत्ता के राजमार्ग से होकर ही निर्मित हो सकता है। नारी को स्वयं के सबला होने के शास्त्र एवं शस्त्र का पल्लवन सत्ता की पौधशाला में बीजारोपण के माध्यम से ही करना होगा।

इक्कीसवीं शताब्दी में बौद्धिक–विमर्श

इक्कीसवीं शताब्दी के सिंहद्वार तक आते–आते महिला सशक्तिकरण से सम्बद्ध बौद्धिक–विमर्श कतिपय यथार्थ तथ्यों से अनभिज्ञ नहीं रहा, यथा–नारी भी एक सामान्य मनुष्य है जिसे श्रद्धा, देवी, सती और आदर्श की पराकाष्ठा का पर्याय होने की कोई आवश्यकता नहीं है, सत्ता में महिलाओं की सक्रिय सहभागिता महिला सशक्तिकरण का प्रस्थान बिन्दु है और महिला सशक्तिकरण को वास्तविक पैनापन आर्थिक स्वावलम्बन के माध्यम से ही मिल सकेगा, तथा इस 'आर्थिक' स्वावलम्बन' का स्थायी आधार शिक्षा मात्र है।

वस्तुतः वर्तमान शताब्दी के एक दशक की समाप्ति के उपरान्त नारीवादी विमर्श को दो अंशों में विभाजित कर देखा जा सकता है। प्रथम अंश इस विचारधारा का समर्थक रहा है कि स्त्री अशक्तता से महिलाओं को तादात्मीकरण कर लेना चाहिए, महिला की 'माता' छवि उसकी श्रेष्ठतम अभिव्यक्ति है और स्त्री दैवीय गुणों का सजीव संकलन है। महिला सशक्तिकरण पर केन्द्रित बौद्धिक–विमर्श का द्वितीय अंश नारी को एक सामान्य मनुष्य की श्रेणी में रखता है और यह मानता है कि उसे पुरुषों से श्रेष्ठ व महान बनने की आवश्यकता नहीं है, अपितु महिलायें भी लाभ, लोभ, काम, अर्थ, प्रतिस्पर्द्धा और महत्वाकांक्षा सदृश्य भावनाओं से संचालित होती है तथा स्त्रियों को भी सत्ता में भागीदारी चाहिए। प्रख्यात विचारक नाओमी वुल्फ इन दोनों अंशों में प्रथम के लिए 'उत्पीड़न से ग्रस्त नारीवाद' (victim feminism) और द्वितीय अंश के लिए 'शक्ति आधारित नारीवाद (power feminism) सम्बोधन का प्रयोग करती है। शक्ति आधारित

---

10. ——वही——, पृ. 40।

नारीवादी विमर्श को नाओमी वुल्फ प्रासंगिक मानती है, क्योंकि यह स्त्री–शक्ति को यथार्थ मानवीय क्षमता के रूप में चिन्हित करना चाहता है। उनका कहना है कि '.... समय के साथ–साथ सिर्फ अपनी कमजोरियों को देखते रहने और अपनी ताकत पर ध्यान न देने से हम धीरे–धीरे चुकते चले जाते हैं।'[11] यक्ष प्रश्न यह है कि महिला सशक्तिकरण को पुष्ट करने वाले बौद्धिक–विमर्श का स्वरूप भविष्य में किन तत्वों पर आधारित होना चाहिए? इस सम्बन्ध में नाओमी वुल्फ की यह मान्यता है कि महिलाओं को मर्दों के समान अथवा समकक्ष स्थितियों की आवश्यकता क्यों होनी चाहिए, 'महिला को केवल 'महिला' रहने में संकोच क्यों हो? ...बाजार, राजनीति और अर्थव्यवस्था–समाज के इन तीन महत्वपूर्ण क्षेत्रों में यह सोच धीरे–धीरे जगह बनाने लगी है कि महिलाओं की उपस्थिति को नकारा नहीं जा सकता'[12]। वस्तुतः महिला सशक्तिकरण का पथ 'हीन–ग्रंथि' के निर्जीव वातावरण से निकलने पर साध्य अभिप्रेत कदापि नहीं होगा, अपितु नारी होने की सुखद व सम्मानजनक अनुभूति के आधार पर निर्मित होने वाले बौद्धिक–विमर्श के गर्भ से ही महिला सशक्तीकरण का यथार्थ शंखनाद संभव होगा। इसीलिए नाओमी वुल्फ कहती हैं कि 'नारीवाद का अगला दौर सेक्सुअल 'हाँ' और सेक्सुअल 'ना' कहने के बारे में होना चाहिए.... जो हिंसा की शिकार हैं, उन्हें उनकी बराबरी का अहसास दिलाना ही नारीवाद का अगला दौर होना चाहिए, क्योंकि स्त्री–पुरुष का सम्बंध स्त्री की शक्ति को कम नहीं करता बल्कि उसकी पुष्टि करता है। महिलाओं द्वारा सत्ता व धन हासिल करना भविष्य के फेमनिज्म का एक अनिवार्य अंग है।'[13] अर्थात् भविष्य का बौद्धिक–विमर्श स्त्री को एक सम्पूर्ण मनुष्य मात्र के स्वरूप में देखना चाहता है, जिसे समान नागरिक का सम्मान प्रत्येक परिस्थितियों में मिलना अवश्यंभावी हो।

भारतवर्ष में बौद्धिक–विमर्श

महिला सशक्तिकरण पर केन्द्रित बौद्धिक–विमर्श भारतवर्ष में भी समय–समय पर प्रकाश में आता रहा है, परन्तु इस बौद्धिक–विमर्श में नियमितता, निरंतरता और सैद्धान्तिकी का नितांत अभाव रहा है। महिला सशक्तिकरण से सम्बंधित बौद्धिक–विमर्श की एक न्यूनता और रही है कि उसके प्रकाशन का विधिवत प्रायोजन भी संकटग्रस्त रहा है। यद्यपि अठारहवीं शताब्दी से भारतवर्ष में पुरुष वर्चस्व के विरुद्ध नारी–स्वर

11. सक्सेना, प्रगति (2001) 'इक्कीसवीं सदी का नारीवाद', *हंस संपा. राजेन्द्र यादव*, नई दिल्ली, पृ. 76।
12. –––वही–––, पृ. 77।
13. –––वही–––।

प्रस्तुत होने लगे थे। आधुनिक सन्दर्भों में 2002 में एक पुस्तक आयी, जिसका शीर्षक है 'द वायलेंस ऑफ डेवलपमेंट'। यह पुस्तक कारिन कपाड़िया द्वारा संपादित है। इस पुस्तक के अन्य रचनाकार हैं –निर्मला बनर्जी, पद्मिनी स्वामिनाथन, कल्पना शर्मा, उर्वशी बुटालिया, निशा श्रीवास्तव, रेवती नारायणन, सीमंतनी निरंजना, शैल मायाराम, एस.आनंदी और समिता सेन। इस पुस्तक में 'भारतीय जीवन के चार क्षेत्रों–आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक–में स्त्रियों की आज की स्थिति पर विचार किया गया है। .... लेखिकायें यह मानते हुए भी कि इन सभी क्षेत्रों में विकासजन्य प्रगति हुयी है.... यह बताती हैं कि हमारे यहाँ स्त्री और पुरुष के बीच भयंकर असमानतायें मौजूद हैं, जो तमाम तरह के विकास के बावजूद कम नहीं हुयी हैं, बल्कि बढ़ती गयी हैं और उनकी सबसे बुरी मार स्त्रियों पर पड़ी है। ... पूरा विकास स्त्रियों के प्रति पूर्वग्रह रखते हुए हुआ है, अतः यह एक हिंसक विकास है और स्त्रियाँ उस हिंसा की शिकार हुयी हैं।'[14]

वस्तुतः भारतवर्ष में हिन्दी माध्यम से अभिव्यक्त होने वाला बौद्धिक–विमर्श जीवंत वैचारिक अथवा प्रबुद्ध धरातल के अभाव से ग्रसित रहा है। 'हिन्दी के दलित लेखन के पास अंबेडकरवाद जैसा वैचारिक आधार था, हिन्दी के स्त्री लेखन (बौद्धिक–विमर्श) के पास वैसा कोई वैचारिक आधार नहीं था। .... कहीं वह संसार की समस्त स्त्रियों के द्वारा संसार के समस्त पुरुषों के वर्चस्व का विरोध करने वाली विचारधारा के रूप में समझा गया, तो कहीं स्त्री की यौन–स्वच्छंदता की वकालत करने वाले विचार के रूप में, ...'[15] महिला सशक्तिकरण के प्रश्न की यह भी एक विडंबना रही है कि सम्बद्ध बौद्धिक–विमर्श वैचारिक दृढ़ता की ठोस सैद्धान्तिक भित्ति की प्राप्ति से वंचित रहा है। फलतः महिला सशक्तिकरण का प्रश्न अनेक पुंसवादी शडयंत्रों का वर्तमान अत्याधुनिक काल में भी आखेट है।

बौद्धिक–विमर्श का अभीष्ट स्वरूप

विश्लेषणोपरांत स्पष्ट होना कठिन नहीं है कि महिला सशक्तिकरण का प्रश्न संतुलित, एकमेव सामूहिक व वैश्विक स्वरूप तथा मात्र न्याय प्राप्ति सदृश्य ध्येय को स्वीकारने की दृढ़ इच्छाशक्ति के अभाव से ग्रसित रहा है। महिला सशक्तिकरण के प्रश्न को

---

14. कुमार उत्पल (2004) 'दि वायलेंस ऑफ डेवलपमेंट', *आज का स्त्री आन्दोलन, संपा, रमेश उपाध्याय, संज्ञा उपाध्याय* शब्द संधान, नई दिल्ली, पृ. 60, 61 ।
15. उपाध्याय रमेश (2004) 'मुक्ति का सवाल कहाँ गया?' *आज का स्त्री आन्दोलन, संपा. रमेश उपाध्याय, संज्ञा उपाध्याय,* शब्द संधान, नई दिल्ली, पृ. 69।

अभीष्ट प्रत्युत्तर तभी प्राप्त होगा, जबकि वह मात्र महिला सशक्तिकरण को अपना लक्ष्य बनाये एवं किसी अनावश्यक प्रतिस्पर्द्धा, अर्थहीन ग्रंथि एवं मूल्यहीन धर्म व संस्कृति से स्वयं को सुरक्षित रखे। इस सम्बन्ध में कतिपय बिन्दुओं को अग्रवत प्रस्तुत किया जा सकता है –

- महिला सशक्तिकरण के ध्येय से अभिप्रेत बौद्धिक–विमर्श को अपनी सम्पूर्ण ऊर्जा इस साध्य की प्राप्ति पर केन्द्रित करना होगा कि स्त्रियों को न्याय प्रत्येक स्थिति में प्राप्त होना चाहिए।
- स्त्री को क्या चाहिए? इस प्रश्न पर विचार स्त्रियों को करना होगा। प्रायः ऐसे प्रश्नों पर विमर्श का एकाधिकार पुरुषों का ही दिखायी देता है।
- भारतवर्ष में महिला को एक नागरिक के समान समस्त आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक व पारिवारिक अधिकार प्राप्त होने चाहिए। इस परिप्रेक्ष्य में प्रत्येक सम्प्रदाय की निजी विधियों को भारतीय संविधान की सीमा में लाना होगा। प्रासंगिक बौद्धिक–विमर्श को इस प्रकार के सांसारिक उद्देश्यों को केन्द्र में रखना होगा।
- महिला सशक्तिकरण की राह में सबसे बड़ा रोड़ा पुंसवादी मानसिकता है। इसी पुंसवादी मानसिकता से ही पूंजीवाद, पितृसत्ता एवं धर्म व संस्कृति का वह स्वरूप निर्मित होता है, जिसके दुष्प्रभाव से महिला प्रथम श्रेणी का नागरिक बनने से वंचित है। इसलिए यह स्वीकारा जा सकता है कि '...पितृसत्ता केवल स्त्री–पुरुष संबंध का मसला नहीं है। वह समूची समाज–व्यवस्था का मसला है।... बड़ी सावधानी से, बड़े सृजनशील ढंग से ... पितृसत्ता का उन्मूलन समूची सामाजिक व्यवस्था को बदलने से ही हो सकता है।'[16] और इस कार्य का बीड़ा सर्जनात्मक बौद्धिक–विमर्श को उठाना होगा।
- 'सेकेंड सेक्स' में ठीक ही लिखा है कि औरत की पहली लड़ाई अर्थ की दुनिया से शुरू होती है।' अतः भारतवर्ष में भी सम्पन्न होने वाले बौद्धिक–विमर्श को अपना लक्ष्य महिला स्वावलम्बन एवं नारी शिक्षा के अधिकतम प्रचार–प्रसार व तत्सम्बंधित जागरूकता की स्थापना पर केन्द्रित करना होगा।

---

16. 'आज का स्त्री आन्दोलन', (2004) संपा. रमेश उपाध्याय, संज्ञा उपाध्याय, शब्द संधान, नई दिल्ली, पृ. 23।

वास्तव में, महिला सशक्तिकरण का प्रश्न और प्रत्युत्तर दोनों का प्रारंभ मानसिकता के स्तर से ही होता है। अतः यह स्वीकारा जा सकता है कि इस पृष्ठभूमि में बौद्धिक–विमर्श की भूमिका उस प्रेरक एवं मार्गदर्शक की है, जिसके सही निर्देशन उपरांत महिला सशक्तिकरण का मात्र कुपाठ ही निषिद्ध नहीं होगा, अपितु उसकी सही दिशा एवं मानवीय दशा का पथ भी प्रशस्त होगा। 'नारीवाद (महिला सशक्तिकरण) न तो राजनीति की चेरी है, न ही उसकी दुश्मन! उसकी चिंता के मूल में वे जीवनमूल्य हैं, जो स्त्रियों समेत पूरी मानव जाति के हित में है। ...आने वाले समय में नारीवाद नकली नाटकीय जुझारूपन के तेवर त्यागकर एक उदार संवेदनशीलता और संतुलित बुद्धि से अपने चारों ओर उस परिवेश का जायजा लेगा, जो आज ज्यादा से ज्यादा पैसा कमाने की छातीफाड़ अमानवीय और जीवन विरोधी स्पर्धा में पगलाया हुआ है। इसके लिए जरूरी बनेगा कि नारीवाद सिर्फ राजनीति ही नहीं, अर्थजगत, तकनीकी विज्ञान और मीडिया सभी से जुड़े अपने लिए कुछ झूठे पूर्वाग्रहों को साहसपूर्वक त्यागे और पूरी मानवजाति के पक्ष में खड़े होने और विहंगम पड़ताल करने का ठोस आधार बनाये'[17]। महिला सशक्तिकरण सम्बन्धी बौद्धिक–विमर्श को अपना निर्देशन इसी प्रकार के वैचारिक धरातल से प्राप्त करना होगा।

* * *

17. पांडे मृणाल (2000) 'स्त्री और सदी का अवसान', *हंस संपा. राजेन्द्र यादव,* नई दिल्ली, पृ. 166।

महिला अधिकार, मानवाधिकार और मीडिया

***डॉ. इन्द्रेश कुमार मिश्र**

हमारी मीडिया चाहे वह प्रिंट हो अथवा इलेक्ट्रानिक दोनों तरह के माध्यम स्त्री की दशा और दिशा को बेहतर बनाने लिए उनसे जुड़े मुद्दों को व्यापक रूप से उठाती रही हैं। जब कभी भी किसी महिला पर अत्याचार हुआ या किसी महिला को कष्टमय देखा तो मीडिया चुप नहीं बैठी। उदाहरणस्वरूप हम मीडिया के किसी भी माध्यम में महिलाओं से जुड़े हुए समाचार, कार्यक्रम को देख, सुन, पढ़ और साझा कर सकते हैं। वहीं सोशल मीडिया सामाजिक परिवर्तनों में अहम भूमिका का निर्वहन कर रही है। आज मीडिया की ही देन है कि विभिन्न खबरों को मानवाधिकार आयोग स्वतः संज्ञान में लेता है और उन पर अपनी प्रतिक्रिया देकर, सरकार को कार्यवाही करने को विवश करता है। मीडिया की तत्परता और मानवाधिकार आयोग की फटकार का परिणाम है कि आज सरकार ने महिलाओं के हितों में कानून बनाये हैं जिससे उनके अधिकारों की रक्षा की जा सके। बहुत सारे कल्याणकारी कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं जिससे एक ऐसे समाज की संरचना हो जहां सभी खुशहाल हो। इस संदर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि सरकार के कानूनों की जानकारी देना एवं कल्याणार्थ कार्यक्रमों के सूचना देने का कार्य भी मीडिया को ही करना पड़ रहा है। नारी समाज का एक अभिन्न अंग है, अतीत से ही नारी का समाज में सर्वोपरि स्थान रहा है। उसे सुख एवं समृद्धि का प्रतीक माना गया है। ''यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवता'' हमारा आदर्श रहा है। यह स्थिति वर्षों तक चलती रही लेकिन बीच में कुछ ऐसा समय आया जब मनुष्य ने नारी को स्वार्थवश भोग विलास की वस्तु मान लिया, नारी पर नाना प्रकार के अत्याचार किये जाने लगे और वह शोषण और यातना का शिकार होने लगी। लेकिन यह स्थिति अधिक समय तक नहीं रह सकी। 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मीडिया के धीरे– धीरे शक्ति प्राप्त करने के साथ ही नारी के अतीत का गौरव पुनः लौटने लगा। मीडिया के सभी माध्यमों में स्त्रियों की भूमिका

*प्रवक्ता एवं अध्यक्ष, महाराणा इंस्टीट्यूट आफ कम्यूनिकेशन स्टडीज, गोमतीनगर, (लखनऊ)

प्रथम और अनिवार्य हो चली। मीडिया ने नारी को कहानी, कार्यक्रम, खबरों में स्थान दिया, मीडिया नारी की मनमोहिनी छवि प्रस्तुत करने के साथ ही नारी अत्याचार केद्रिंत कार्यक्रम, खबरों को प्रधानता देती रही है। जिसके कारण एक तरह से नारी स्वतंत्रता की लहर चलने लगी। समाज और कानून में नारी को पर्याप्त संरक्षण और सम्मान मिलने लगा, जीवन के हर क्षेत्र में नारी पुरुष के साथ कदम–कदम मिलाकर आगे बढ़ने लगी। यहां तक कि सत्ता में उसकी भागीदारी सुनिश्चित हो गयी। वहीं जब से मानवाधिकार संरक्षण कानून बना है और राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन हुआ है। मीडिया इससे जुड़ी खबरों को और ज्यादा स्थान देने लगी है। नारी की स्थिति समाज में और अधिक सुदृढ़ होने लगी है। जिसके कारण महिला उत्पीड़न के मामलों में अपेक्षाकृत कमी आयी है। अगर घटना घटित होती है या करने वाले कारकों का पता चलता है, तो मीडिया समाज को जाग्रत करती है।

महिलाओं के साथ आपराधिक कर्म का प्रतिशत आई0पी0सी0 के अन्तर्गत आने वाले कुल आपराधिक कृत्य की तादाद में पिछले पांच सालों में बढ़ा है। साल 2007 में महिलाओं पर होने वाले अपराधों का प्रतिशत कुल अपराधों में अगर 8.8 प्रतिशत था तो साल 2011 में 9.4 प्रतिशत और वर्ष 2013 में, पिछले वर्षों की तुलना में महिलाओं के खिलाफ होने वाले अपराधों में 6.8 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। हमारे यहां बलात्कार की घटनाओं में अप्रत्याशित बढ़ोत्तरी हुई है, बढ़ते बलात्कार समाज के लिए एक समस्या साबित हो रहे हैं, किसी भी समाज में अपराधों के बढ़ने का मतलब है न्याय व्यवस्था पर बहुत अधिक भार, विशेष रूप से भारत जैस सम्प्रभु देश में जहां न्यायालयों पर जरूरत से ज्यादा बोझ का असर न्याय होने में देरी के रूप में सामने आ रहा है। मुकदमों के जल्द निपटारे हेतु सरकार ने विशेष मामलों में फास्ट ट्रैक कोर्ट के गठन की घोषणा की है। बलात्कार के बढ़ते मामलों का बोझ इन अदालतों पर भी पड़ रहा है क्योंकि मुकदमों की संख्या में वृद्धि हो रही है। महिलायें अब अपने साथ हुये अत्याचारों को पहले से कही ज्यादा मुखर होकर विरोध करने के साथ ही, मीडिया के माध्यम से बयां भी कर रही हैं।

राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो रिपोर्ट–2012 के अनुसार 14 साल से कम उम्र की 12.5 फीसदी बच्चियों के साथ वर्ष 2012 में बलात्कार की घटनाएं दर्ज की गईं, वहीं 14 साल से 18 साल के बीच की 23.9 फीसदी लड़कियों के साथ बलात्कार के मामले सामने आये। राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली में फास्ट ट्रैक कोर्ट स्थापित होने के कुछ दिन पूर्व दिल्ली में बलात्कार के 1400 मामले कोर्ट में लम्बित पड़े थे, अगस्त तक यह आंकड़ा 1670 हो गया। पर तथ्य यह भी है कि औसत मुकदमे में लगने वाला समय कई सालों

से घटकर लगभग 8–10 महीने रह गया है। 2012 में दिल्ली के विभिन्न न्यायालयों ने बलात्कार के 547 मुकदमों की सुनवाई पूरी की जिनमें 204 पुरुषों पर अपराध सिद्ध हुये, इस तरह अपराध के साबित होने की दर 37 प्रतिशत रही। वहीं इसी वर्ष अर्थात जून 2013 तक फास्ट ट्रैक अदालतों में 299 मुकदमों की सुनावाई हुयी जिनमें से 95 व्यक्तियों पर अपराध सिद्ध हुआ। कुल मिलाकर अपराध साबित होने की दर 32 प्रतिशत रही। बात अगर हम राज्यों की विशेषकर राजस्थान की करें जहां वर्ष 2005 से फास्ट ट्रैक कोर्ट स्थापित हैं वहां बलात्कार जैसे मामलों में अपराध साबित होने की दर करीब 25 प्रतिशत है। राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के आंकड़े बताते हैं कि साल 2012 में 03 करोड़ से ज्यादा लोग गंभीर अपराधों में निर्णय का इंतजार कर रहे हैं। भारत के कानून मंत्रालय का कहना है कि इनमें से एक चौथाई मुकदमें 05 वर्ष से भी पुराने मामलों से जुड़े थे जिनमें करीब एक लाख बलात्कार के मामले थे। 2012 में पन्द्रह हजार से भी कम बलात्कार के मामलों की सुनवाई पूरी हुई। अप्रैल 2013 तक भारत में प्रति दस लाख की जनसंख्या पर न्यायाधीशों की संख्या बढ़कर 13 हो गई थी परन्तु यह संख्या भारतीय न्याय आयोग द्वारा जारी 120 वीं रिपोर्ट में प्रस्तावित संख्या 50 से लगभग 4 गुना कम है। हमें यह ज्ञात होना चाहिए कि भारतीय न्याय आयोग की सन् 1984 में प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार उस समय भारत में प्रति दस लाख व्यक्तियों पर दस न्यायाधीश थे और सन 2007 तक आते–आते यह संख्या घटकर मात्र 06 रह गई।

घरेलू हिंसा की शिकार होती है महिलायें – समाज के प्रत्येक वर्ग चाहे वह गरीब हो या धनी, पढ़ा लिखा हो या अनपढ़, मजदूर हो या नौकरी पेशा, घरेलू हिंसा के चौकाने वाले मामले सामने आये हैं, जब बलात्कार का एक मामला दर्ज किया जाता है, तो देश में 70 मामलों को पंजीकृत नहीं कराया जाता है। वहीं 94 प्रतिशत उत्पीड़न एवं हिंसा के मामलों में पीड़ित के परिवार के लोग ही शामिल होते हैं।

यौन उत्पीड़न – हमारे देश में होने वाले यौन उत्पीड़न की घटनाओं में बहुत बड़ी संख्या में पीड़ित पक्ष नाबालिक बच्चियां होती हैं। इस तरह की घटनाओं के बारे में जब लोग सुनते हैं तो उन्हें और आक्रोश होता है लेकिन हमारे कानून में यौन उत्पीड़न की परिभाषा इतनी लचर थी, कि ऐसा करने वाले अक्सर छूट ही जाते थे। कानून भी विशेष सामाजिक परिस्थितियों में बनाये जाते हैं और हमारे देश में बलात्कार व छेड़छाड़ से सम्बन्धित कानूनों पर पुरुष प्रधान की मानसिकता साफ जाहिर होती थी। यह सिलसिला ब्रिटिश काल से अब तक चला आ रहा था। बलात्कार की परिभाषा हमारे कानूनों में केवल उस कृत्य तक सीमित है जो नारी–पुरुष के बीच कायम सामान्य यौन सम्बन्ध के समान है लेकिन जिसमें बल का प्रयोग किया गया हो और जो औरत और

बालिका की इच्छाओं के खिलाफ हो। इस परिभाषा के चलते जाहिर है कि कई तरह के यौन उत्पीड़न के तरीके कानून की परिधि से बिल्कुल बाहर कर दिये गये हैं। उनका असर और उनकी वर्बरता परिभाषित बलात्कार से कम नहीं है। लेकिन वह चूंकि बलात्कार की कानूनी परिभाषा से बाहर है, इसलिए उनकी कोई सजा भी नही हैं।

बलात्कार के अलावा हमारे कानून में छेड़खानी, महिला की शालीनता को ठेस पहुचांना आदि हैं, लेकिन अभी तक इनकी परिभाषाएं इतनी लचर थीं कि इन्हें गम्भीरता से लिया भी नहीं जाता था। जब राजधानी दिल्ली बलात्कारियों – अपहरणकर्त्ताओं में बदल गयी है, तो दूर–दराज के जिले में छोटी घटनाओं की क्या मिशाल। आये दिन किसी न किसी महिला के शीलहरण की खबरें अखबारों, इलेक्ट्रॉनिक चैनलों की सुर्खियां बनती हैं। जबकि ज्यादातर घटनायें किसी न किसी कारण से खबर नहीं बन पाती हैं। आजमगढ़ की एक युवती को बहला–फुसलाकर एक युवक ट्रेन में बिठाकार जौनपुर ले गया और वहां उसके साथ बलात्कार किया। अगले दिन सड़क पर वह युवती अपनी व्यथा बयान कर रही थी, पर कोई सुनने वाला नहीं था। क्या ऐसी वारदात हमारे सभ्य होने पर शक की गुंजाइश नही पैदा करती? क्या उस अर्ध विक्षिप्त युवती से देश को माफी नहीं मांगनी चाहिए ? क्या देश के जनप्रतिनिधियों को जो नागरिकों के बुनियादी अधिकार की सुरक्षा एवं संरक्षण के लिए चुने जाते हैं, उसे क्षमा याचना नहीं करनी चाहिए। फिर आप कहां–कहां क्षमा याचना करते 'क्षतिपूर्ति' कर सकते हैं। यहां तो हर शाख पर कोई न कोई उल्लू बैठा है। वाराणसी हो या मुगलसराय सरीखा महत्वपूर्ण स्टेशन। प्रांगण से बाहर निकलकर ज्योंही सपरिवार ऑटो रिक्शा में सवार होंगे द्विअर्थी गानों के कैसेट आपके मनोरंजन के लिए तैयार मिलेंगे। शर्म आ रही है तो भी गठरी बने बैठे रहिए। मुजफ्फरपुर में ट्रेन में सवार हुई युवती को बलिया की मण्डी में बेच दिया जाता है। किसी तरह से वह जान बचाकर पुलिस चौकी प्रभारी की शरण में जाती है, पुलिस मामले को दबाने का भरसक प्रयास करती है। लेकिन मीडिया मामले का खुलासा कर देती है। लीपा–पोती में जुटी पुलिस तत्काल उस युवती को उसके घर भिजवाकर अपना पीछा–छुड़ा लेती।[1] एक मामले में 6 साल की बच्ची के साथ उसका पिता बेहूदी हरकतें करता था। लेकिन लचर कानून के फलस्वरुप यह मामला बलात्कार का नहीं समझा गया और अपराधी के खिलाफ धारा–354 में यह सजा सुनाई गई कि दो वर्ष की कैद से अधिक हो ही नहीं सकती। साक्षी का इसी प्रकार का मामला था और उसकी सुनवाई के अंत में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सरकार को निर्देश दिये कि कानून में परिवर्तन किया जायेगा।[2]

1. अमर उजाला, 12 दिसम्बर 2005 पृष्ठ–4

2. दैनिक जागरण, बरेली 10.11.2005, पृष्ठ–10

हमारी न्यायायिक व्यवस्था ने भी नारी विषयक मानवाधिकारों की समुचित सुरक्षा की है। यहां स्टेट ऑफ पंजाब बनाम गुरूमीत सिंह[3] के मामले का उल्लेख करना होगा। जिसमें उच्चतम न्यायालय द्वारा यह राय व्यक्त की गई है कि बलात्संग जैसे मामलों की सुनवाई यथा सम्भव महिला न्यायाधीशों द्वारा की जाये। किसी संदर्भ में उच्चतम न्यायालय का एक और क्रान्तिकारी निर्णय अवलोकन योग्य है। ''बुद्धिसत्व गौतम बनाम कुमारी शुभा चक्रवर्ती''[4] के मामलें मे एक शिक्षक द्वारा अपनी ही शिष्या का यौन उत्पीड़न किया गया था। उच्चतम न्यायालय ने इसे अत्यंत गम्भीरता से लिया और मामले के विचारण काल तक उत्पीड़ित महिला को 1000 रुपये प्रतिमाह प्रतिकार के रूप में दिये जाने का आदेश दिया। यह जानते हैं कि इन दिनों महिलायें कर्मक्षेत्र में भी आगे आई है। वे विभिन्न सेवाओं में कदम रखने लगी हैं। कामकाजी महिलाओं का प्रतिशत बढ़ने लगा है। लेकिन जब कामकाजी महिलाओं के साथ यौन–उत्पीड़न की घटनायें होने लगीं, तो न्यायपालिका ने उसमें हस्तक्षेप कर यौन–उत्पीड़न की घटनाओं पर अंकुश लगाना अपना दायित्व समझा। ''विशाका बनाम स्टेट ऑफ राजस्थान'' का इस सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण मामला है। इस मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा कामकाजी महिलाओं के साथ यौन–उत्पीड़न की घटनाओं की रोकथाम के लिए कतिपय दिशा–निर्देश दिये गये, यथा–

क. जहां कामकाजी महिलायें हैं वहां के नियोक्ताओं एवं अन्य जिम्मेदार, अधिकारियों का यह कर्तव्य होगा कि वे काम–काजी महिलाओं के यौन–शोषण का निवारण करें, उन्हें रोकने के उपाय करें तथा व्यक्तियों के विरुद्ध अभियोजन चलाने की कार्यवाही करें।

ख. कामकाजी महिलाओं के यौन–उत्पीड़न के निवारण हेतु तत्सम्बन्धी निर्देश सूचना पट्टों पर प्रदर्शित किये जायें तथा यौन–उत्पीड़न के दुष्परिणामों से जनसाधारण को अवगत कराया जाये।

ग. यदि कोई व्यक्ति यौन–उत्पीड़न के लिए अभियोजित किया जाता है तो यह सुनिश्चित किया जाये कि पीड़ित महिला एवं मामले में साक्ष्य देने वाले व्यक्तियों को तंग एवं परेशान न किया जाये।

घ. यदि किसी कार्यस्थल पर कार्यरत व्यक्ति द्वारा कामकाजी महिला का यौन–उत्पीड़न किया जाता है। तो ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही की जाये।

---

3. ए0 आई0 आर0 –1996 एस0 सी0 –1993

4. ए0 आई0 आर0 –1996 एस0 सी0 –922

ङ. कामकाजी महिलाओं के यौन–उत्पीड़न सम्बन्धी परिवादों (शिकायतों) की सुनवाई के लिए शिकायत समितियों का गठन किया जाये।

च. ऐसे समितियों का अध्यक्ष महिलाओं को बनाया जाये तथा समिति के न्यूनतम आधे पदों पर महिलाओं को नियुक्त किया जाये।

छ. यौन–उत्पीड़न निवारण विषयक साहित्य तैयार किया जाये तथा प्रचार–प्रसार किया जाये।

ज. किसी कामकाजी महिला के साथ बाहरी व्यक्तियों, द्वारा यौन–उत्पीड़न किये जाने पर ऐसी महिला को संरक्षण प्रदान किया जाये।

झ. केन्द्र एवं राज्य सरकारें कामकाजी महिलाओं के यौन–उत्पीड़न की घटनाओं की रोकथाम हेतु समुचित विधियां बनायें।

इस मामलें में उच्चतम न्यायालय द्वारा यौन–उत्पीड़न की परिभाषा भी की गई है। यौन–उत्पीड़न में निम्नलिखित कृत्यों को सम्मिलित किया गया है –

क. शारीरिक सम्पर्क अथवा ऐसे सम्पर्क का प्रयास

ख. यौन सम्पर्क का प्रस्ताव–अनुरोध

ग. अश्लील टिप्पणियां एवं संकेत

घ. कामोत्तेजक चित्रों का प्रदर्शन

ङ. अन्य अशोभनीय अथवा अश्लील आचरण ।

भारतीय कानून– भारतीय दण्ड संहिता,1860 में भी महिलाओं के विरुद्ध कारित के लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था की गई है। धारा–354 में स्त्री की लज्जा भंग, धारा–266 में अपहरण, धारा–376 में बलात्संग, धारा 498–क में निर्दयतापूर्ण व्यवहार तथा धारा–509 व 510 में स्त्री का अपमान करने को दण्डनीय अपराध घोषित किया गया है। *वजीरचन्द्र बनाम स्टेट ऑफ हरियाणा'* , *'अकूला रवीन्द्र बनाम स्टेट ऑफ आन्ध्र प्रदेश'* तथा *श्रीमती शान्ता बनाम स्टेट ऑफ हरियाणा;* के मामलों में दहेज की मांग को लेकर पत्नी के साथ निर्दयतापूर्ण व्यवहार करने को दण्डनीय माना गया है। दहेज की विभीषिका के साथ नारी की रक्षा करने हेतु प्रतिशोध अधिनियम, 1961 में कई महत्वपूर्ण प्रावधान किये गये हैं। यहां नारी सम्मान से जुड़ा एक महत्वपूर्ण कानून सती निवारण अधिनियम, 1987 उल्लेखनीय है। इसमें सती प्रथा के निवारण हेतु कठोर दण्ड की व्यवस्था की गई है। *'ओंकार सिंह बनाम स्टेट आफ राजस्थान'* के मामले में इस अधिनियम को संवैधानिक घोषित किया गया है।

महिलाओं के सिविल एवं संवैधानिक अधिकार– अब हम महिलाओं के सिविल एवं संवैधानिक अधिकारों पर विचार करते हैं।

- संविधान के अनुच्छेद 15 में यह प्रावधान किया गया है कि धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान पर किसी नागरिक के साथ विभेद नहीं किया जायेगा।
- अनुच्छेद 16 लोक नियोजन में महिलाओं को भी समान अवसर प्रदान करता है। समान कार्य के लिए समान वेतन की व्यवस्था भी की गई है। महिलाओं को मात्र महिला होने के नाते समान कार्य के लिए पुरूष के समान वेतन देने से इन्कार नहीं किया जा सकता है। *'उत्तराखण्ड महिला कल्याण परिषद बनाम स्टेट ऑफ उत्तर प्रदेश'* के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा महिलाओं को समान कार्य के लिए पुरूष के समान वेतन एवं पदोन्नति के समान अवसर उपलब्ध कराने के दिशा–निर्देश किये गये हैं।
- हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा–14, स्त्रियों में मालिकाना हक प्रदान करती है।
- श्रम कानून महिलाओं के लिए संकटापन्न यंत्रों तथा रात्रि में कार्य का निषेध करते हैं।
- मातृत्व लाभ की धारा 125 में उपेक्षित महिलाओं के प्रसूति लाभ की सुविधायें प्रदान करता है। दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 125 में उपेक्षित महिलाओं के लिए भरण–पोषण का प्रावधान किया गया है।
- केन्द्रीय मंत्रिमण्डल ने (12.12.2002) फैसला लिया था कि बलात्कार के मुकदमें मे महिलाओं के चरित्र हनन को रोकने के लिए, भारतीय साक्ष्य अधिनियम,1872 की धारा 155 की उपधारा (4) को हटाने के लिए कानून में संशोधन किया जायेगा। ऐसा विधि आयोग एवं महिला आयोग की सिफारिश पर किया जा रहा है। भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 155(4) में प्राविधान किया गया है कि गवाह की विश्वसनीयता खंडित करने के लिए अगर किसी पुरुष पर बलात्कार का आरोप हो तो उसे यह सिद्ध करना चाहिए कि पीड़िता आमतौर से अनैतिक चरित्र की महिला है। देश भर में 30.00 लाख महिलायें वैश्यावृत्ति करने को विवश हैं जिनमें लगभग 15 प्रतिशत वेश्याओं की उम्र 15 साल से कम है यानि 5.00 लाख नाबालिक लड़कियों के साथ रोज बलात्कार होता है, हो रहा है। क्योंकि अब कानूनानुसार 18 साल से कम उम्र की लड़की के साथ सहवास बलात्कार है भले ही उसकी सहमति हो या न हो।

16 दिसंबर 2012 को दिल्ली के वसंत विहार इलाके में चलती बस में पैरामेडिकल छात्रा से गैंगरेप के बाद देशभर में आक्रोशित लोगों द्वारा हुए विरोध प्रदर्शन, आंदोलन और मीडिया द्वारा की गई प्रत्येक क्षण की कवरेज एवं अप्रत्यक्ष समर्थन के फलस्वरूप सरकार को नया दुष्कर्म विरोधी कानून बनाना पड़ा। 03 अप्रैल, 2013 को राष्ट्रपति की मंजूरी के बाद यह नया कानून बना था, इस कानून के अनुसार–

- गैगरेप के मामले में 20 साल से उम्रकैद तक की सजा
- रेप के मामले में सात साल से उम्रकैद तक की सजा
- आजीवन कारावास का मतलब दोषी को जीवनकाल तक जेल में रहना होगा
- ऐसे मामलों में पहले दोषी ठहराए गए व्यक्ति को मौत तक की सजा दी जा सकती है
- पीछा करने और घूर–घूर कर देखने को गैर जमानती अपराध घोषित किया गया है, बशर्ते यह अपराध दूसरी बार किया गया हो
- तेजाब हमला करने पर 10 साल सजा का प्रावधान
- सहमति से यौन संबंध बनाने की उम्र 18 साल तय की गई है
- नए कानून में प्रावधान है कि सभी अस्पताल बलात्कार पीड़िता का तुरंत उपचार करें। ऐसा न करने पर सजा का प्रावधान है ।

वेश्यावृत्ति– बाल वैश्याओं के यौन शोषण सम्बन्धी एक जनहित याचिका (ए0 आई0 आर0– 1990 सुप्रीम कोर्ट–1412) में विद्वान न्यायमूर्तियों ने कहा ''हमारे विचार से देश भर के केन्द्रीय जांच ब्यूरो द्वारा पूछताछ या पड़ताल न तो व्यवहारिक रूप से सम्भव है न ही वांछित। उन्हें निर्देश देने से कोई लाभ सिद्ध नहीं होना वाला। यह सिर्फ सामाजिक ही नहीं, आर्थिक समस्या भी है, सजा से अधिक नियंत्रण आवश्यक है। 1978 में मथुरा बलात्कार कांड में सर्वोच्च न्यायालय का फैसला न्याय की भाषा का सर्वस्व नमूना कहा जा सकता है। पुलिस स्टेशन में पुलिसकर्मियों द्वारा बलात्कार को एक शांतिपूर्ण सहमति का मामला माना था और 'मथुरा' को झूठी ही नहीं चरित्रहीन स्त्री भी कहा। पुलिस स्टेशन को वेश्यालय की तरह से इस्तेमाल करना कोई अपराध और यह निर्णय, उसका लाइसेंस नहीं ? मथुरा केस में सुप्रीम कोर्ट के निर्णय के विरुद्ध महिलाओं द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर विरोध और जन आंदोलनों के फलस्वरूप 1983 बलात्कार सम्बन्धी प्रावधानों में संशोधन के वावजूद गहरे गड्ढे भी मौजूद है। न्यायिक दृष्टिकोण से भी कोई उल्लेखनीय बदलाव नहीं हुआ लगता। सुमन से लेकर भवरी बाई बलात्कार

कांड तक में हुए निर्णय इसका प्रमाण हैं। किसी वेश्या की मर्यादा को समान सुरक्षा का उतना ही अधिकार है जितना किसी अन्य महिला को (ए0 आई0 आर0 1962 मद्रास 31)। लेकिन हर बात न्याय की अंधी देवी की तुला में एक तरफ बलात्कार की अपमानजनक पीड़ा होती तो दूसरी तरफ पीड़िता का नैतिक चरित्र, जाहिर है, ऐसे में स्त्री को न्याय असम्भव है। सिर्फ न्यायमूर्तियों को भी दोषी ठहराना भी व्यर्थ होगा क्योंकि वे उसी समय व समाज की उपज हैं। सुमन बलात्कार केस (ए0 आई0 आर0 1989 सुप्रीमकोर्ट– 937) में सर्वोच्च न्यायालय के न्यायमूर्तियों द्वारा हरियाणा के पुलिसवालों की सजा 10 साल से घटाकर 5 साल की गयी थी। मुख्य कारण लड़की संदिग्ध चरित्र की है। पुलिस पक्ष की ओर से मुकदमे की पैरवी मानवाधिकारों के चैम्पियन गोविन्द मुखौटी ने की थी जब अखबार और पत्रिकाओं में इस निर्णय की आलोचना हुई तो मुखौटी को सार्वजनिक रूप से माफी मांगते हुए पी0यू0डी0आर0 अध्यक्ष की कुर्सी से इस्तीफा देना पड़ा। पुर्नविचार याचिका में अपना फैसला तो नहीं बदला, हां इतना स्पष्टीकरण जरूर दिया कि पूर्व फैसले का आधार लड़की का संदिग्ध चरित्र होना नहीं, बल्कि रिपोर्ट पांच दिन बाद करवाना है। निर्णय में कहा गया कि यह अदालत स्त्री–गरिमा और सम्मान की रक्षा में किसी से कम नहीं है। (ए0 आई0 आर0 1990 सुप्रीम कोर्ट–538)[5] कहा जाता है कि वेश्यावृत्ति दुनिया का सबसे पुराना व्यवसाय है। यह एक ऐसी सच्चाई है जिसके सामने दुनिया भर की सभ्यतायें नजरें नीचे किये सिर झुकायें खड़ी हैं। यह एक ऐसा कर्म है कि वेश्या के रूप में स्त्री ही नहीं ग्राहक के रूप में कर्ता–कारक है। मानवीयता पर कलंक इस व्यवसाय पर खत्म करने के उद्देश्य से पुरूष प्रधान हमारे समाज की कुल–कवायत वेश्याओं के इर्द–गिर्द मंडराती रह जाती है। जबकि इसे पसरने व पनपने के लिए ईंधन मुहैया करवाने वाला एक विशाल वर्ग (ग्राहक) सदैव नजरअंदाज कर दिया जाता है। नतीजतन, अमूमन, जख्म ऊपर से ठीक हो जाता है और मौका पाकर नासूर बन उभरने लगता है। जब तक बाजार में खरीददार मौजूद है वेश्यावृत्ति का खात्मा कैसे सम्भव है?

किसी जमाने में मनीला के मेयर एर्लुडो लीम ने वहां के तकरीबन तीन सौ बार बन्द करवाकर, कई तरह की पाबन्दियां लगवा दी थी। मुम्बई समेत समूचे महाराष्ट्र में बार–बालाओं पर शिंकजा कसने की सरकारी कवायद पिछले वर्षों में देश की सुर्खियों में रही थी। करांची में मानवाधिकार से जुड़े सभी ऐसे गिरोहों के विरुद्ध जनमत तैयार किया था। जिन्होंने हजारों बांग्लादेशी लड़कियों का अपहरण कर वेश्या बना दिया था, मगर क्या इन सबसे उन देशों में इन कारोबार का खात्मा हुआ? उल्टे इलाज करने की

5. राष्ट्रीय सहारा 30.12.2002, पृष्ठ–8

कसरत में मर्ज ही लाइलाज होता जा रहा है। क्या एक बार इस दोजख में कदम रख देने वाली औरत को हमारा समाज स्वीकारने की हिम्मत रखता है ? क्या हमारा समाज इस कदर परिपक्व है कि उन्हें चैन से कोई और कारोबार कर रोजी–रोटी कमाने देगा? उन्हें इत्मीनान से पुनर्वासित होने देगा। इन सारे सवालों का जवाब नही हैं।[6] दुनिया के पहले पुराने पेशे पर ताजा बहस यह है कि उसे कानूनी मान्यता दी जाये या नहीं। योजना आयोग का प्रस्ताव है कि वेश्यावृत्ति को अपराध के दायरे से निकाला जाये। इसी तरह से सेक्स वर्कर फोरम की मांग है कि सेक्स वर्कर को भी अन्य कामों की तरह से उसे सम्मानित किया जाये। जबकि देश की महिला संगठन इसके विरोध में खड़ी हो गयी है। देश में कोई ऐसा कानून नही है जोकि किसी महिला को आनन्द या लाभ के लिए अपना जिस्म बेचने से रोकता हो। अगर वह वयस्क है तो वह अपनी इच्छा से बिना किसी दबाव के शारीरिक सम्बन्ध बना सकती है वशर्तें वह सम्बन्ध सार्वजनिक स्थलों पर न स्थापित किये जाएं। ऐसा करने से वह किसी कानून का उल्लंघन नहीं करती। भारतीय संविधान वेश्यावृत्ति के नाम पर इस बात को अवैध ठहराता है कि वह ट्रैफिकिंग है। ''प्रिवेंशन ऑफ इमोरल ट्रैफिंकिंग एक्ट' 'पीटा' के तहत वेश्याओं की कमाई पर जीवन गुजारना, वेश्यावृत्ति के लिए किराये पर जगह देना, चकला घर चलाना, वेश्यावृत्ति के लिए महिलाओं को खरीदना–बेचना, वेश्यावृत्ति के लिए महिलाओं को कैद करना और सार्वजनिक जगहों पर ग्राहक पटाना कानून में अवैध एवं दण्डनीय अपराध है। योजना आयोग का कहना है कि देश में एच0 आई0 वी0/एड्स के आंकड़े चिंताजनक हदों को पार कर रहे हैं। इस घातक बीमारी पर नियंत्रण इसीलिए नहीं हो पा रहा है, क्योंकि वेश्यावृत्ति पर पाबन्दी लगी हुई है। अगर इसको अपराध नहीं माना जाये तो एड्स को नियंत्रित करने की योजनाओं पर प्रभावी ढंग से अमल किया जा सकता है।[7]

कन्या भ्रूणहत्या सर्वेक्षण कहते हैं कि स्त्रियों की आबादी घटते जाने में स्त्रियों का योगदान है, क्योंकि आंकड़े बताते हैं कि पड़ताल अशिक्षित औरतों के दायरों को टटोलकर आगे बढ़ती है तो चौकाने वाले तथ्य उजागर होते है अंत में ज्ञात होता है कि स्त्री इतनी ज्यादा पढ़ी–लिखी है। साधन सुविधा सम्पन्न है, कन्या भ्रूण हत्या में उतनी ही मुस्तैदी से सक्रिय है। इस तथ्य से इंकार नही किया जा सकता है कि अधिकतर भ्रूण हत्याएं शहरों में अंजाम पाती हैं। क्यों होता है ऐसा ? शिक्षित स्त्री भी पढ़–लिखकर

6. अमर उजाला 29 अक्टूबर 2005 पृष्ठ–4
7. जनसत्ता एक्सप्रेस,लखनऊ – दिनांक 30 अक्टूबर 05 पृष्ठ–6

क्या अपने विवेक का दायरा विकसित नही कर पायी, जिसमें बेटी– बेटे के लिए बराबर जगह हो ? या वह पुरूष वर्चस्व वाले समाज में अपनी नस्ल को जिंदा रखने की हठ को जिंदा पकड़ सके। लेकिन वह ऐसा कुछ नही करती बड़े अनुपात में औरतें, पुरूष पैदा करने की अपनी योग्यता समझती हैं। वह स्त्री अपने विवाह के बाद बंशोत्पत्ति उसकी पहली जिम्मेदारी मानी गयी है और वंश–वृद्धि का अभिप्राय होता है। पुत्र जन्म से उच्च शिक्षा प्राप्त लड़की जब कई वर्षों तक संतान पैदा नही करती, तो समाज उसे नीची नजरों से देखना शुरु हो जाता है और वह लड़की को जन्म देती है तो उसे दोबारा गर्भ धारण करने के लिए मानसिक एवं शारीरिक तौर पर तैयार किया जाता है।

हमारे साथ भारतीय समाज खुले पन्नें की तरह फैला है। दहेज दहन, बदचलनी के संदेश और यौन–आनन्द के लिए शिकारी (सभ्य) पुरूषों के संसाधन अचूक है। स्त्री के विरोध को कुचलना पारिवारिक एवं सामाजिक मर्यादा है। अतः उसे अपनी ही नस्ल के विनाश के लिए विवश कर दिया है। वरना जो खुद पुरूष नही हो, वह स्त्री से घृणा क्यों करेगी, कन्या–भ्रूण के गर्भपात के लिए तैयार होना, अपनी जिंदगी की खैर बनाना है।[8]

इस प्रकार कुल मिलाकर नारी विषयक मानवाधिकारों को विभिन्न विधियों एवं न्यायिक–निर्णयों में पर्याप्त संरक्षण प्रदान किया गया है। बदलते परिवेश में संविधान में 42वें संशोधन द्वारा अनुच्छेद 51–(ड.) के अन्तर्गत नारी सम्मान को स्थान दिया गया और नारी सम्मान के विरूद्ध प्रथाओं का त्याग करने का आदर्श अंगीकृत किया गया है। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, खबरों एवं नारी विषयक जनचेतना के कार्यक्रमों के द्वारा मीडिया तथा राष्ट्रीय महिला आयोग नारी सम्मान रक्षार्थ हेतु सतत् प्रयासरत है।

* * *

8. अमर उजाला 5 नवम्बर 2005 पृष्ठ–4

मानव अधिकारों से संबंधित समसामयिक विषयों पर केन्द्रित लेख

मानव अधिकार विमर्श और भारतीय संदर्भ

*प्रो. अरुण चतुर्वेदी

मानव अधिकारों का अध्ययन मूलतः राज्यों से जुड़ा है, क्योंकि अधिकारों के प्रश्न पर जो समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं, उनमें राज्य से संबंधित प्रश्न अधिक चिन्ता उत्पन्न करते हैं। मानव अधिकारों की सुरक्षा का प्रश्न राज्य को ही सम्बोधित किया जाता है और राज्य से ही आशा की जाती है कि वह अधिकारों को सुरक्षित करने का उत्तरदायित्व ग्रहण करेगा।

वर्तमान में मानव अधिकारों का विश्लेषण सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संदर्भों में किया जा रहा है और इस क्रम में आवश्यकता एक ऐसे दृष्टिकोण की है जो अन्तः अनुशासनात्मक संदर्भों में अपना आकलन प्रस्तुत करे।

अन्तर्राष्ट्रीय संदर्भों में मानव अधिकारों का विश्लेषण मूलतः 1948 की मानव अधिकारों की घोषणा से आरम्भ होता है। इस घोषणा पत्र में जिन अधिकारों की घोषणा की गई है, उनके मूल में अधिकारों के संरक्षक के रूप में राज्यों को ही माना गया है। राष्ट्र राज्यों के लिये ये दिशानिर्देश मुख्यतः राज्यों की सहमति और सहयोग के लिये आग्रह का कार्य करते है। ये महत्त्वपूर्ण इसलिये हैं कि इन न्यूनतम परिस्थितियों के लिये अन्तर्राष्ट्रीय सहमति है और ये राज्यों के लिये उनके उत्तरदायित्व को याद दिलाने का माध्यम भी हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मानव अधिकारों की घोषणा एक और संदर्भ में महत्त्व रखती है यह घोषणा यह याद दिलाने के लिये है कि अन्तर्राष्ट्रीय विधि का मूल उत्तरदायित्व राज्यों तक ही सीमित नहीं है वरन् उसका सरोकार व्यक्ति से जुड़ा है और मानव अधिकारों की घोषणा इस स्मरण के लिए काफी है। अन्तर्राष्ट्रीय विधि ने इस राष्ट्र राज्य

---

*मानद निदेशक, क्षेत्रीय वर्धमान खुला विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.)।

की परिधि को तोड़ने का कार्य सैद्धान्तिक स्तर पर किया है और कतिपय मानव अधिकारों से जुड़े संगठन राष्ट्र राज्यों को यह तो याद दिलाते रहते हैं कि मानव अधिकारों की अवहेलना हो रही है और उसके परिणाम राष्ट्र राज्य की अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा को सीमित कर देते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय विधि के स्तर पर ही एक और विकास का उल्लेख किया जा सकता है जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय की चिन्ता उन समूहों के आचरण को लेकर बढ़ी है जो मानव अधिकारों की अवहेलना करते हैं और व्यक्तियों के अधिकारों की उपेक्षा हिंसात्मक तरीके से की जाती है। अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद के विरुद्ध संघर्ष में सारे संदर्भों में मानव अधिकारों की अवहेलना का विषय गहराई से जुड़ा है। अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद से जुड़े कुछ समूह यह मानते हैं कि वे राज्यों के अत्याचारपूर्ण व्यवहार और अन्याय के खिलाफ संघर्ष में आतंकवादी तरीके से अपने उद्देश्य पूरा करना चाहते हैं। ऐसे समूहों के औचित्य को स्वीकार करने के प्रभावी तर्क भी हैं, किन्तु ये समूह विभिन्न व्यक्तियों के जीवन और स्वतंत्रता के अधिकार को सीमित करते हैं। इन अधिकारों की सुरक्षा के लिये अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्र राज्यों को और अधिक शक्ति प्रदान की जाती है।

मानव अधिकारों पर विचार करने के क्रम में राज्य और मानव अधिकारों के प्रश्न पर विस्तार से चर्चा हुई है और इस सिलसिले में राज्य के मुख्य तत्त्व सम्प्रभुता और मानव अधिकारों पर विमर्श रोचक और परस्परविरोधी विचार क्रम से जुड़ा है। सम्प्रभुत्ता को मूलतः राज्य की सर्वोपरिता से जोड़ कर देखा गया है, एक ऐसा तत्त्व जिसमें कोई हस्तक्षेप संभव नहीं है, किन्तु मानव अधिकार के विमर्श से व्यक्ति को केन्द्र में रखते हुए कुछ सीमाएं भी हैं, जिसे सम्प्रभुत्तावादियों ने हस्तक्षेप, अवरोध, सम्प्रभुत्ता का विलोपीकरण माना है और इसलिये मानव अधिकारों पर आपत्ति की है, किन्तु यह प्रश्न उन सब लोगों के लिये महत्त्वपूर्ण रहा है जो व्यक्ति की गरिमा और उसके लिये राज्य की परिकल्पना करते रहे हैं। तर्क यह है कि सशक्त राज्य उन स्थितियों की स्थापना के लिये सहायक होता है जो मानव अधिकारों के लिए अधिक अनुकूल होती हैं। कमजोर राज्यों में अव्यवस्थाएँ मानव अधिकारों की स्थापना के लिए प्रतिकूल होती हैं और वे मानव अधिकारों की स्थापना की सम्भावनाओं को कम करती हैं। इस बहस पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि राज्य की अपनी स्थितियां, मानव अधिकारों की उपलब्धि के लिए एक मानक हो सकती हैं।

मानव अधिकारों पर बहस में राज्य की व्यक्ति के साथ प्रताड़ना और उसके अधिकारों की अवहेलना एक महत्त्वपूर्ण पहलू है किन्तु यह मानव अधिकारों की सीमित व्याख्या है। मानव अधिकारों के वर्गीकरण को मुख्यतः दो भागों में रखा जा सकता है।

पहला, नागरिक और राजनैतिक अधिकारों से जुड़ा है। ये अधिकार मूलतः एक नागरिक समाज (सिविल सोसासटी) का निर्माण करते हैं। इस वर्ग में स्वतंत्रता, सम्मान और अधिकारों का उल्लेख प्रमुख है। इन अधिकारों के क्रम में यह बात महत्त्वपूर्ण है कि इनकी स्थापना में किसी भी प्रकार के भेद की चर्चा नहीं की गई है। यह समानता उन समाजों के लिये अधिक महत्त्वपूर्ण है जो असमानताओं के शिकार रहे हैं। जाति, रंग और लिंग के आधार पर भेदभाव को समाप्त करना उन सब समाज व्यवस्थाओं के लिए महत्त्वपूर्ण है जो लम्बे समय से इस आचरण से ग्रस्त हैं। राजनैतिक स्वतंत्रता की घोषणाएँ उन समाजों के लिये विशेष रूप से उपयोगी हैं जहाँ स्वतंत्रताओं को न केवल कुचला गया है वरन् लम्बे समय तक उपेक्षा भी की गई है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता अभिव्यक्ति के स्वतंत्र निर्माण के अभाव में सम्भव नहीं है।

दूसरे वर्ग में आर्थिक और सामाजिक अधिकारों का उल्लेख है। ऐसा प्रतीत होता है कि ये अधिकार उस बहस की अन्तिम परिणति है जिसमें राष्ट्र राजनैतिक स्वतंत्रताओं को आर्थिक समानताओं के अभाव में पूरा नहीं माना जाता है। इस वर्ग में हर व्यक्ति को कार्य करने का अधिकार और रोजगार चयन का अधिकार प्रदान किया गया है, साथ ही साथ बेरोजगार का अधिकार प्रदान किया गया है, और साथ ही साथ उचित जीवन शैली की बात भी कही गयी है। स्वास्थ्य और शिक्षा के अधिकार की चर्चा है और समुदाय के सांस्कृतिक जीवन में भाग लेने के अधिकार को भी दुहराया गया है। वैसे ये व्यापक, सामाजिक और आर्थिक अधिकार उन सब समाजों के लिए महत्त्वपूर्ण हैं जहाँ अभावों का निरन्तर विस्तार हो रहा है। ऐसी स्थितियों में मानवीय अधिकारों की स्वाभाविक अवहेलना भी होती है। मानव अधिकारों के बारे में यह तो कहा ही जा सकता है कि ये वास्तव में वे मानक हैं जो अन्तर्राष्ट्रीय समाज प्रत्येक व्यक्ति के लिये स्वीकार्य हैं। ऐसी स्थिति में राज्य सरकारों के लिये दिशा–निर्देश भी है कि वे इन अधिकारों के हनन न होने दें। इन अधिकारों की स्थापना के लिये प्रयत्नशील होने का आग्रह कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।

मानव अधिकार : तीसरी दुनिया के संदर्भ

मानव अधिकारों से जुड़े विमर्श में एक और संदर्भ को लेना अनुचित नहीं होगा जो वैश्वीकरण और अन्तरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य से जुड़ा है। राष्ट्र राज्य की परिकल्पना को इस विचार से जुड़े विभिन्न पक्षों ने प्रभावित किया है, जिसमें एक ओर सूचना क्रान्ति राज्य के आचरण से जुड़े विभिन्न प्रश्नों को अन्तरराष्ट्रीय मंचों पर प्रस्तुत किया है। वहीं विभिन्न मंचों के माध्यम से राज्य पर दबाव भी बने हैं। अरब राष्ट्रों में हुए बदलाव एवं

उनसे जुड़ी सारी सूचनाएँ, जिनमें अरब देशों के तानाशाहों के नृशंस आचरण जन चेतना और राजनैतिक उबाल जो 2010—2011 में नजर आये। वे राज्य जन समूह और मानव अधिकारों के विमर्श को आगे बढ़ाते हैं। ग्राम विश्व और सार्वभौमिकता की टूटती सीमाएं मानव अधिकार से जुड़े संदर्भों को व्यापक बनाती हैं और राष्ट्रीय स्तर पर उनके प्रयोग प्रजातांत्रिक विकल्पों का विस्तार भी करते हैं।

वैश्वीकरण के संदर्भ में ही दो तरह के क्षेत्रों (रिजीम) की बात कही जाती है। पहला क्षेत्र 'मानव' अधिकारों का है और दूसरा 'मुक्त व्यापार' का। यों तो दोनों के समर्थक व्यक्ति के कल्याण की बात कहते हैं। यह रोचक है कि मानव अधिकारों के पालन का कार्य राष्ट्रीय सरकारों का है, किन्तु धीरे—धीरे यह मान्यता भी स्वीकृति पा रही है कि निजी क्षेत्र भी मानव अधिकारों के अभिवर्द्धन में सक्रिय भूमिका निभा सकता है और उसके प्रयास उद्योग के सामाजिक उत्तरदायित्व के अन्तर्गत आरम्भ हो सकते हैं। प्रश्न यही है कि मुद्रा का मुक्त प्रवाह, राज्य के नियंत्रणों के अभाव और वैश्वीकरण की अन्य व्यवस्थाएं मानव अधिकार के क्षेत्र में व्यक्ति की स्थिति को सुदृढ़ कर पायेगी या नहीं, क्योंकि मानव अधिकार क्षेत्र की वास्तविकताएँ और मुक्त व्यापार क्षेत्र से जुड़े प्रश्न और उनमें निजी क्षेत्र की भूमिका कोई सुनिश्चित और सुविचारित संवाद का परिणाम नहीं रहा है। ऐसी स्थिति में 'मानव अधिकार क्षेत्र' की अवहेलना वैश्वीकरण की सम्भावनाओं में बनी रहती है।

मानव अधिकारों के विमर्श को और अधिक स्पष्टता और गहराई से समझने के लिये आवश्यक है कि हम उन्हें तीसरी दुनिया या अपने विश्लेशण की सुविधा के लिये 'विकासशील' समाजों के संदर्भों में देखने का प्रयास करें। इस व्याख्या में हमें यह अवश्य ही समझ लेना चाहिये कि तीसरी दुनिया के देश स्तर पर नहीं है, न तो विकास की दृष्टि से और न हीं राज्य की शक्ति के प्रयोग के स्तर पर। विकास और राज्य की शक्ति—प्रयोग की क्षमताएं मानव अधिकार की स्थिति को प्रभावित करती हैं। तीसरी दुनिया के देशों के विशेष संदर्भ में एक बात और भी समझ लेना होगा कि आर्थिक वैश्वीकरण के दौर में केवल राज्य ही महत्त्वपूर्ण अभिकर्ता नहीं है वरन् कई राज्य स्तर की संस्थाएं भी हैं, जिनमें विशाल आकार की बहुराष्ट्रीय कम्पनियां हैं जिन पर राज्यों को नियमित और नियंत्रित करने वाले नियम और आचरण लागू नहीं होते हैं। ऐसी स्थिति में मानव अधिकारों की स्थिति क्या होगी — यह एक विचारणीय प्रश्न है और उनके नियमन मानव अधिकार के सारे संवाद को निर्धारित करेंगे।

तीसरी दुनिया के संदर्भ में एक बहस और प्रचलित है और वह यह है कि क्या मानव अधिकार सर्वव्यापी है। यह बहस उसी तरह लोकप्रिय है जैसी अन्तरराष्ट्रीय विधि

के पक्ष से जुड़ी कि अन्तरराष्ट्रीय विधि पश्चिमी देशों द्वारा बनाई गयी है। तीसरी दुनिया और नवोदित देशों की उसमें क्या भूमिका है? इसी तरह मानव अधिकार विकसित और पश्चिमी देशों का मुख्य विचार है। तीसरी दुनिया का उनसे क्या जुड़ाव हो? इस प्रश्न पर सैद्धान्तिक बहस मानव अधिकारों के उस पक्ष को भी इंगित करती है जहाँ तीसरी दुनिया के बहुत से देश उन अधिकारों और अभावों में जी रहे हैं, मानव अधिकार के मानक एक चेतना प्रदान करते हैं। यह प्रश्न तो लगातार बना हुआ है कि स्वतंत्रता, समानता विशेषकर आर्थिक और राजनैतिक, किसी भी राज्य के लिए अपरिहार्य हैं।

इन्हीं सैद्धान्तिक अवधारणाओं के क्रम में तीसरी दुनिया की अवधारणा और विशिष्टताओं को समझना अनुचित न होगा, विशेषकर ऐसे समय में जबकि 'दूसरी दुनिया' जिसकी अवधारणा साम्यवादी राज्य और समाजों से जुड़ी थी, सोवियत संघ की समाप्ति के साथ दूसरी दुनिया के पराभव की घोषणा 1990–91 में की जाने लगी। पहली दुनिया का प्रभुत्व अमेरिकी नेतृत्व में साफतौर पर उभरा था। ऐसी स्थितियों में तीसरी दुनिया ''कैसी और कहाँ'' यह विवाद का विषय रहा है। हम अपनी सुविधा के लिये एक तरफ विकासशील समाजों के साथ तीसरी दुनिया को विकासशील समाजों (राज्यों) के पर्याय के रूप में ही मान रहे हैं। विकासशील समाज (तीसरी दुनिया) की विशेषताओं में पिछड़ापन और गरीबी मुख्य रूप से हैं और ये दोनों ही परिस्थितियाँ, मानव अधिकारों के लिये तो अनुकूल नहीं है। हम लोग तीसरी दुनिया की परिस्थितियों में शिक्षा के अधिकार की समीक्षा करें। यह सर्वविदित है कि शिक्षा एक महत्त्वपूर्ण अधिकार है, जिसकी पहली शर्त यह है कि यह अधिकार 6 से 12 वर्ष के सभी बच्चों को प्राप्त हो। तकनीकी और माध्यमिक शिक्षा की उपलब्धि का आग्रह किया जाता है और उच्च शिक्षा के प्रमुख उद्देश्यों में व्यक्तित्व का विकास, मानव अधिकारों के प्रति सम्मान और राष्ट्रों के बीच सहयोग और सद्भाव के विकास की बात भी की जाती है। किन्तु तीसरी दुनिया में शिक्षा के विकास पर दृष्टि डालें तो यह पायेंगे कि 1990 के दशक में भी अधिकांश देश शिक्षा की प्राथमिक सुविधा से वंचित थे। ऐसे में मानव अधिकारों के प्रति चेतना का क्या अर्थ रह जाता है? शिक्षा तीसरी दुनिया के प्राथमिक व्ययों में शामिल नहीं है। 1990 के दशक में प्रौढ़ शिक्षा दर विकासशील देशों की बात अपने आप ही कह देती है। भारत में कुल दर 52 प्रतिशत है जिसमें महिला शिक्षा दर 39 प्रतिशत है, चीन की 78 प्रतिशत, महिला शिक्षा दर 68 प्रतिशत है, जिम्बावे की कुल दर 67 प्रतिशत और महिला दर 60 प्रतिशत, नाइजीरिया की 51 प्रतिशत और महिला दर 39 प्रतिशत, घाना की 60 प्रतिशत और महिला 51 प्रतिशत (दारजी और सेन, 1995; स्टेस्टकिल अपन्डिक्स और चीन के संदर्भ में वर्ल्ड डवलपमेन्ट रिपोर्ट, 1994)। केन्द्रीय सरकारों के शिक्षा व्यय तो और भी दयनीय स्थिति को स्पष्ट करते भारत सरकार के

व्यय का 1993 में 2.2 प्रतिशत, पाकिस्तान में 1.1 प्रतिशत, श्रीलंका में 10.4 प्रतिशत, मेक्सिको में 13.9 प्रतिशत व्यय हुआ है। शिक्षा की यह निचली प्राथमिकता मानव अधिकार की पहली सीढ़ी का ही गम्भीर उल्लंघन है।

अधिकारों के क्रम में ही जीवनयापन के रोजगार के अवसरों की बात करना गलत नहीं है। यह साफ है कि पिछड़ापन और गरीबी जो तीसरी दुनिया के पीछे सदियों से लगे हैं अभी भी पीछा नहीं छोड़ रहे और वे हमारा साथ छोड़ेंगे यह निकट भविष्य में तो नजर नहीं आता। आर्थिक शोषण के सभी मानदण्ड तीसरी दुनिया के समाजों में उपलब्ध हैं। यह कष्टकर अनुभव ही है कि इन समाजों में सस्ती दरों पर अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों के लिये श्रमिक उपलब्ध हैं और वे इन समाजों के लिए सबसे बड़े धन अर्जक हैं। ये श्रमिक भारत और पाकिस्तान की सबसे बड़ी सम्पत्ति हैं। आर्थिक विकास के अवसरों के उपलब्ध न होने से बाल श्रम और महिला श्रम के कलंक से तीसरी दुनिया के देश अभिशप्त हैं। लगातार गिरते जीवन स्तर, आर्थिक प्रभाव विकासशील समाजों के मानव अधिकारों की करुणकथा कह रहे हैं। इन स्थितियों में सुधार की सम्भावनाएँ कम हैं, क्योंकि इन समाजों में विकास के स्थान पर सैन्य क्षमताओं और शस्त्रों के नव निर्माण की प्रतियोगिता में भाग लेने का निर्णय किया है। 1997 की ह्यूमन डेवलपमेन्ट रिपोर्ट कुछ ऐसा ही संकेत देती है। ये आंकड़े 1994–95 के हैं। चीन का मानव विकास मानक स्थान है 108, और रक्षा व्यय 31,738 मिलियन डॉलर है। भारत का स्थान 138वां है, रक्षा व्यय 8,289 मिलियन डॉलर है। लगातार बढ़ते रक्षा व्यय यह संकेत तो देते ही हैं कि आर्थिक स्तर पर मानव अधिकारों के लिये उपलब्ध संसाधन कम रहेंगे और विकास के लिये उपलब्ध अवसर बहुत ही कम।

तीसरी दुनिया के देशों में मानव अधिकारों की स्थिति अब और भी गम्भीर हो गई है क्योंकि व्यक्तियों की स्थिति में कुछ सुधार होता, उन्हें राज्य द्वारा मूलभूत सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं और राज्य उनके विकास के लिए सक्रियता और हस्तक्षेप को जारी रखता है। विकासशील समाजों में तो वह सामाजिक न्याय और अवसरों की उपलब्धता के लिये प्रभावी हस्तक्षेप है। यदि राज्य का यह हस्तक्षेप समाप्त होता है और नागरिक समाजों के नये मानक स्थापित नहीं हो पाते हैं तो तीसरी दुनिया में अवसरों की उपलब्धि और सामाजिक बराबरी के लिये कौन विशेष प्रयास करेगा, यह नया प्रश्न है, जिससे सैद्धान्तिक और व्यावहारिक स्तर पर निपटना होगा।

तीसरी दुनिया की राजनैतिक व्यवस्था बहुत कमजोर है और अस्थिरता से ग्रस्त भी किन्तु राज्य व्यवस्थाएँ बहुत ही संवेदनशून्य हैं। राजनैतिक विरोधियों को कुचलने के लिये राज्य व्यवस्थाओं का खुला उपयोग करने में वे जरा भी नहीं हिचकिचा रही है।

तीसरी दुनिया के सैनिक तानाशाह अपने विरोधियों को जेल में रखने के आदि हैं और राजनैतिक बन्दी सभी स्थानों पर हैं। म्यामार (बर्मा का नया नाम) तथा चीन में भी राजनैतिक बन्दियों और विरोधियों को सजा देने की परम्परा रही है। बांग्लादेश, पाकिस्तान आदि में विरोधियों को सजा देने की परम्परा है, मानव अधिकारों के उल्लंघन में तियानमिहिन चौक की घटना लम्बे समय तक याद की जायेगी। प्रजातंत्रात्मक व्यवस्थाओं का पतन मानव अधिकारों की महत्त्वपूर्ण उपेक्षा संकेत है।

वर्ष 2010–11 में तीसरी दुनिया के अरब देशों में प्रजातांत्रिक आन्दोलनों का आरम्भ हुआ जिसके अन्तर्गत दो तथ्य उभर कर आये कि इन देशों में वहाँ के सैनिक शासकों ने प्रजातांत्रिक अधिकारों का हनन करने के साथ–साथ भ्रष्टाचार को अत्यधिक बढ़ावा दिया। अरब देशों के जन आन्दोलनों ने वहाँ के सामान्य नागरिकों में जन चेतना का विस्तार किया और बदलाव की प्रक्रिया को तेज किया। इसे मानव अधिकारों के प्रति सामान्य चेतना का विकास माना जा सकता है।

तीसरी दुनिया के देशों में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि यहाँ के अधिकांश समाज बहुलतावादी हैं, यहाँ भाषायी और धार्मिक अल्पमत है और अल्पमत तथा बहुमत के आपसी तनावों का प्रभाव इन समाजों की आंतरिक बनावट पर पड़ रहा है। अधिकारों की सारी बहस में अल्पमत की सुरक्षा और उनके संरक्षण की आवश्यकता, पहली अनिवार्यता है किन्तु अल्पमत ही इन समाजों में राजनीतिक अत्याचारों के शिकार भी होते हैं। यह महत्त्वपूर्ण है कि अल्पमतों की उपेक्षा में भारत जैसे देश में भी जहाँ अल्पमतों के अधिकार और स्थितियाँ सुरक्षित हैं वहाँ भी नये सिरे से बहस और संवैधानिक स्थितियों में बदलाव की मांग मानव अधिकारों की अवहेलना का आरम्भ तो लग ही सकता है। उनकी शिक्षा, कानूनी और निजी व्यवस्थाओं में हस्तक्षेप, पुनःर्मूल्यांकन और समाप्ति के लिये आग्रह तथा राजनैतिक अधिकारों के हनन का अवसर तो देंगे ही।

तीसरी दुनिया के राष्ट्रों में सामाजिक विघटन साफतौर पर नजर आता है, दक्षिण एशियाई राष्ट्रों में भाषायी आधारों पर विघटन और तनाव साफतौर पर नजर आते हैं। ये तनाव श्रीलंका और नेपाल में भी उपस्थित हैं। यों यह साफतौर पर नजर आता है कि आर्थिक अभाव इस विघटन में दिखाई पड़ता है। दक्षिण एशियाई अनुभव में क्षेत्रीय असंतुलन भी है और उसके चलते पाकिस्तान में पंजाबी और गैर पंजाबी प्रान्तों में लगातार जातीय संघर्ष कराची को बार–बार हिलाते हैं और हिंसा का नया भयावह दौर लम्बे समय से चल रहा है।

तीसरी दुनिया के समाजों में महिलाओं की स्थितियाँ भी उत्साहवर्द्धक नहीं है। अधिकांशतः समाजों में महिलाएँ बहुसंख्यक हैं किन्तु वे गम्भीर सामाजिक और आर्थिक

वंचनाओं की शिकार भी हैं, उनके प्रति अत्याचार दिन ब दिन वीभत्स और हिंसात्मक होते जा रहे हैं। एक पूरी आधी दुनिया की यह दयनीय स्थिति भयावह है। साथ ही साथ शिक्षा और आर्थिक अभावों का यथार्थ उनमें न तो कोई जागृति पैदा होने दे पा रहा है और एक बड़े समूह को मानव अधिकारों से वंचित रखना चिन्ता का विषय तो है ही वैसे लम्बे समय तक केवल चिन्ता की स्थिति ही नहीं, बल्कि अभावों के प्रति अधिक सजगता को जन्म देती है।

पिछले कुछ वर्षों में हुई महिलाओं के विरुद्ध जो घटनाएं अफगानिस्तान में हुई हैं वे मानव अधिकारों की दृष्टि से गम्भीर हैं। जहाँ उनके अधिकारों की, उनकी शिक्षा की और विभिन्न गतिविधियों में भाग लेने के अधिकार को न केवल सीमित किया वरन उन्हें उन अधिकारों से ही वंचित कर दिया गया। पाकिस्तान में भी महिला अधिकारों की स्थिति अच्छी नहीं है।

तीसरी दुनिया के देशों में मानव के देशों में मानव अधिकारों के लिये यह अधिक आवश्यक है कि उन छोटे–छोटे समूहों का विकास जो सजग होकर विभिन्न समूहों के लिये अधिकारों, मानवीय न्यूनतम आवश्यकताओं और हिंसा के विरुद्ध कार्य कर सके। यदि ऐसा नहीं होता है तो मानव अधिकारों की अवहेलना और अभावों की दुनिया का ही विस्तार होगा।

मानव अधिकारों के विश्लेषण में तीसरी दुनिया के राज्यों की समझ अनुचित इसलिये नहीं है क्योंकि मानव अधिकारों के विभिन्न मानकों की स्थापना इन समाजों के लिये अधिक आवश्यक है और ये ही वे समाज हैं जहाँ इन अधिकारों की गहरी अवहेलना है। वैसे इन्हीं समाजों में सामूहिक चेतना के विकास की जिसमें मानव अधिकारों के प्रति सजग प्रतिबद्धता की बहुत अधिक आवश्यकता है।

भारत में मानव अधिकारों की स्थिति

भारत में मानव अधिकारों की स्थिति का विश्लेषण हमारे संविधान की प्रस्तावना के प्रसंग में आरंभ करना उपयोगी होगा। भारतीय संविधान की प्रस्तावना में न्याय, स्वतंत्रता और बन्धुत्व को स्थापित करने की बात कही गई है। साथ ही साथ भारत को सार्वभौमिक सर्वसत्ता सम्पन्न गणतंत्र स्वीकार्य है। इसकी मूल अवधारणा में प्रजातंत्र, समाजवाद और धर्म निरपेक्षता की सैद्धान्तिक स्वीकृति है। यों यह पश्चिम के उदारवादी आदर्शों के प्रति प्रतिबद्ध है जो एक पिछड़े और गैर बराबर समाज के लिये यदि असम्भव नहीं तो एक कठिन मूल्य तो है ही। इसी संदर्भ में 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के समय नेहरू के प्रसिद्ध सम्बोधन में यह घोषणा कि "सभी आँखों में आँसू हैं और हर आँख से आँसू

दूर करना हमारा प्रमुख कार्य महत्वपूर्ण है।" यदि इन वाक्यों को आदर्श मान लिया जाय, विशेषकर सामाजिक न्याय के क्रम में तो यह तो स्पष्ट है कि जितने प्रभावशाली प्रयास होने चाहिये थे उनका अभाव है। निष्कर्ष यही लगता है कि बहुत बड़े पैमाने पर और प्रभावी सुधारों की आवश्यकता थी, पर इसमें कहीं कोई कमी जरूर रह गई।

हमारे सामाजिक विकास और इससे जुड़े विभिन्न प्रश्नों का एक आकलन होना आवश्यक है क्योंकि सामाजिक विकास का यही आकलन भारतीय स्थिति में मानव अधिकारों की हमारी प्रतिबद्धता और उसकी वास्तविक स्थितियों को स्पष्ट कर सकेगा। हम अपने विश्लेषण में भारत, उत्तर प्रदेश और दक्षिण भारत की स्थितियों का उल्लेख कर रहे हैं। ये विश्लेषण कुछ स्थितियों में चौंकाता है किन्तु इसका मूल स्वर अभावों के वर्णन का है। यह विश्लेषण बढ़ते हुए सामाजिक अभावों और अन्तरालों को व्यक्त करता है जहाँ वास्तविकताएँ भयावह हैं ये सामाजिक क्षेत्र में उपेक्षाओं की स्थिति को भी और भी स्पष्ट करती हैं।

तालिका 1, भारत, उत्तर प्रदेश और दक्षिण भारत के संदर्भ में यह स्पष्ट करती है कि पिछले कुछ दशकों में व्यापक स्तर पर हुए बदलाव और प्रयासों के बावजूद अभावों का भी विस्तार हुआ है। यों द्रेज और सेन उत्तर भारत के बिहार, मध्य प्रदेश और राजस्थान के संदर्भ में भी इन्हीं निष्कर्षों को स्वीकार करते हैं। मानव अधिकारों में सामाजिक विकास के ये मानक इन अधिकारों की उपलब्धि की अपनी सीमाएँ निर्धारित करते हैं।

तालिका 1

	भारत	उत्तर प्रदेश	दक्षिण भारत
जनसंख्या 1991 (दस लाख में)	846	139	196
जीवन आशा जन्म के समय	1990.2	54.6	64.0
महिला	59.4	56.8	60.9
पुरुष	54.0	56.8	60.9
मृत्यु दर आयु–4 (प्रति 1000)			
महिला	27.5	38.4	17.8
पुरुष	25.6	33.2	18.9

साक्षरता दर (आयु 7 + 1991 प्रतिशत)			
महिला	39	25	49
पुरुष	64	56	68
औसत प्रति व्यक्ति उपभोक्ता व्यय			
1987–88 (1970–71 की दर से)			
ग्रामीण	41.2	37.7	43.2
शहरी	61.2	55.1	53.1
प्रति व्यक्ति अनुपात 1987–88			
गरीबी की रेखा से नीचे की आबादी			
ग्रामीण	45	48	41
शहरी	37	42	42

स्रोत : द्रेज और सेन की पुस्तक इंडियन डवलपमेन्ट, आक्सफोर्ड प्रेस, 1997, पृ. 38

तालिका 2

जनसंख्या 2011

पुरुष	:	623,724,248
महिला	:	586,469,174
कुल	:	1,210,193,422

जीवन आशा : 2011

महिला	:	67.95
पुरुष	:	65.77

भूख और गरीबी मानक 2009–2010

गरीबी संख्या गणना अनुपात (%):	29.8
गरीबों की संख्या (दस लाख में) :	354.68
कुपोषित जनसंख्या (% में 2005) :	21%
5 वर्ष की आयु में अल्प वजन :	23%
बालकों की संख्या / 2004–09	

(स्रोत : इंडिया फैक्टशीट – 2012)

तालिका 2 में 2011 के भारत की चर्चा है, जो जनसंख्या वृद्धि और अन्य विकास के आंकड़ों को स्पष्ट करती है। महिलाओं सम्बन्धी कुछ आंकड़ों में बदलाव भी आया है, किन्तु सम्पूर्णता में ये मानव अधिकारों की स्थिति में किसी बड़े बदलाव के संकेत नहीं हैं।

विकास के साथ मानव अधिकारों को जोड़ना गलत नहीं होगा, विशेषकर उन स्थितियों में जबकि आर्थिक विकास में कुछ मानक सामाजिक विकास की स्थितियों को भी प्रतिबिम्बित करते हैं। विकास के भारतीय अनुभव में जहाँ अनेक प्रकार की विषमताएँ और विभिन्नताएँ मौजूद हैं, वहाँ मानव अधिकार और विकास की प्रक्रियाओं के अन्तःसम्बन्धों को रेखांकित करना गलत नहीं है। विकास एक अर्थ में मूलभूत सुविधाओं का विस्तार है। यह जीवनयापन के अवसरों से जुड़ा है और न्यूनतम जीवन स्तर की उपलब्धि से भी इसका सीधा सम्बन्ध है। विकास के साधनों के वितरण पर राजनीति और राजनैतिक पक्षों का प्रभाव पड़ता है। भारतीय अनुभवों में यह तथ्य बहुत ही रोचक है कि जिन प्रान्तों में राजनीति और राजनीतिक शक्ति अधिक है, उदाहरणस्वरूप उत्तर प्रदेश और बिहार जहाँ से क्रमशः 85 और 54 सांसद हैं वहाँ विकास के विषेशकर सामाजिक विकास के मानकों का सही विकास नहीं हुआ है। इन प्रान्तों की सामाजिक संरचनाएँ जो पिछड़ेपन, शिक्षा के अभाव और सामन्तवाद से ग्रस्त हैं, पिछड़ेपन को लगातार बढ़ाने में सहयोग ही कर रही हैं। दक्षिण के प्रान्तों के विकास, विशेषकर सामाजिक विकास के मानक, अधिक विकसित हैं और आर्थिक संसाधन की उपलब्धता अधिक रही है, ऐसे में यह परिकल्पना संभव है कि विकास और उसके सामाजिक मानक मानव अधिकारों की उपलब्धि के क्रम में अधिक सहायक हैं। सामाजिक मानकों के अभाव में जो संरचनाएँ विकसित होंगी वे अधिक भयावह हैं।

स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय राज्य मूलतः एक उदारवादी, प्रजातांत्रिक राज्य के रूप में उभर कर सामने आता है जिसमें मौलिक अधिकार, संविधान, प्रभावी न्यायपालिका मुख्य आधार हैं किन्तु राज्य भारतीय स्थिति में उन प्रक्रियाओं में हस्तक्षेप भी कर रहा है जहाँ उसका जुड़ाव सामाजिक न्याय और वितरण में है। यही वह क्षेत्र है जहाँ राज्य की भूमिका न केवल महत्त्वपूर्ण है वरन् प्रभावी भी है। एक अर्द्धशताब्दी के स्वतंत्रता की अवधि में प्रयोग में दोनों अनुभव लगभग साथ–साथ हैं। राज्य के हस्तक्षेप और उससे जुड़ी अव्यवस्थाओं और अक्षमताओं में और लगातार बढ़ते हुए सामाजिक तनाव और असंतोष से राज्य में सत्ता प्रतीकों का लगातार विस्तार हुआ है जिसमें सेना, अर्द्ध सैनिक बल और पुलिस संगठन सम्मिलित हैं। राज्य के पास व्यक्ति को नियंत्रित करने की अभूतपूर्व क्षमताएँ हैं और उससे सम्बन्धित नियम भी। राज्य के आचरण में व्यक्तिगत स्वतंत्रताओं की मर्यादाओं की अवहेलना लगातार दिखती है। राज्य के सशक्त होने की इस अनुभूति के साथ हमारे यहाँ राज्य की अक्षमताओं का प्रदर्शन स्पष्ट रूप से प्रकट होता है। यह अनुभव भी होता है कि हमारे यहाँ अभी जो स्थितियाँ चल रही हैं उनमें राज्य की सार्थकता की बहस उन सब शक्तियों को कमजोर करती है जो राज्य के हस्तक्षेप से अपने कुछ सामाजिक अधिकार और स्थितियों को प्राप्त कर सकते हैं। राज्य के हस्तक्षेप को सीमित करने का अर्थ ही यह है कि हम अपने यहाँ दुविधा की स्थिति के बने रहने में अधिक रुचि रखते हैं। मानव अधिकारों से जुड़े वे अधिकार जो सामाजिक सरोकारों से जुड़े हैं उनकी उपलब्धि तो लगभग असम्भव ही हो जायेगी।

भारत में मानव अधिकार से जुड़े दो पक्षों का अलग–अलग आकलन होना आवश्यक है। वैसे राजनीतिक और सामाजिक अधिकारों को अलग–अलग देखना किसी भी तरह उचित नहीं है। इन्हें अलग किया भी नहीं जा सकता। इस क्रम में हम सबसे पहले अनुच्छेद 18 का विश्लेषण करना चाहते हैं। यह अनुच्छेद प्रत्येक व्यक्ति को विचार, अन्तर चेतना और धर्म की स्वतंत्रता देता है इसमें उसे अपने धर्म या विश्वास में बदलाव की स्वतंत्रता भी सम्मिलित है जिसका प्रयोग वह व्यक्तिगत या सामूहिक स्तर पर कर सकता है। उदारवादी मूल्य धर्म–निरपेक्षता के विचार के निकट हैं। यह आस्था और उन सब समाजों के लिये अधिक उपयोगी है जो धर्मबहुल हैं। भारतीय संदर्भ में इन्हीं अर्थों में महत्त्वपूर्ण है। पिछले कुछ वर्षों से हम एक ऐसी स्थिति से गुजर रहे हैं जहाँ धार्मिक कट्टरपन और धार्मिक आस्थाओं से जुड़े प्रश्नों पर नये और उग्र तरीके से बहस हो रही है। पिछले वर्ष जिस तरह से गुजरात और उड़ीसा में ईसाइयों पर आक्रमण और बहस हुई है वह हमारी धार्मिक स्वतंत्रता की प्रतिबद्धता के लिये उत्साहवर्द्धक नहीं है, यों भी अल्पसंख्यकों की सुरक्षा उदारवादी व्यवस्था के आवश्यक

अंग हैं। मुस्लिम संख्यक और उससे जुड़े विवाद इस दृष्टि से भारतीय अनुभव को समृद्ध नहीं करते।

मानव अधिकार के 20वें अनुच्छेद में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का उल्लेख है। इसी अधिकार में अपने मत की अभिव्यक्ति के अधिकार भी प्राप्त हैं। इसमें हस्तक्षेप का विरोध किया गया है। भारतीय स्थिति में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के लिये विभिन्न माध्यमों को पर्याप्त स्वतंत्रता प्राप्त है, किन्तु हाल ही में कुछ वर्षों में यह लगता है कि सूचना माध्यमों पर राजनीतिक हस्तक्षेप के दबाव बढ़ने लगे हैं। यह स्थिति तब और भी जटिल हो जाती है जब व्यक्ति अपने सूचना प्राप्ति के अधिकार को मांगने लगता है और एक आन्दोलन की स्थिति बन जाती है। इस क्रम में राजस्थान में चल रहे आंदोलन का उल्लेख आवश्यक है जो सूचना में अधिकार के लिये प्रयासरत है। इस आंदोलन ने यह चेतना तो विकसित की है कि सामान्य जन को उस पर हो रहे विकास व्यय और विकास योजनाओं की जानकारी का अधिकार प्राप्त है। विकास प्रशासन की सबसे बड़ी परेशानी यह है कि वह सूचनाओं को पूरी तरह से बांटना नहीं चाहता है, सम्भव है विकास प्रशासन में निहित स्वार्थ कतिपय सूचनाओं को उजागर न करना चाहते हो। सूचना लम्बी प्रक्रिया में प्रभाव को भी कम करती है, इसलिये सूचना के अधिकार में सत्ता के विरोध का स्वर नजर आता है।

सामाजिक और आर्थिक अधिकारों के आकलन का क्षेत्र अधिक व्यापक है और यह आभास भी देता है कि लम्बे प्रयासों के होते हुए भी, अभी एक बड़ा वर्ग इन अधिकारों से वंचित है। इस क्रम में अनुच्छेद 23 का उल्लेख आवश्यक है जो प्रत्येक व्यक्ति को काम करने का अधिकार प्रदान करता है। व्यक्ति को अपनी इच्छा के रोजगार का अधिकार है। साथ ही साथ बेरोजगारी की स्थिति में संरक्षण का अधिकार भी प्राप्त है। भारतीय संदर्भ में यह अधिकार अर्थहीन लगता है क्योंकि बहुत बड़ी संख्या में युवक बेरोजगार हैं। अपनी इच्छा के रोजगार की बात तो बहुत दूर की लगती है, बेरोजगारी में सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था नहीं के बराबर है। इसी अधिकार के अन्तर्गत समान कार्य के लिये समान वेतन की बात कही गई है। हम यह अच्छी तरह से जानते हैं कि हमारे यहाँ महिला और पुरुष में श्रम की अलग–अलग कीमत है। हम इस तथ्य से भी परिचित हैं कि भेदभाव के साथ–साथ सामाजिक उपेक्षा भी महिलाओं के संदर्भ में है।

वर्ष 2004 के बाद महात्मा गांधी राष्ट्रीय रोजगार योजना के अन्तर्गत रोजगार ग्रामीण क्षेत्रों में उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गई। इससे जुड़ी विभिन्न योजनाएं पंचायती राज संस्थाओं द्वारा संचालित की जा रही है। इस प्रयोग के परिणामस्वरूप उन

वर्गों को राहत हो सकती है जो आर्थिक अभावों में रह रहे हैं, किन्तु अभावों की व्यापकता में यह प्रयास कितना आगे तक जायेगा, यह प्रश्न तो बना ही रहेगा।

आर्थिक अधिकारों में इस पक्ष की अवहेलना सही लगती है कि एक बड़े समुदाय को अधिकार से वंचित करना है किन्तु इतने बड़े समूह के उत्तरदायित्व को यथार्थ में कैसे बदला जाये, यह एक गंभीर प्रश्न है।

शिक्षा का मूल अधिकार विशेषकर प्राथमिक शिक्षा के अधिकार की बात मानव अधिकारों की घोषणा में से एक है किन्तु भारतीय संदर्भ में संविधान में नीति निर्देशक तत्त्वों में घोषणा के बाद भी प्राथमिक शिक्षा को सर्व–साधारण तक नहीं पहुँचाया जा सका। शिक्षा के अधिकार से वंचित एक बहुत बड़ा समुदाय है जिनके लिये चेतना के अभाव में अधिकारों की घोषणा व्यर्थ है। महिला शिक्षा की स्थिति तो और भी अधिक दयनीय है, पिछले कुछ वर्षों से यह कोशिश जारी है कि प्राथमिक शिक्षा को मौलिक अधिकारों में सम्मिलित किया जाये। परिणाम यह होगा कि न्यायालय सरकारों को इसकी व्यवस्था के लिये निर्देशित करेंगे किन्तु प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था के लिये जो आर्थिक संसाधन चाहिये उन्हें उपलब्ध कराना केवल राज्य के लिये तो सम्भव नहीं है, यों शिक्षा से जुड़े कई प्रयोगधर्मी, संगठन विकल्पों की चर्चा करते हैं और प्रयोग भी कर रहे हैं। सैद्धान्तिक मान्यता यह है कि शिक्षा का अभाव ही आर्थिक अभावों और अन्तरालों की रचना करता है, ऐसे में यदि हम समाज के बड़े समूह को शिक्षा की सुविधा से दूर रखेंगे तो मानव अधिकारों की स्थापना से तो वह वर्ग स्वाभाविक रूप से ही दूर हो जायेगा, यों इस संदर्भ में यह कहना आवश्यक हे कि प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता पर विचार करने का तो अवसर बाद का होगा पहली प्राथमिकता तो यह है कि नाममात्र की ही सही शिक्षा की सुविधाएँ तो उपलब्ध हों।

वर्ष 2005 के बाद जब शिक्षा को मूल अधिकारों के रूप में घोषित किया गया तो शिक्षा के विस्तार की सम्भावनाएँ बढ़ीं पर प्रश्न यही है कि उन समूहों की क्या स्थिति होगी जिन्हें लम्बे समय तक इस अधिकार से वंचित रखा गया था। इस अधिकार की घोषणा से वंचनाओं की कुछ स्थितियों में सुधार होगा, किन्तु गुणवत्ता के अभाव में स्तर की समानता के प्रश्न तो बने ही रहेंगे।

मानव अधिकारों के घोषणा पत्र का अनुच्छेद 25 हमारे अपने संदर्भ में उचित जीवन स्तर की याद दिलाता है जिसमें परिवार, कपड़ा, मकान की सुविधाओं का आश्वासन है और जीवन की कतिपय सुरक्षाओं का भी उल्लेख है। इन अधिकारों को वास्तविकता में बदलने की स्थिति तो बहुत दूर है। ये उत्तरदायित्व यदि राज्य को सौंप दिये जायें तो

इन व्यापक सुविधाओं की उपलब्धि लगभग असम्भव सा कार्य है। अभावग्रस्त समाजों की अपनी परेशानियाँ हैं और ऐसे में मानव अधिकार से वंचित समूह अपने आपको संगठित करने की स्थिति के लिये ही इन मानकों का उपयोग करेंगे। भारतीय स्थितियाँ इसी वर्ग में हैं।

जीने के अधिकार से जुड़े प्रश्न पर भारतीय संदर्भ में राजस्थान की 2011 की पहल का उल्लेख आवश्यक है जिसमें राजकीय अस्पतालों में मुफ्त दवाइयों का वितरण आरम्भ किया गया। इस योजना के साथ ही अन्य सुविधाओं के विस्तार की बात भी है। राज्य की यह पहल वंचनाओं से जुड़े प्रदेश के लिए महत्त्वपूर्ण है और राज्य के नये संरक्षण को अधिक प्रभावी बनाती है।

भारत में मानव अधिकारों की बात महिला अधिकारों की स्थिति पर चर्चा के अभाव में एकांगी ही रहेगी। महिलाओं के अभाव एवं उनकी वंचनाएं एक सामाजिक व्यवस्था का अंग है। पिछले कुछ वर्षों में उनके राजनैतिक सशक्तीकरण और आर्थिक भागीदारी ने कुछ स्थितियों को बदला है, किन्तु यह उल्लेखनीय है कि उनके बढ़ते हुए अधिकारों के विमर्श ने उनकी स्थितियों को ज्यादा नहीं प्रभावित किया है। उनके प्रति हिंसा, सामूहिक दुष्कर्म और भेदभाव लगातार बढ़ रहे हैं। इस स्थिति को सामूहिक चेतना, कानूनी बदलाव और प्रभावी प्रशासकीय संरक्षण से ही बदला जा सकता है। महिला अधिकार विमर्श आधी दुनिया को मानव अधिकारों के माध्यम से गरिमा प्रदान करने का विमर्श है।

मानव अधिकारों के इस विश्लेषण में यह स्पष्ट है कि उदारवादी, प्रजातांत्रिक परिकल्पनाओं से जुड़े ये अधिकार, फिलहाल तीसरी दुनिया के अधिकांश देशों में वास्तविकता नहीं है। ये मानक इन देशों के समाजों और उन सब समूहों के लिये हैं जो राजनीति करते हैं, जीवन की भौतिक सुविधाओं के अभाव के फलस्वरूप भारतीय स्थिति में भी ये अधिकार एक मानक स्थिति है जिसके लिये विभिन्न राजनीतिक समूह प्रयासरत हो सकते हैं साथ ही साथ ये हमारे अपने समाज की बहुलता के लिये भी एक आदर्श है। यदि बहुलता का स्वरूप समाप्त होता है तो सामाजिक विघटन और तनावों की स्थिति लगातार बनी रहती है, यों भी भौतिक सुविधाओं का अभाव, विकास, मानव अधिकार और उससे जुड़े विभिन्न प्रश्नों को और अधिक जटिल बनाती है। राजनीतिक रूप से जागृत और चेतना के विकास के अवसर तो प्रदान करते ही हैं।

हमारे अपने अनुभव में राज्य में हस्तक्षेप की आवश्यकता एक नई बहस की शुरुआत है जहाँ विकास और मानव अधिकारों की स्थापना में राज्य की महत्त्वपूर्ण

भूमिका है किन्तु साथ ही साथ व्यक्ति की स्वतंत्रता और उससे जुड़े अधिकारों में अनावश्यक हस्तक्षेप भी। हमारी स्थिति में यह लगता है कि विभिन्न नागरिक समुदायों का प्रभावी हस्तक्षेप मानव अधिकारों के लिये अधिक उपयुक्त है।

संदर्भः—

- समीर नईद अहमद, (2007) ह्यूमन राइट्स एण्ड ग्लोबलाइजेशन (निबन्ध), काउंटर करन्ट्स, ओरजी अप्रैल,
- डेलफिन राबेट, (2009) ह्यूमन राइट्स एण्ड ग्लोबलाइजेशन : दी मिथ ऑफ कारपरेटसोसल रिइसपोन्सनेलिटी (निबन्ध) जर्नल ऑफ अलटेरनेटिव परस्पेटिव इन दी सोशल साइन्सेज, जिल्द 1, अंक 2, पृ. 463—475
- डेरिक एम. नायूलेट एण्ड शान एल. (2011) इंग्लैण्ड ग्लोबलाइजेशन एण्ड ह्यूमन राइट्स ने डवलपिंग वर्ल्ड, पालग्रंथ,
- जेक डोनली, स्टेट सावरेनटी एण्ड ह्यूमन राइट्स (निबन्ध) माइ साइट ड्यू : एड्यू जे डोनल पेपरर्स
- सुव्रंतो शंकर बागची और अरनवदास, (2012) ह्यूमन राइट्स एण्ड थर्ड वर्ल्ड, लेक्सटन बुकम,
- शशि थरूर आर. (1999—2000) ह्यूमन राइटस यूनिवर्सल (निबन्ध) वर्ल्ड पॉलिसी जर्नल, जिल्द 16, अंक 4,
- नरेन्द्र कुमार, स्टेटस ऑफ ह्यूमन राइट्स इन राजस्थान, पैरवी

* * *

मानव अधिकार एवं लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 : विधिक अवलोकन

*डॉ0 राकेश कुमार सिंह

हाल के वर्षों में दिल्ली व अन्य राज्यों में बालकों के यौन शोषण की घटनाओं में अत्याधिक वृद्धि हुई है। हाल में ही दिल्ली की एक अदालत ने एक नाबालिग लड़की से बार–बार सामूहिक बलात्कार करने के दो दोषियों को कठोर सजा (एक अपराधी को उम्र कैद और दूसरे को 10 वर्ष की कठोर कारावास) देते हुये दिल्ली पुलिस प्रमुख से यह सुनिश्चित करने को कहा है कि बच्चों के खिलाफ यौन अपराध करने वालों के खिलाफ भविष्य में इस सम्बन्ध में बनाये गये विशेष कानून (लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012) के तहत मामला दर्ज किया जाये।[1] यह कानून 18 वर्ष से कम उम्र के बच्चों के खिलाफ लैंगिक अपराध, उत्पीड़न एवं अश्लीलता जैसे अपराधों को रोकने पर केन्द्रीत है। प्रस्तुत पेपर में इसी नये कानून के विभिन्न धाराओं पर विस्तार से चर्चा की गयी है। इस कानून के विशेषताओं का तथा इसकी खाँमियों की भी समीक्षा कुछ सुझावों के साथ की गयी है। उल्लेखनीय है कि इसी कानून में केन्द्र व राज्य सरकारों पर यह जिम्मेदारी सौंपी है कि इस कानून का समाज में व्यापक प्रचार–प्रसार किया जाये जिससे ज्यादातर लोगों को इसके प्रावधानों के सम्बन्ध में जानकारी हो सके।

इससे पहले की इस अधिनियम की चर्चा की जाये, हमारे लिए यह जानना जरूरी है कि इस अधिनियम के लागू होने के पूर्व भी भारत व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कई अन्य अधिनियम पारित किये जा चुके है जो बालकों के संरक्षण से संबंधित है, इनमें निम्न प्रमुख है :

---

*एसोशिएट प्रोफेसर, विधि विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (यू.पी.)

1. जनसत्ता, 6 जनवरी, 2013

भारत में :

1. पूर्व गर्भाधान और पूर्व प्रसव निदान तकनीक (लिंग चयन प्रतिषेध) अधिनियम, 1994 (The Pre-conception and Pre-netal diagonistic technique (Prohibition of Sex Selection) Act,1994)
2. बाल विवाह–प्रतिशेध अधिनियम, 2006 (The Prohibition of Child Marriage Act, 2006)
3. बाल अधिकार अधिनियम के संरक्षण के लिए आयोग, 2005 (The Commission for Protection of Child Right Act,2005)
4. भारतीय दण्ड संहिता, 1960 की धारायें : 299, 300, 366ए, 366बी, 367, 372, 373, 375, 377 (Indian Penal Code, 1860 : Sections 299, 300, 366A, 366B, 367, 372, 373, 375, 377)
5. अनैतिक व्यापार (निवारण) अधिनियम, 1956 (The Immoral Traffic (Prevention) Act, 1956

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर :

1. मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा (The Universal Declaration of Human Rights)
2. संयुक्त राष्ट्र की बाल अधिकारों की घोषणा, 1959 (The UN Declaration of Rights of Children, 1959)
6. बाल अधिकारों पर कन्वेंशन, 1989 (Convention on the Right of Children, 1989)

भारतीय संविधान के अन्तर्गत :

अनुच्छेद : 15 (3), 21, 23, 24, 39 (एफ), 45 अनुच्छेद 243 अनुसूचीं 11 के साथ।

लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 लोक सभा द्वारा 22 मई, 2012 को पास किया गया था जबकि इसे 10 मई, 2012 द्वारा राज्य सभा द्वारा पारित किया गया था। यह अधिनियम 19 जून, 2012 को प्रवर्तन में आया। इसका विस्तार जम्मू–कश्मीर राज्य के सिवाय सम्पूर्ण भारत पर लागू होता है।

अधिनियम का उद्देश्य : इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य लैंगिक हमला, लैंगिक उत्पीड़न और अश्लील साहित्य के अपराधों से बालकों का संरक्षण करने और ऐसे अपराधों का विचारण करने के लिए विशेष न्यायालयों की स्थापना तथा उनसे संबंधित या आनुषंगिक विषयों के लिए उपबन्ध करना है। इस अधिनियम द्वारा भारत में लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण का स्तर अब अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक का करने का प्रयत्न किया गया है।

भारत में यह अपने प्रकार का पहला विशेष अधिनियम है जो बालकों के लौंगिक अपराधों से सम्बन्धित है। वर्तमान समय में लैंगिक अपराध सामान्यतया भारतीय दण्ड संहिता, 1860 के विभिन्न धाराओं के अन्तर्गत आता है। लेकिन भारतीय दण्ड संहिता बालकों के सभी प्रकार के लैंगिक अपराधों के विरूद्ध संरक्षण प्रदान करने में असमर्थ है साथ ही महत्वपूर्ण यह है कि यह पीड़ित व्यस्कों एवं पीड़ित बालकों के बीच अन्तर नहीं करता है। उल्लेखनीय है कि इस अधिनियम के 'बालक' शब्द के अन्तर्गत लड़का एवं लड़की दोनों को ही शामिल किया गया है।

अधिनियम की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

महिला एवं बाल–विकास कल्याण विभाग, भारत सरकार द्वारा सन् 2007 में प्रकाशित एक रिपोर्ट के आकड़ों के अनुसार 53 प्रतिशत बच्चे जिनका इन्ट्रब्यू लिया गया था, किसी न किसी प्रकार के लैंगिक शोषण के शिकार थे और जो चौकाने वाले तथ्य थे वह यह कि ज्यादातर ऐसे अपराधों में अपराधी बच्चों के पारिवारिक सदस्य जैसे, घरेलू नौकर, शिक्षक और अन्य जाने–पहचाने चेहरे ही होते है। ज्यादातर 5–12 सालों के बच्चे पीड़ित है।[2] उक्त के अलावा भारत में प्रचलित दण्ड विधि अर्थात भारतीय दण्ड संहिता, 1860 के प्रावधान बच्चों के प्रति हो रहे लैगिंक शोषण को रोकने में पूर्णतया विफल रहे है साथ ही बच्चों के लिए अलग से कोई विशेष प्रावधान उक्त अधिनियम में नहीं है। इसके अतिरिक्त भारतीय दण्ड संहिता में जो लैंगिक अपराधों के प्रावधान है वे ज्यादातर लड़कियों को ध्यान में रखकर बनाये गये है, बहुत कम ही वे लड़को के लैंगिक अपराधों से संबंधित है। इसके अलावा जो बलात्कार के प्रावधान संहिता में है, वे ऐसे ही अपराधों से संबंधित है जो 'बलात्कार' की परिधि में आता हो। अतः इसमें बालकों के लैंगिक अपराधों से संबंधित प्रावधान नहीं आता है क्योंकि बलात्कार के मामलों में भारतीय दण्ड संहिता की परिधि में आने के लिए 'लैंगिक संभोग', 'इन्द्रियों का

2. महिला एवं बाल–विकास कल्याण विभाग, भारत सरकार (मई 22, 2012), http://pib.nic.in/newsite

प्रवेशन' इत्यादि तकनीकी चीजों का होना आवश्यक होता है। इसके अतिरिक्त अन्य प्रकार के लैंगिक अपराध इसमें नहीं आते हैं।

उक्त के परिपेक्ष्य में यह अत्यन्त आवश्यक हो गया था कि एक नया विधायन हो जो लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण कर सके और इसमें वे सभी लैंगिक कृत्य शामिल हो, जो प्रचलित भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत नहीं आते है।

लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 के मुख्य प्रावधान

इस अधिनियम के मुख्य प्रावधान निम्न है :

केवल बालक से सम्बन्धित प्रावधान : इस अधिनियम की मुख्य विशेषता यह है कि यह भारत में ऐसा पहला विधायन है जो केवल बालकों से सम्बन्धित मामले के सम्बन्ध में है। यह बालकों के विरूद्ध लैंगिक अपराध और उसके लिए दण्ड अश्लील प्रयोजनों के लिए बालक का उपयोग और उसके लिए दण्ड, अपराध का दुष्प्रेरण और उसको करने का प्रयत्न इत्यादि से सम्बन्धित प्रावधान करता है।

बालक के आयु का निर्धारण (Age determination): यह अधिनियम 'बालक' शब्द को स्पष्ट रूप से परिभाषित करता है। इस अधिनियम की धारा 2 (घ) के अनुसार, 'बालक' से ऐसा कोई व्यक्ति अभिप्रेत है जिसकी आयु अठारह वर्ष से कम है।'

लैंगिक अपराध (sexual offences) की परिभाषा : यह पहला अधिनियम है जिसके अन्तर्गत 'प्रवेशन लैगिक हमला,[3] गुरूतर प्रवेशन लैंगिक हमला,[4] लैंगिक हमला,[5] लैंगिक उत्पीड़न,[6] अश्लील प्रयोजनों के लिए बालक का उपयोग[7] इत्यादि को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया गया है और इसके लिए कठोर दण्ड का प्रावधान किया गया है।

अधिनियम की धारा 3 के अनुसार, 'प्रवेशन लैगिक हमला' (penetrative sexual assault) करना कहा जाता है यदि कोई व्यक्ति अपना लिंग, किसी भी सीमा तक किसी बालक की योनि, मुँह, मूत्रमार्ग या गुदा में प्रवेश करता है।

---

3. लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 का अध्याय 2 (क)
4. तत्रैव, अध्याय 2 (ख)
5. तत्रैव, अध्याय 2 (ग़)
6. तत्रैव, अध्याय 2 (ड़)
7. तत्रैव, अध्याय 3

इसी प्रकार धारा 5 के अनुसार 'गुरूतर प्रवेशन लैंगिक हमला' (aggravtaed penetrative sexual assault) करना कहा जाता है यदि कोई पुलिस अधिकारी होते हुये या कोई सशस्त्र बल या सुरक्षा बल का सदस्य होते हुये, या कोई लोक सेवक होते हुये किसी बालक पर प्रवेशन लैगिक हमला करता है।

अधिनियम की धारा 7 के अनुसार 'लैंगिक हमला' (sexual assault) करना कहा जाता है जो कोई, लैंगिक आशय से बालक की योनि, लिंग, गुदा या स्तनों को स्पर्श करता है या कराता है या लैंगिक आशय से ऐसा कोई अन्य कार्य करता है जिसमें प्रवेशन किये बिना शारीरिक संपर्क अंतर्ग्रस्त होता है।

इसी प्रकार अधिनियम की धारा 11 के अनुसार, 'लैंगिक उत्पीड़न' (sexual harassment) करना कहा जाता है, जब व्यक्ति लैंगिक आशय से :

- कोई शब्द कहता है या कोई ध्वनि या अंगविक्षेप ..... इस आशय के साथ प्रदर्शित करता है कि बालक द्वारा ऐसा शब्द या ध्वनि सुनी जाएगी, या
- किसी बालक को उसके शरीर या उसके शरीर का कोई भाग प्रदर्शित करवाता है......,
- अश्लील प्रयोजनों के लिए किसी प्ररूप या मीडिया में किसी बालक को कोई वस्तु दिखाता है, या
- बालक को या तो सीधे या इलेक्ट्रानिक, अंकीय या किसी अन्य साधनों के माध्यम से बार–बार या निरंतर पीछा करता है या देखता है या संपर्क करता है, या
- बालक के शरीर के किसी भाग या लैंगिक कृत्य में बालक के अंतर्ग्रस्त होने का, इलेक्ट्रानिक, फिल्म या अंकीय या किसी अन्य पद्धति के माध्यम से वास्तविक या गढ़े हुए चित्रण को मीड़िया के किसी रूप में उपयोग करने की धमकी देता है, या
- अश्लील प्रयोजनों के लिए किसी बालक को प्रलोभन देता है या उसके लिए परितोशण देता है।

अपराध (Offence)	**दण्ड (Punishment)**
प्रवेशन लैंगिक हमला	7 वर्ष से आजीवन कारावास तक और जुर्माना (धारा 4)
गुरूतर लैंगिक हमला	10 वर्ष कठोर कारावास से आजीवन कारावास तक और जुर्माना (धारा 6)

लैंगिक हमला	3 से 5 वर्ष तक के कारावास और जुर्माना (धारा 8)
गुरूतर लैंगिक हमला	5 से 7 वर्ष तक के कारावास और जुर्माना (धारा 10)
लैंगिक उत्पीड़न	3 वर्ष तक का कारावास और जुर्माना (धारा 12)

अश्लील प्रयोजनों के लिए बालक का उपयोग एवं दण्ड

(Using child for pornographic purposes and punishment)

- अश्लील प्रयोजनों के लिए बालक का उपयोग : 5 वर्ष तक के कारावास और जुर्माना (धारा 14.1)

  दूसरे या पश्चातवर्ती दोषसिद्धि की दशा में : 7 वर्ष तक के कारावास और जुर्माना (धारा 14.1)
- अश्लील प्रयोजनों के लिए बालक का उपयोग धारा 3 में निर्दिष्ट किसी अपराध को करने में : 10 वर्ष कारावास से आजीवन कारावास तक और जुर्माना (धारा 14.2)
- अश्लील प्रयोजनों के लिए बालक का उपयोग धारा 5 में निर्दिष्ट किसी अपराध को करने में : कठोर आजीवन कारावास और जुर्माना (धारा 14.3)
- अश्लील प्रयोजनों के लिए बालक का उपयोग धारा 7 में निर्दिष्ट किसी अपराध को करने में : 6 वर्ष से 8 वर्ष का कारावास और जुर्माना (धारा 14.4)
- अश्लील प्रयोजनों के लिए बालक का उपयोग धारा 9 में निर्दिष्ट किसी अपराध को करने में : 8 वर्ष से 10 वर्ष का कारावास और जुर्माना (धारा 14.5)
- वाणिज्यिक प्रयोजनों के लिए बालक को सम्मिलित करते हुए किसी अश्लील सामग्री का भंडारकरण : 3 वर्ष तक का कारावास और जुर्माना या दोनों (धारा 15)।

उपरोक्त दण्ड के अतिरिक्त यह भी व्यवस्था की गयी है कि यदि कोई इस अधिनियम के अधीन किसी अपराध का दुष्प्रेरण करता है, यदि दुष्प्रेरित कार्य दुष्प्रेरण के परिणामस्वरूप किया जाता है तो वह उस दंड से दंडित किया जायेगा जो उस अपराध के लिए उपबंधित है।[8] इतना ही नहीं इस अधिनियम के अन्तर्गत यह भी व्यवस्था है कि

8. तत्रैव, धारा 17

यदि कोई इस अधिनियम के अन्तर्गत किसी अपराध को करने का प्रयत्न करेगा या किसी अपराध को करवाएगा वह अपराध के लिए उपबंधित किसी भाँति के ऐसे कारावास से, जिसकी अवधि आजीवन कारावास के आधे तक की या उस अपराध के लिए उपबंधित कारावास से जिसकी अवधि दीर्घतम अवधि के आधे तक की हो सकेगी या जुर्माने या दोनों से दंडनीय होगा।[9]

मामलों की रिपोर्ट करने के लिए प्रक्रिया

कोई व्यक्ति (जिसके अन्तर्गत बालक भी है) जिसकों यह आंशका है कि इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध किये जाने की संभावना है या यह जानकारी रखता है कि ऐसा कोई अपराध किया गया है, वह इसकी जानकारी विशेष किशोर पुलिस यूनिट या स्थानीय पुलिस को उपलब्ध कराएगा।[10] ऐसी रिपोर्ट में एक प्रविष्ट संख्या अंकित होगी और लेखबद्ध की जायेगी तथा यह सूचना देने वाले को पढ़कर सुनाई जाएगी और इसे पुलिस यूनिट द्वारा रखी जाने वाली पुस्तिका में प्रविष्ट की जाएगी।[11] ऐसी रिपोर्ट सरल भाषा में अभिलिखित किया जायेगा जिससे बालक अभिलिखित की जा रही अंतर्वस्तुओं को समझ सके।[12] जहाँ विशेष किशोर पुलिस यूनिट या स्थानीय पुलिस को यह समाधान हो जाता है कि उस बालक को, जिसके विरूद्ध कोई अपराध किया गया है, देखरेख और संरक्षण की आवश्यकता है तब रिपोर्ट के चौबीस घंटे के भीतर कारणों को लेखबद्ध करने के पश्चात उसको यथाविहित ऐसी देखरेख और संरक्षण में (जिसके अन्तर्गत बालक को संरक्षण गृह या निकटतम अस्पताल में भर्ती किया जाना भी है) रखने की तुरन्त व्यवस्था करेगी।[13] विशेष किशोर पुलिस यूनिट या स्थानीय पुलिस अनावश्यक विलंब के बिना किन्तु चौबीस घंटे की अवधि के भीतर मामलें को बालक कल्याण समिति और विशेष न्यायालय या जहाँ विशेष न्यायालय परिभाषित नहीं है वहा सेशन न्यायालय को रिपोर्ट करेगी, जिसके अन्तर्गत बालक की देखभाल और संरक्षण के लिए आवश्यकता और इस संबंध में किए गए उपाय भी है।[14]

उल्लेखनीय है कि यदि कोई व्यक्ति जो धारा 19 (1) या धारा 20 के अधीन किसी अपराध के किए जाने की रिपोर्ट करने में विफल रहेगा या जो धारा 19 (2) के अधीन

9. तत्रैव, धारा 18
10. तत्रैव, धारा 19 (1)
11. तत्रैव, धारा 19 (2)
12. तत्रैव, धारा 19 (3)
13. तत्रैव, धारा 19 (5)
14. तत्रैव, धारा 19 (6)

ऐसे अपराध को अभिलिखित करने में विफल करेगा, वह किसी भी भाँति के कारावास से, जो 6 माह तक हो सकेगा या जुर्माने से या दोनों से दंडित किया जायेगा।[15]

इस अधिनियम के प्रावधानों का दुरूपयोग न हो इसके लिए व्यवस्था अधिनियम की धारा 22 में की गयी है जिसके अन्तर्गत यह कहा गया है कि कोई व्यक्ति जो धारा 3, धारा 5, धारा 7 व धारा 9 के अधीन किए गए किसी अपराध के संबंध में किसी व्यक्ति के विरूद्ध उसको अपमानित करने, उद्‌दापित करने या धमकाने या उसकी मानहानि करने के एकमात्र आशय से मिथ्या परिवाद करेगा या मिथ्या सूचना उपलब्ध कराएगा, वह ऐसे कारावास से जो छह मास तक का हो सकेगा या जुर्माने या दोनों से, दंडित किया जाएगा।

बालक के कथनों को अभिलिखित करने के लिए प्रक्रिया

बालक के कथन को बालक के निवास स्थान पर जहाँ पर वह साधारणतया निवास करता है, उप–निरीक्षक की पंक्ति से अन्यून किसी महिला पुलिस अधिकारी द्वारा अभिलिखित किया जाएगा।[16] कथन को अभिलिखित किए जाते समय बालक के सामने पुलिस वर्दी में नहीं होगा। किसी बालक को किसी भी कारण से रात्रि में किसी भी पुलिस स्टेशन में निरूद्ध नहीं किया जायेगा।[17] साथ ही पुलिस अधिकारी, अन्वेषण करते समय यह सुनिश्चित करेगा कि बालक किसी भी समय पर अभियुक्त के किसी भी प्रकार से संपर्क में न आए।

मजिस्ट्रेट या पुलिस अधिकारी, बालक के माता–पिता या किसी अन्य व्यक्ति की, जिसमें बालक का भरोसा या विश्वास है, उपस्थिति में बालक द्वारा बोले गये अनुसार कथन अभिलिखित करेगा।[18] जहाँ तक संभव हो, वहाँ, मजिस्ट्रेट या पुलिस अधिकारी यह सुनिश्चित करेगा कि बालक का कथन श्रव्य–दृश्य इलेक्ट्रानिक माध्यमों से भी अभिलिखित किया जाए।[19]

उस बालक की चिकित्सीय परीक्षा, जिसके संबंध में इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध किया गया है, इस बात के होते हुए भी कि इस अधिनियम के अधीन अपराधों

---

15. तत्रैव, धारा 21 (1)
16. तत्रैव, धारा 24 (1)
17. तत्रैव, धारा 24 (4)
18. तत्रैव, धारा 26 (1)
19. तत्रैव, धारा 26 (4)

के लिए कोई प्रथम सूचना रिपोर्ट या परिवाद रजिस्ट्रीकृत नहीं किया गया है, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 164–क के अनुसार की जायेगी।[20] यदि पीड़िता कोई बालिका है तो चिकित्सीय परीक्षा किसी महिला डॉक्टर द्वारा की जायेगी। चिकित्सीय परीक्षा बालक के माता–पिता या किसी अन्य व्यक्ति की, जिसमें बालक का भरोसा या विश्वास है, की उपस्थिति में ही की जायेगी।[21]

विशेष न्यायालयों की स्थापना[22] और विशेष प्रक्रिया[23]

इस अधिनियम के अन्तर्गत कारित अपराधों के शीघ्र निस्तारण हेतु विशेष न्यायालयों की स्थापना और विशेष प्रक्रिया का प्रावधान किया गया है तथा इसे व्यापक अधिकार प्रदान किया गया है। जिसके अन्तर्गत विशेष न्यायालय, अभियुक्त को विचारण के लिए उसको सुपुर्द किए बिना किसी अपराध का संज्ञान ऐसे अपराध का गठन करने वाले तथ्यों का परिवाद प्राप्त होने पर या ऐसे तथ्यों की पुलिस रिपोर्ट पर ले सकेगा।[24] इस अधिनियम के अन्तर्गत वादों का निपटारा अतिशीघ्र किया जाये इसके लिए अधिनियम में ही यह प्रावधान किया गया है कि साल भर के भीतर वादों का निपटारा किया जायेगा।[25]

उक्त के अतिरिक्त इस अधिनियम के अन्तर्गत विचारण के दौरान न्यायालय, बालक के परिवार के किसी सदस्य, संरक्षक या मित्र या नातेदार की, जिसमें बालक का भरोसा या विश्वास है, न्यायालय में उसकी उपस्थिति अनुज्ञात करके बालक के लिए मित्रतापूर्ण वातावरण (child friendly) सृजित करेगा।[26]

न्यायालय द्वारा बच्चों की पहचान को मीड़िया एवं अन्य प्रचार–माध्यमों से दूर रखने का प्रावधान है। इसके अन्तर्गत विशेष न्यायालय यह सुनिश्चित करेगा कि अन्वेषण या विचारण के दौरान किसी भी समय बालक की पहचान प्रकट नहीं की जाए।[27] साथ ही बालक को अनावश्यक कष्ट न हो इसलिए विशेष न्यायालय यह सुनिश्चित करेगा कि बालक को न्यायालय में साक्ष्य देने के लिए बार–बार न बुलाया

20. तत्रैव, धारा 27 (1)
21. तत्रैव, धारा 27 (3)
22. तत्रैव, अध्याय 7
23. तत्रैव, अध्याय 8
24. तत्रैव, धारा 33 (1)
25. तत्रैव, धारा 35 (2)
26. तत्रैव, धारा 33 (4)
27. तत्रैव, धारा 33(7)

जाये।[28] विशेष न्यायालय, विचारण के दौरान आक्रामक या बालक के चरित्र हनन संबंधी प्रश्न पूछने के लिए अनुज्ञात नहीं करेगा और यह सुनिश्चित करेगा कि सभी समय बालक की गरिमा बनाए रखी जाये।[29]

विशेष न्यायालय, मामलों का विचारण बंद कमरे में और बालक के माता–पिता या किसी ऐसे अन्य व्यक्ति की उपस्थिति में करेगा, जिसमें बालक का विश्वास या भरोसा है।[30]

अभी हाल ही में बाम्बे हाई कोर्ट ने आदेश दिया है कि इस अधिनियम के अन्तर्गत पकड़े गये अपराधी को इस अधिनियम के अन्तर्गत गठित विशेष न्यायालय में ही पेश किया जाना चाहिए।[31] इसी सम्बन्ध में केन्द्र सरकार के गृह मंत्रालय ने भी सभी राज्यों को निर्देश दिया है कि इस अधिनियम के अन्तर्गत वादों के त्वरित निपटारे हेतु विशेष न्यायालयों का अतिशीघ्र गठन करे।[32]

बालक द्वारा अपराध किये जाने और विशेष न्यायालय द्वारा आयु का अवधारण करनाः

इस अधिनियम के अन्तर्गत जहाँ कोई अपराध किसी बालक द्वारा किया जाता है वहाँ ऐसे बालक पर किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2000 के उपबन्धों के अधीन कार्यवाही की जाएगी। यदि विशेष न्यायालय के समक्ष किसी कार्यवाही में यदि इस संबंध में कोई प्रश्न उठता है कि कोई व्यक्ति बालक है या नहीं तो ऐसे प्रश्न का अवधारण विशेष न्यायालय द्वारा ऐसे व्यक्ति की आयु के बारे में स्वयं का समाधान करने के पश्चात किया जाएगा और वह ऐसे अवधारण के लिए उसके कारणों को लेखबद्ध करेंगा।[33]

इस अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्र व राज्य सरकारों के ऊपर यह कर्त्तव्य आरोपित किया गया है कि साधारण जनता, बालकों के साथ ही उनके माता–पिता और संरक्षकों को इस अधिनियम के उपबन्धों के प्रति जागरूक बनाने के लिए इस अधिनियम के

---

28. तत्रैव, धारा 33(5)
29. तत्रैव, धारा 33(6)
30. तत्रैव, धारा 37
31. जी. न्यूज, जुलाई 7, 2013
32. डेकन हेराल्ड, जून 20, 2013
33. लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 की धारा 33 (1,2)

उपबन्धों का मीडिया, जिसके अन्तर्गत टेलीविजन, रेडियों और प्रिंट मीडिया भी सम्मिलित है, के माध्यम से नियमित अंतरालों पर व्यापक प्रचार किया जाता है। साथ ही केन्द्रीय सरकार एवं राज्य सरकारों के अधिकारियों और अन्य संबद्ध व्यक्तियों (जिसके अन्तर्गत पुलिस अधिकारी भी है) के अधिनियम के उपबन्धों के कार्यान्वयन से संबंधित विषयों पर आवधिक प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है।[34]

उपरोक्त जागरूकता के अतिरिक्त यह भी व्यवस्था इस अधिनियम के अन्तर्गत की गयी है कि बालक अधिकार संरक्षण आयोग अधिनियम, 2005 की धारा 3 के अधीन गठित बालक अधिकार संरक्षण के लिए राष्ट्रीय आयोग या बालक अधिकार संरक्षण के लिए राज्य आयोग, इस अधिनियम के उपबन्धों के क्रियान्वयन की मानीटरी ऐसी रीति से, जो विहित की जाए, करेंगे।[35]

अधिनियम की खामियाँ

सन् 2012 में संदीप पासवान नाम के व्यक्ति पर एक अवयस्क लड़की के बलात्कार एवं अपहरण के लिए विचारण हुआ। यह वही अवयस्क लड़की है जो उसकी विधिपूर्वक पत्नी है और जिसके साथ वह सालों से रह रहा था। लेकिन लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 के कारण वह अपनी ही पत्नी के बलात्कार एवं अपहरण का मुकदमा झेल रहा है। यह केवल एक ही उदाहरण नहीं है जहाँ ऐसा हुआ है बल्कि इस अधिनियम के कई ऐसे प्रावधान है जो बदलते हुये समाज के उपयुक्त नहीं है।

इसे हम लोग इस तरह से भी आसानी से समझ सकते है कि यदि हमारा एक 19 साल का लड़का है और उसकी कोई 17 साल की महिला मित्र (girlfriend) है और दोनों आपस में लैंगिक सम्बन्ध बनाते है, जिसकी पूरी संभावना है। ऐसी स्थिति में हमारा लड़का 7 साल या इससे ज्यादा के कारावास या आजीवन कारावास की सजा मिलने की संभावना प्रबल हो जाती है।

बालक की परिभाषा : इस अधिनियम की धारा 2 (घ) में बालक को परिभाषित किया गया है जिसके अन्तर्गत 'बालक' से ऐसा कोई व्यक्ति अभिप्रेत है जिसकी आयु अठारह वर्ष से कम है। ऐसे बालक जिसकी आयु 18 वर्ष से कम है, कि सहमति विधि की दृष्टि में कोई महत्व नहीं रखती है। अतः ऐसी व्यक्ति के साथ उसकी सहमति से भी किया गया कोई भी लैगिक कृत्य इस अधिनियम के अन्तर्गत अपराध शब्द के

34. तत्रैव, धारा 43
35. तत्रैव, धारा 44 (1)

अन्तर्गत आता है। उल्लेखनीय है कि भारत में बदलते सामाजिक परिवेश में कम उम्र के लड़के एवं लड़कियों के बीच आपसी समबन्धों एवं इच्छापूर्व संभोग का प्रचलन चल पड़ा है ऐसी स्थिति में इस प्रकार का प्रावधान इनके उत्पीड़न का कारण बन सकता है।

दुनिया के अनेकों देशों में कम उम्र के लड़के एवं लड़कियों के बीच आपसी सहमति के आधार पर लैगिंक सम्बन्ध बनाने की उम्र काफी कम अर्थात 16 या इससे कम है। ऐसी स्थिति में भारत में भी कम उम्र के बच्चे के अधिकारों के मद्देनजर इसकी उम्र सीमा 16 साल तय किये जाने की आवश्यकता है।

कठोर प्रावधान : इस अधिनियम में कठोर प्रावधानों की व्यवस्था है। शायद इसके पीछे मंशा यह हो कि इससे इस प्रकार के कृत्यों को रोकने में मदद मिलेगी। लेकिन इतिहास गवाह है कि मात्र कठोर दण्ड के प्रावधानों से अपराधों पर काबू नहीं पाया जा सकता है।

पूरे समाज पर दायित्व : इस अधिनियम के अन्तर्गत पूरे समाज पर यह जिम्मेदारी डाली गयी है कि 'यदि कोई कोई व्यक्ति (जिसके अन्तर्गत बालक भी है) जिसकों यह आंशका है कि इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध किये जाने की संभावना है या यह जानकारी रखता है कि ऐसा कोई अपराध किया गया है', उस संबंधित व्यक्ति पर जानकारी उपलब्ध कराने का दायित्व है, यदि ऐसा नहीं किया गया है तो कारावास की सजा का प्रावधान है। जैसे, यदि शिक्षिका को मालूम है कि उसके क्लास में पढ़ने वाली एक छात्रा गर्भवती है और वह इसकी जानकारी अधिनियम में वर्णित उचित अधिकारी को उपलब्ध नहीं कराती है तो शिक्षिका छह माह के कारावास तक की सजा की हकदार हो सकती है।

संरक्षित सूचनाएँ (Privileged Information) : यह काफी अनिश्चित प्रावधान है क्योंकि व्यवहार में कई सूचनाएँ संरक्षित सूचनाएँ (Privileged Information) की संज्ञा में आती है जो विभिन्न अधिनियमों के अन्तर्गत संरक्षित है। जैसे, मुविक्कल द्वारा वकील को दी गयी सूचनाएँ, या फिर इसाईयों में पादरी के सम्मुख अपराध को कबूलने की क्रिया, इन सब प्रकार की सूचनाएँ यदि नहीं दी जाती है तो क्या वे इस अधिनियम के अन्तर्गत दण्ड के भागी होंगे! इतना ही नहीं, यदि बालक ही इस अधिनियम के अन्तर्गत किसी कृत्य का अपराधी है, तो उसके लिए भी आवश्यक है कि वह इसकी सूचना उपलब्ध कराये, जो व्यवहारतः शायद संभव न हो क्योंकि बालक दण्ड या अन्य दूसरे कारणों से इसकी सूचना नहीं देना चाहेगा।

बालक को छूट : इस अधिनियम के अन्तर्गत ऐसा व्यक्ति जो 18 वर्ष से कम है वह यदि इस अधिनियम के अन्तर्गत गलत या अपमानित या उद्दापित करने के लिए भी सूचनाएँ देता है तो भी वह सजा का भागी नहीं होगा भले ही उसकी सूचना से किसी की जिन्दगी या कैरियर तबाह हो जाये। इस प्रावधान का लाभ मेच्योर बालक उठा कर किसी को भी परेशानी में डाल सकते है।

मियाद की अवधि : इस अधिनियम के अन्तर्गत अपराध रिपोर्ट के सम्बन्ध में कोई मियाद की अवधि (Limitation Period) नहीं बतायी गयी है। क्या कोई अपराध घटित होने के 20 साल या 50 साल बाद इसकी रिपोर्ट दर्ज करायी जा सकती है!

सूचना देने वाले की संरक्षणता : इस अधिनियम की यह भी कमी है कि इसमें अपराध के रिपोर्ट की जिम्मेदारी तो सभी व्यक्तियों पर लाद दी गयी है लेकिन ऐसे व्यक्ति जो ऐसे अपराधों को दर्ज कराते है उनके संरक्षण के सम्बन्ध में कोई व्यवस्था नहीं की गयी है। क्योंकि व्यवहार में यह देखने को आता है कि जो अपराध को दर्ज कराता है अपराधी या उसके परिवार से उसे काफी खतरा रहता है। अतः दायित्व बिना किसी संरक्षण के काफी खतरनाक हो सकती है।

लिंग–भेग प्रावधान : इस अधिनियम की सबसे बड़ी कमी यह है कि इस अधिनियम के अध्याय दो, धारा 3 (अ,ब,स,द) में, 'प्रवेशन लैगिक हमला' (Penetrative Sexual Assault) करना कहा जाता है यदि 'वह'(He)....., यहाँ शब्द 'वह' से दृष्टिगत है कि वह पुरूष (Male), होना चाहिए। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि कोई स्त्री किसी बालक के गुदा या विजाइना (Anus or Vagina), में कोई वस्तु को प्रवेश करती है, या बालक के लिंग, योनि, गुदा या मूत्रमार्ग पर अपना मुँह लगाती है, या बालक का डिजीटल रेप करती है तो स्त्री का यह कृत्य इस अधिनियम के अन्तर्गत अपराध नहीं है जबकि यहीं कृत्य यदि कोई पुरूष करता है तो वह इस अधिनियम के अन्तर्गत आजीवन कारावास की सजा तक से दंडित होगा। दूसरी तरफ बदलते सामाजिक परिवेश में यह नहीं कहा जा सकता है कि लैंगिक अपराध सिर्फ पुरूषों द्वारा ही किये जा सकते है। नये ऑकड़ों के अनुसार आजकल समाज में स्त्रियों द्वारा लैंगिक अपराध के मामलें बढ़ रहे है। इस अधिनियम की मंशा यह है कि इसमें स्त्री को अलग रखा जाये और सिर्फ पुरूष को ही इस अधिनियम के दायरे में लाया जाये जो कदाचित भारतीय संविधान के मूल भावना अर्थात समानता के नियम का उल्लंघन है।

जम्मू–कश्मीर को छूट : इस अधिनियम की धारा 1(2) के अनुसार, 'इसका विस्तार जम्मू–कश्मीर राज्य के सिवाय संपूर्ण भारत पर है।' यह धारा भी समझ से परे है। क्यों

जम्मू–कश्मीर के बालक को ऐसे अधिनियम से रोका गया है! क्या इस राज्य के बालकों को लैंगिक अपराधों से संरक्षणता प्राप्त करने का अधिकार नहीं हैं! इस ओर संसद को तुरन्त ध्यान देने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष (Conclusion)

उपरोक्त विवेचना के आधार पर कहा जा सकता है कि लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 में कुछ कमियों के बावजूद भी इस अधिनियम की सार्थकता से इन्कार नहीं किया जा सकता है। इस अधिनियम के माध्यम से भारत में पहली बार 'प्रवेशन लैगिक हमला, गुरूतर प्रवेशन लैंगिक हमला, लैंगिक हमला, लैंगिक उत्पीड़न, अश्लील प्रयोजनों के लिए बालक का उपयोग इत्यादि को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया गया है और इसके लिए कठोर दण्ड का प्रावधान किया गया है। साथ ही स्पष्ट रूप से ऐसी प्रक्रियाओं का भी उल्लेख किया गया है जिसके अन्तर्गत ऐसा कोई अपराध होता है या उसकी जानकारी होती है। यह अधिनियम उन संस्थाओं व व्यक्तियों के लिए वरदान है जो बालकों के संरक्षण और उत्थान के लिए कार्य कर रहे है। अब उन्हें यह यकीन हो गया है कि यदि किसी बालक के विरूद्ध कोई लैंगिक अपराध होता है तो कैसे अपराधी को कठोर सजा दी जा सकती है! अन्त में यह कहा जा सकता है कि यदि इस अधिनियम का सच्चे अर्थों में क्रियान्वयन सुनिश्चित किया जाये तो भविष्य में बालकों के विरूद्ध होने वाले लैंगिक अपराधों को पूरी तरह से काबू किया जा सकता है।

* * *

विकास : एक मानव अधिकार

*पूनम कुमारी

विकास को सामाजिक व सांस्कृतिक मानवाधिकारों की श्रेणी में शामिल किया गया है। संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा 4 दिसम्बर 1986 को "विकास के अधिकार पर सार्वभौमिक अभिघोषणा" (यूनिवर्सल डिक्लेरेशन ऑन राइट टू डवलपमैंट) को स्वीकार किया गया जिसमें 'विकास' को एक मानवाधिकार घोषित किया गया।[1] मानवाधिकार का विचार उतना ही पुराना है जितनी मानव सभ्यता। प्रत्येक समाज का संचालन कुछ नैतिक मापदंडों पर होता है। समाज की निरंतरता बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि इन नैतिक मूल्यों का पालन किया जाए तथा यदि कोई व्यक्ति इनका पालन नहीं करता है तो नियमानुसार दंड दिया जाए। सामाजिक जीवन की वे दशाएं जो मानव एवं कानून सम्मत कार्यों को संपादित करने की पूर्ण स्वतंत्रता दें, मानवाधिकार कहलाती हैं। मानवाधिकारों की अवधारणा कहती है कि प्रत्येक व्यक्ति का यह प्राकृतिक अधिकार है कि उसे सम्मानपूर्ण और गरिमामय जीवन जीने का अवसर प्रदान किया जाए। इस प्रकार मानव अधिकार व्यक्ति के गरिमामय जीवन के लिए आवश्यक हैं। ये अधिकार व्यक्ति के पर्याप्त विकास और खुशहाली के लिए भी जरूरी हैं। मानवाधिकारों की सर्वव्यापी व्यवस्था का उद्देश्य सभी समाजों में व्यक्ति के सम्मानपूर्ण जीवन के लिए परिस्थितियों का पुनर्निर्माण और पुनरीक्षण करना है। मानवाधिकार प्रत्येक व्यक्ति को मानवोचित गुण होने के कारण प्राप्त हो जाते हैं तथा ये किसी भी प्रकार के भेदभाव के बिना प्रत्येक व्यक्ति को विकास एवं न्यूनतम जीवन स्तर की गारंटी देते हैं।

मानवाधिकार की प्रथम वैश्विक अभिव्यक्ति, द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के तुरंत बाद सन् 1948 में संयुक्त राष्ट्र महासभा में अंगीकृत 'सार्वभौमिक मानवाधिकार घोषणा—पत्र'

---

*रिचर्स स्कॉलर, लोक प्रशासन विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।

1. संयुक्त राष्ट्र महासभा संकल्प 41/128, "विकास के अधिकार पर सार्वभौमिक अभिघोषणा", न्यूयोर्क, 4 दिसम्बर 1986।

(यूनिवर्सल डिक्लेरेशन ऑफ ह्यूमन राइट्स) के रूप में हुई थी। इस घोषणा–पत्र में यह स्वीकार किया गया है कि कुछ अधिकार मनुष्य को जन्म से ही प्राप्त होते हैं। विश्व में न्याय और शांति तभी स्थापित हो सकती है, जब सभी लोगों की मानवीय गरिमा का आदर किया जाए। उसके प्रति अनादर से ही मानव जाति की अंतरात्मा को चोट पहुँचती है। घोषणा–पत्र में भाषण व विश्वास की स्वतंत्रता तथा दुःख और अभाव से मुक्ति को लोगों की सर्वोच्च अभिलाषा के रूप में मान्यता दी गई है। घोषणा–पत्र में 30 अनुच्छेद हैं जिनका विस्तार बाद में हुई अंतरराष्ट्रीय संधियों, क्षेत्रीय मानवाधिकार व्यवस्था, राष्ट्रीय संविधानों और कानूनों में हुआ है। सार्वभौमिक मानवाधिकार विधेयक, अंतरराष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकार संधि और अंतरराष्ट्रीय नागरिक एवं राजनैतिक अधिकार संधि और उसके दो समझौतों ने सन 1976 में अंतरराष्ट्रीय कानून का रूप ले लिया है। तदुपरांत वर्ष 1993 में वियना घोषणा–पत्र और कार्ययोजना को अपनाया गया। इस घोषणा–पत्र में लोकतंत्र, आर्थिक विकास और मानवाधिकारों की परस्पर निर्भरता को स्थापित किया गया, अधिकारों के अविभाज्य और परस्पर संबंधित होने की अवधारणा को जन्म दिया गया और संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार उच्चायुक्त के पद के सृजन का मार्ग प्रशस्त किया गया। वियना घोषणा–पत्र पर हस्ताक्षर करने वाले देशों में भारत भी शामिल है।[2] अपने आज के बेहतर स्वरूप तक पहुँचने में मानवाधिकारों ने लम्बी विकास यात्रा तय की है। इस लेख में विकास को एक मानवाधिकार के रूप में विश्लेषित करने के साथ–साथ विकास का अभिप्राय, विकास की अवधारणा के विभिन्न आयाम तथा इसके प्रमुख प्रचलित प्रतिरूपों तथा विकल्पों का विवरण भी दिया गया है। इसमें विकास के वर्तमान में प्रचलित मॉडलों के सकारात्मक व नकारात्मक आयामों को भी विश्लेषित किया गया है। इसके अतिरिक्त विकास के उद्देश्यों को जानने तथा संतुलित, समग्र एवं सार्वभौमिक विकास की प्राप्ति के लिए जरूरी उपायों एवं सुझावों को मानवाधिकारों के संदर्भ में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

विकास की अवधारणा

विकास एक निरन्तर गतिशील, जटिल एवं बहुआयामी संकल्पना है। 'विकास' को आर्थिक विकास, सामाजिक विकास, राजनीतिक विकास, सांस्कृतिक विकास, मानव विकास एवं तकनीकी विकास आदि अनेक रूपों में समझने का प्रयास किया गया है। आर्थिक क्षेत्र में विकास से तात्पर्य आर्थिक संवृद्धि, उत्पादन व जीवन स्तर में वृद्धि,

2. भारत में मानवाधिकार संरक्षण, योजना (हिंदी)

अर्थव्यवस्था का प्राथमिक क्षेत्र से द्वितीयक या तृतीयक क्षेत्रों में रूपान्तरण और अर्थव्यवस्था की उच्च विकास दर से है, तो सामाजिक क्षेत्र में इसका तात्पर्य समाज में शिक्षा, साक्षरता, अधिकार बोध, जीवन की सुविधाओं और गुणवता में वृद्धि है, जिसमें पोषण, स्वास्थ्य, सफाई व चिकित्सा जैसी सुविधाओं की उपलब्धता एवं उच्च जीवन प्रत्याशा व निम्न मृत्यु दर जैसे संकेतक शामिल हैं। राजनीतिक दृष्टि से बढ़ती जनसहभागिता, विकेन्द्रीकरण, मानव–अधिकार संरक्षण एवं नीति निर्माण में स्थानीय समुदायों की भागीदारी विकास के अंतर्गत आते हैं। तकनीकी दृष्टि से समाज में नई तकनीकों का बढ़ना जैसे सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का अत्यधिक प्रचलन ही विकास माना जाता है। इन सभी का सम्मिलित परिणाम ही विकास को एक मानवाधिकार के रूप में स्थापित करता है।

स्पष्ट है कि विकास के अनेक पक्ष एवं क्षेत्र हैं। ऑक्सफोर्ड शब्दकोश ने विकास को 'उच्चतर, पूर्णतर और प्रौढ़ स्थिति की ओर बढ़ना बताया है। एडवर्ड वीडनर के शब्दों में, "विकास गतिशील है, जो सदैव चलता रहता है। विकास मन की स्थिति, प्रवृत्ति और एक दशा है, जो एक निश्चित लक्ष्य के बजाय एक विशिष्ट दिशा में परिवर्तन की गति है।"[3] एफ. डब्ल्यू. रिग्ज ने विकास को विवर्तन के उभरते स्तर द्वारा सम्भाव्य सामाजिक प्रणालियों की बढ़ती स्वायत्तता की प्रक्रिया के रूप में माना है। जनतांत्रिक स्वरूप में विकास का अर्थ समाज के अन्तिम व्यक्ति का कल्याण है।[4] पर पिछले कुछ दशकों में विकास का अर्थ व्यापक हुआ है। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यू. एन. डी. पी.) की परिभाषा के अनुसार "दीर्घ तथा स्वस्थ जीवन, ज्ञानवान होना, एक संतोषजनक जीवन स्तर के लिए उपलब्ध पर्याप्त साधन तथा सामाजिक जीवन में भागीदारी की योग्यता ही विकास है।" सार रूप में सक्रिय प्रयत्नों, परिश्रम एवं बाह्य संपर्क से उत्पन्न वे अच्छे परिवर्तन जो मानव की भौतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं वैचारिक उन्नति द्वारा जीवन स्तर को ऊँचा उठाने में सहायक होते हैं, विकास कहे जाते हैं।

विकास एक मानवाधिकार

संयुक्त राष्ट्र द्वारा "विकास के अधिकार पर सार्वभौमिक अभिघोषणा 1986" में 'विकास' को एक मानवाधिकार घोषित किया गया है। विकास की अवधारणा को संयुक्त राष्ट्र

---

3. एडवर्ड वीडनर, डवलपमेंट एडमिनिस्ट्रेशनः ए न्यू फोकस ऑफ रिसर्च, फेरल हेडी एवं सिविल स्टोक्स (संपादित) पेपर्स ऑन कम्पेरेटिव एडमिनिस्ट्रेशन, 1962, पृष्ठ–99 ।

4. फ्रेड डब्ल्यू रिग्ज्, डवलपमेंट एडमिनिस्ट्रेशन इन एशिया, 1970, पृष्ठ–72 ।

5. संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम द्वारा जारी मानव विकास रिर्पोट, 2013 ।

चार्टर के अनुच्छेद 55 में शामिल किया गया है जिसका शीर्षक है "उच्च जीवन स्तर, पूर्ण रोजगार, आर्थिक एवं सामाजिक प्रगति की दशाएं तथा विकास"। विकास के अधिकार पर सार्वभौमिक अभिघोषणा 1986 में कुल 10 अनुच्छेद शामिल किए गए हैं। अतः 1990 के बाद विश्व में आर्थिक विकास सूचकांकों से अधिक महत्व मानवीय विकास सूचकांकों को दिया जाने लगा है। प्रति वर्ष मानव विकास रिपोर्ट द्वारा विभिन्न देशों में मानवीय विकास की स्थिति का लेखा—जोखा प्रस्तुत किया जाता है जो विकास की बदलती अवधारणा को व्यक्त करता है। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम यानि यूएनडीपी की वर्ष 2013 की मानव विकास रिर्पोट "दक्षिण का उदय : वैविध्य विश्व में मानव संवृद्धि" शीर्षक से जारी की गई है। इस रिर्पोट में 187 देशों के मानव विकास सूचकांको को दर्शाया गया है। इस सूचकांक में नार्वे प्रथम स्थान पर, भारत 136वें स्थान पर तथा नाइजर सबसे निचले पायदान पर है।[5] विकास की इस नई अवधारणा में मानव अधिकारों व मानव विकास को एकीकृत करने का प्रयास किया जा रहा है। विकास के अधिकार में कई अन्य अधिकारों जैसे भोजन (खाद्य सुरक्षा) का अधिकार, शिक्षा का अधिकार, स्वास्थ्य का अधिकार, आवास का अधिकार, स्वच्छ पेयजल का अधिकार, स्वच्छ पर्यावरण का अधिकार, आजीविका का अधिकार, अच्छे अभिशासन का अधिकार, भ्रष्टाचार मुक्त प्रशासन का अधिकार, महिलाओं, बच्चों, अल्पसंख्यकों व जनजातियों के अधिकार तथा सूचना का अधिकार इत्यादि को शामिल माना जा रहा है। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा विकास के अधिकार पर सार्वभौमिक अभिघोषणा के अनुच्छेद 2(3) में 'विकास के अधिकार' को परिभाषित करते हुए रेखांकित किया है कि "लोगों की विकास में सक्रिय, मुक्त व अर्थपूर्ण भागीदारी होनी चाहिए तथा विकास के लाभों का उपयुक्त आवंटन होना चहिए।"[6] फलतः वर्तमान समय में विकास की अवधारणा अति व्यापक हो रही है तथा 'लोगों के लिए विकास' के स्थान पर 'लोगों के साथ विकास' पर बल दिया जा रहा है। प्रौद्यागिकीय उन्नयन को विकास का वाहक बनाने के लिए विश्व बैंक ने एक नया कार्यक्रम "गरीबों की आवाज (2002)" शुरू किया है। अपनी रिपोर्ट "रैजिंग वोइसेजः सैटेलाइट, इंटरनेट एण्ड डिस्ट्रीब्यूटिव डिस्कोर्स" में विश्व बैंक ने तकनीकी परिवर्तनों को विकास का वाहक बनाने पर बल दिया है। इस रिपोर्ट में विश्व के विभिन्न भागों में रहने वाले गरीबों की विकास कार्यक्रमों के प्रति प्रतिक्रियाओं व सुझावों को सैटेलाइट के माध्यम से एकत्र किया जा रहा है और विकास नीतियों के निर्धारण में सभी राष्ट्रीय सरकारों से इन सुझावों पर ध्यान देने का आग्रह किया जा रहा है। इस प्रकार परम्परागत आरोपित विकास के स्थान पर स्व—विकास, सहभागितापूर्ण विकास, समावेशी विकास, सतत विकास एवं सामाजिक सक्षमता निर्माण महत्वपूर्ण बन गए हैं।

---

6. यू. एन. टूडे, संयुक्त राष्ट्र संघ प्रकाशन, 4 दिसम्बर 1986 ।

सतत विकास की अवधारणा

सतत् विकास की अवधारणा में सूक्ष्म रूप से देखें तो 'सस्टेनेबल' का तात्पर्य निरन्तर से जुड़ा है, जबकि 'विकास' का अर्थ परिवर्तन से है। सतत विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें प्राकृतिक स्त्रोतों के निवेश की दिशा, तकनीकी विकास का मार्ग तथा संस्थानिक परिवर्तन आदि को वर्तमान की जरूरतों तथा भविष्य की आवश्यकताओं के साथ सुसंगत किया जाता है। सस्टेनेबल विकास के दो प्रमुख आधार होते हैं– पहला मानव जाति (उपभोक्ता के रूप में) तथा प्राकृतिक व्यवस्था (दाता के रूप में) के बीच पारस्परिक निर्भरता के संबंध एवं दूसरा अर्थव्यवस्था तथा पर्यावरण व्यवस्था के बीच सोर्हादपूर्ण संबंध। सतत विकास को सार्थक बनाने की पूर्व शर्तें, समानता एवं सामाजिक न्याय, अन्तर्निहित विकल्प, आर्थिक दक्षता एवं पारिस्थितिकीय तालमेल होती हैं। ब्रूंटलैण्ड आयोग 1987 की परिभाषा के अनुसार "सतत विकास एक ऐसा विकास है जो भविष्य की पीढ़ी की समस्त आवश्यकताओं को संतुष्ट करने की योग्यता के साथ किसी भी प्रकार का समझौता किए बिना वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरा करता है।" सतत विकास के दो पहलू हैं : सामाजिक व पर्यावरणीय। सामाजिक सतत् विकास एक व्यक्तिनिष्ट अवधारणा है जिसका मापन लगभग असंभव है। परन्तु पर्यावरणीय सतत् विकास को वस्तुनिष्ट होने के कारण मापा जा सकता है।

सतत विकास पर गांधीजी के विचार

गांधीजी समाज और प्राकृतिक पर्यावरण के बीच की पारस्परिकता को उसके वास्तविक अर्थों में पहचानते थे। उनके अनुसार किसी समुदाय की आत्मा उसकी संस्कृति होती है तथा शरीर है उसका प्राकृतिक पर्यावरण। गांधीजी मानते थे कि प्रत्येक समुदाय के अपने प्राकृतिक पर्यावरण से नैसर्गिक संबंध होते हैं जिनसे समुदाय को अलग नहीं किया जा सकता। प्राकृतिक पर्यावरण की गोद में विकसित होता समुदाय स्वयं एवं पर्यावरण के बीच निरंतर होती अन्तःक्रिया द्वारा अपने विशिष्ट रीति–रिवाजों, परम्पराओं, धार्मिक आस्था एवं स्थानिक संस्कृति का निर्माण करके अपनी विशिष्ट अस्मिता प्राप्त करता है। समुदाय और प्राकृतिक पर्यावरण एक अटूट एकता में बंधे होते हैं। सतत् विकास की अवधारणा की आत्मा भी समुदाय और प्राकृतिक पर्यावरण के बीच पारस्परिकता के संबंधों के पोषण और संवर्धन के प्रयासों में ही पाई जाती है।[7] पियर्स के अनुसार आने वाले समय में मानव हितों को साधने की परिस्थितियों का नाश न हो इस हेतु सतत्

7. महात्मा वोल्यूम 1–8, प्रकाशन विभाग सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली–110003।

विकास यह सुनिश्चित करता है कि सामाजिक, आर्थिक और प्राकृतिक संसाधनों की देखभाल वर्तमान व भविष्य की पीढ़ी को ध्यान में रखकर, विवेकपूर्ण एवं उचित ढ़ग से की जाए।

सतत विकास का बहुआयामी दृष्टिकोण

समग्रतावादी, विस्तारित एवं बहुआयामी दृष्टिकोण से सतत विकास की विवेचना "रक्षा व सहयोग पर आधारित संबंधों" के संदर्भ में की गई है। मुख्य रूप से चार मूल संबंधों के संदर्भ में इसे जानने व समझने का प्रयास किया गया है। ये चार मूल संबंध निम्नलिखित हैं–

1 मनुष्य का मनुष्य से संबंध।

2 मनुष्य का प्रकृति से संबंध।

3 मनुष्य का अन्य जीव–जन्तुओं से संबंध।

4 वर्तमान पीढ़ी का भावी पीढ़ी से संबंध।

एक दूसरे के पूरक इन चार मूल संबंधों में रक्षा एवं सहयोग बढ़ाकर दुःख–दर्द के कारणों को न्यूनतम करने का प्रयास ही "सतत विकास" कहलाता है। इन चार मूल संबंधों में रक्षा व सहयोग की प्रक्रिया को (चित्र.1) में दर्शाया गया है–

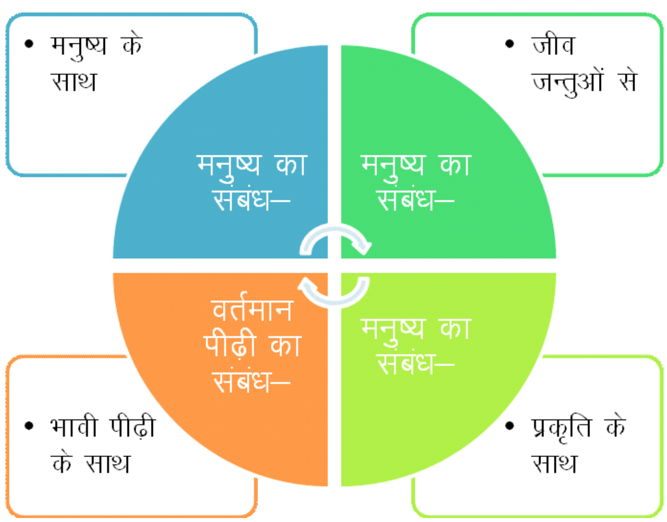

चित्र 1. सतत विकास का समग्रतावादी, बहुआयामी दृष्टिकोण

समावेशी विकास

समावेशी विकास में आर्थिक विकास, उच्च घरेलू विकास दर तथा ज्यादा राष्ट्रीय आय मिलती है जिसका लाभ समाज के कमजोर वर्गों सहित सभी वर्गों तक समान रूप से पहुँचता है। भौगोलिक व आर्थिक असमानताएं घटती है तथा स्वास्थ्य, शिक्षा, स्वच्छ पेयजल, स्वच्छ पर्यावरण, पौष्टिक भोजन जैसी बुनियादी सुविधाओं तक सभी की पहुँच समान रूप से होती है।[8] "इण्डिया डवलपमैंट रिर्पोट 2006" शीर्षक वाली विश्व बैंक की रिर्पोट में बताया गया है कि विकास केवल आर्थिक क्रियाओं के योग का माप नहीं है, बल्कि आर्थिक विकास की समावेशिता का मूल्यांकन है जिसमें आर्थिक लाभों के समान वितरण, सामाजिक सुरक्षा एवं पूर्ण सहभागिता जैसे कारकों पर ध्यान दिया जाता है। बारहवीं पंचवर्षीय योजना की धुरी "तीव्र, अधिक समावेशी एवं सतत विकास की ओर" पर केन्द्रित है। इस योजना के दृष्टिकोण पत्र में कहा गया है कि समावेशी विकास की रणनीति स्वास्थ्य, शिक्षा, स्वच्छ पेयजल जैसी आधारभूत सुविधाओं तक अधिसंख्य लोगों की पहुँच सुनिश्चित करने के प्रयासों पर केन्द्रित होनी चाहिए। ऐसा विकास अर्थहीन है जिसका लाभ समाज के निर्धनतम लोगों तक नहीं पहुँचता। इसी भावना के तहत उच्च आर्थिक विकास दर के साथ–साथ विकास का लाभ दबे कुचले एवं साधनहीन लोगों तक पहुँचाने पर बल दिया जा रहा है।[9] समावेशी विकास की रणनीति निर्धनता रेखा से नीचे रह रहे वास्तविक लाभार्थियों को रोजगार के अवसरों में वृद्धि करके एवं सामाजिक सेवाएं बेहतर ढ़ंग से प्रदान करके इनके जीवन स्तर में सुधार लाने पर केन्द्रित है। इस प्रकार समावेशी विकास का मूल उद्देश्य मानव विकास तथा समाज के लोगों का अधिकाधिक कल्याण करना है।

विकास के विकल्प

प्रत्येक युग में विकास का कोई न कोई प्रतिमान लोकप्रिय रहा है। अतीत का अनुभव है कि इन सभी प्रतिमानों ने मानव के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। समकालीन विकास प्रक्रिया ने विश्व तथा राष्ट्रीय स्तर पर व्यापक असमानताओं को जन्म दिया है जिससे विकास को एक मानवाधिकार के रूप में स्थापित होने में समस्या का सामना करना पड़ रहा है। अतः महसूस किया जा रहा है कि समकालीन भूमण्डलीकरण प्रक्रिया का विकल्प ढूँढ़ा जाना चाहिए। विकास का यह वैकल्पिक प्रतिमान ऐसा हो जो सभी वर्गों, क्षेत्रों व राष्ट्रों हेतु समान रूप से उपयोगी होने के

8. आर्थिक सर्वेक्षण 2010–11, वित्त मंत्रालय भारत सरकार, अध्याय–12, पृष्ठ 291–311 ।
9. बारहवीं पंचवर्षीय योजना का दृष्टिकोण पत्र, योजना आयोग, भारत सरकार, नई दिल्ली–110001 ।

साथ–साथ बहुराष्ट्रीय निगमों से लेकर स्थानीय समुदायों तक की आवश्यकताओं को पूर्ण कर सके। सतत विकास, धारणीय विकास तथा समावेशी विकास के बाद इन के विकल्प के रूप में एक नया प्रतिमान उभरा है तथा कुछ विकासशील राष्ट्रों में यह सफल भी रहा है। स्वदेशी दृष्टिकोण तथा नैतिकता की भावनायुक्त इस प्रतिमान को "ग्राम मॉडल" या "तृणमूल स्तर से भूमण्डलीकरण" की संज्ञा दी गई है। यह प्रतिमान वर्तमान यथार्थों को स्वीकार करते हुए मानता है कि भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया को रोका नहीं जा सकता है। अतः आवश्यकता है इसे सभी के लिए उपयोगी बनाने की ताकि विश्व के सभी राष्ट्रों एवं राष्ट्र के सभी क्षेत्रों व वर्गों को इसका समान लाभ मिल सके। यह प्रतिमान समष्टि(मैक्रो) वैश्विक संरचनाओं जैसे बहुराष्ट्रीय निगमों और व्यष्टि (माइक्रो) स्थानीय इकाइयों जैसे स्वयं सहायता समूह, सहकारी समितियां व स्थानीय उत्पादकों के मध्य संबंधों की स्थापना द्वारा दोनों को एक दूसरे के विकास का साधन बनाने का प्रयत्न करता है। इस प्रतिमान का उद्देश्य प्रबंधन के अन्तर्राष्ट्रीय कौशल को स्थानीय स्तर तक एवं स्थानीय ज्ञान व उत्पादों को अन्तर्राष्ट्रीय बाजार तक पहुँचाने पर बल देना है। विकास प्रक्रिया को गाँव–स्तर पर पहुँचाने तथा स्थानीय गाँव को 'ग्लोबल विलेज' (विश्व गाँव) से जोड़ने के उद्देश्य के कारण इसे "ग्राम मॉडल" अर्थात् (ग्रास रूट एक्शन मैनेजमेंट) की संज्ञा दी गई है। भारत में आई.टी.सी. द्वारा प्रारम्भ किया गया ई–चौपाल कार्यक्रम ग्राम मॉडल पर ही आधारित है जिसे आशातीत सफलता प्राप्त हुई है।

चूंकि विकास एक बहुमुखी प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य समाज का लोक–कल्याण, राष्ट्र का उत्कृष्ट विकास, राष्ट्र की आय में वृद्धि, देश की जनता का जीवन–स्तर विकसित करना, देश को आत्मनिर्भरता प्रदान करना, नागरिकों को रोजगार उपलब्ध कराना, कानून व्यवस्था में सुधार करना तथा न्याय प्रदान करना, आर्थिक–सामाजिक क्षेत्र में प्रगति करना, विकास कार्यों में जनता की सहभागिता प्राप्त करना, नीतियों व योजनाओं को समग्रता में लागू करना, प्रशासन को समय की चुनौतियों तथा कठिनाइयों का सामना करने के योग्य बनाना, साथ में नवीन प्रशासनिक प्रबंधकीय तकनीकों को स्वीकार करना, विकास कार्यों के लिए अंतर्राष्ट्रीय सहायता प्रदान करना, लोक–सेवकों को आधुनिक प्रशिक्षण प्रदान करना तथा नागरिकों को अच्छा जीवन प्रदान करना है।[10] भारत में विकास के इन उद्देश्यों एवं लक्ष्यों को प्राप्त करने तथा सर्वांगीण एवं संतुलित विकास हेतु निम्नलिखित सुझावों पर अमल करना होगाः– आंतरिक शान्ति एवं सुरक्षा बनाए रखना, बाहरी आक्रमण से राष्ट्र की रक्षा करना, स्थाई सरकार की स्थापना करना,

10. कुलदीप फड़िया, लोक प्रशासन, भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली की अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका, वर्ष : 3 अंकः 2 जुलाई–दिसम्बर 2011 ।

राजनीतिक स्थिरता प्रदान करना, वित्तीय संसाधनों की खोज करना और राष्ट्रीय विकास में उनका उपयोग करना, मनोवैज्ञानिक एवं भौतिक सुरक्षा का वर्धन करना, उचित प्रशासनिक व्यवस्था का प्रबंध करना, सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्रों में उचित समन्वय स्थापित करना, सामाजिक कुरीतियों को समाप्त करना, आधुनिक कार्य—पद्धतियों का विकास करके उन्हें अपनाना, लोक—सेवाओं की कार्य क्षमता बढ़ाना व उचित प्रबंध करना, पूंजी निवेश का राष्ट्रीय हित में उपयोग करना, अंतरराष्ट्रीय समुदाय का सहयोग प्राप्त करना तथा विश्व में प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त करना, विकास कार्यों में सहभागिता को प्रोत्साहन देना इत्यादि। इन उपायों को अपनाने के साथ मानवाधिकारों के प्रश्न को मानव विकास की आधारभूत प्रक्रिया को गतिशील बनाने की दृष्टि से देखना होगा ताकि विकास के अवसरों एवं मानवाधिकारों को एक दूसरे से जोड़ा जा सके।

विकास के मानवाधिकार की सार्वभौमिक प्राप्ति हेतु सभी को संकल्प लेना होगा कि प्रत्येक भारतीय को शक्ति प्रदान करने, देश के कोने—कोने में स्थित हर परिवार तक ज्ञान और समृद्धि की रोशनी फैलाने तथा इस धरती, यहाँ के गाँवों और शहरों के लिए, जहाँ सवा एक अरब से ज्यादा लोगों के सपने बसते हैं, एक उज्ज्वल भविष्य का मार्ग प्रशस्त करने के लिए नए जोश से कार्य करना होगा।[11] न्यायमूर्ति कृष्णस्वामी अय्यर के अनुसार मानवाधिकारों की लड़ाई सैद्धांतिक से अधिक व्यावहारिक है। अतः विकास के मानवाधिकार की सार्वभौमिक प्राप्ति हेतु व्यावहारिकता के धरातल पर कार्य करना होगा जैसा कि प्रधानमंत्री श्री मनमोहन सिंह ने स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर कहा था कि देश के समग्र एवं संतुलित विकास के लिए हम सबको मिलकर देश में राजनीतिक स्थिरता, सामाजिक एकता और सुरक्षा का माहौल बनाना होगा।[12] गांधी जी ने भी कहा था कि "इस ग्रह पर मानव की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त संसाधन हैं, पर लालच को पूर्ण करने के लिए नहीं।" अतः आवश्यकता है विकास प्रक्रिया में आर्थिक संवृद्धि के साथ 'सकल मानवीय विकास' एवं 'सकल पर्यावरणीय उत्पाद' जैसे पहलुओं को जोड़कर समानता युक्त, सतत एवं समावेशी विकास की ओर बढ़ने की, ताकि मानव हित में मानवाधिकारों की सुनिश्चित प्राप्ति द्वारा, बेहतर आज का निर्माण हो सके और सुनहरे भविष्य की नींव रखी जा सके।

* * *

11. जनता के लिए रिर्पोट 2012—13, प्रधानमंत्री कार्यालय, भारत सरकार, नई दिल्ली—110001 ।
12. प्रधानमंत्री श्री मनमोहन सिंह द्वारा स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर दिया गया भाषण, वेबसाइट http://www.pmindia.nic.in से मुद्रित।

जलवायु परिवर्तन एवं इसके परिणाम

***डॉ. एस. एम. झरवाल**

जलवायु–परिवर्तन लगातार लम्बे समय तक मौसम में परिवर्तन के कारण होता है। यह परिवर्तन दशाब्दि ही नहीं बल्कि कई शताब्दियों के दौरान होता है। ऐसा परिवर्तन किसी खास क्षेत्र विशेष में या सारे विश्व में भी हो सकता है। जलवायु परिवर्तन का असर सारे विश्व पर ही पड़ता है। इस का अर्थ यह है कि विश्व के किसी भी हिस्से में यदि ग्रीन हाउस गैसों (GHGs) द्वारा वातावरण दूषित (Pollution) होता है तो वह सारे देशों को प्रभावित करता है। इस Anthropogenic जलवायु परिवर्तन को "Global Warming" की संज्ञा भी दी जाती है। जो तत्व जलवायु में परिवर्तन कर सकते हैं, वे हैं :– (i) सूर्य की विकिरणता (Solar Radiation) में परिवर्तन (ii) पृथ्वी के परिक्रमा मार्ग में परिवर्तन (iii) पहाड़ों का बनना व महाद्वीपों का खिसकना (iv) ग्रीन हाउस Green House गैसों की केन्द्रीयता (Concentration) में परिवर्तन।

इस बारे में सर्वप्रथम 9 मई, 1992 में संयुक्त राष्ट्र संघ की कन्वेशन जो कि न्यूयार्क में हुई थी, उसमें प्रस्ताव पारित किया गया कि वायुमण्डल (Atmosphere) में ग्रीन हाउस गैसों के केन्द्रीकरण (Concentration) को ऐसे स्तर पर रखा जायेगा कि जिससे हमारे जलवायु या वायुमण्डल सिस्टम को नुकसान न हो। इस प्रस्ताव को 21 मार्च, 1994 से प्रभाव में लाया गया। इसके बाद दिसम्बर, 1997 में जापान के क्योटो शहर में संयुक्त राष्ट्र संघ की जलवायु परिवर्तन पर एक कान्फ्रेन्स (UNCCC) हुई एवं एक Protocol को अपनाया गया जो कि 16 फरवरी, 2005 से प्रभावी हुआ। क्योटो शहर में इस विषय पर दूसरी बैठक नवम्बर, 2006 में हुयी। इसमें विश्व के 180 देशों के 6000 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। नवम्बर, 2009 तक 187 देशों ने इस Protocol पर अनुमोदन स्वरूप हस्ताक्षर किये। 1990 के अनुमान के अनुसार इन देशों में गैसों के

*कुलाधिपति, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक (म.प्र.)

कुल उत्सर्जन का लगभग 64% हिस्सा है। इसके बाद विभिन्न कदम उठाये गये हैं। विभिन्न देशों की हेग (आस्ट्रिया) में एक कान्फ्रेन्स (COP) सन् 2000 में कुछ मुद्दों को सुलझाने के लिये आयोजित की गयी। लेकिन कोई समझौता नहीं हो पाया। इसका मुख्य कारण था यूरोपियन यूनियन (EU) के देशों के विचारों के साथ अमेरिका, कनाड़ा तथा जापान के विचारों में सहमति नहीं थी। यह दूसरा समूह ज्यादा लचीला समझौता चाहता था। इसलिये 2001 में एक दूसरी बैठक बोन (जर्मनी) में आयोजित की गयी। इसके तुरन्त बाद 2001 में ही तीसरी बैठक मार्केश में आयेजित की गयी। इनके अलावा क्योटो प्रोटोकाल के बाद में पार्टीज की प्रथम बैठक (MOP-1) 2005 (नवम्बर–दिसम्बर) में मोंट्रियल में हुयी तथा तेरहवीं बैठक 2007 में बाली में आयोजित की गयी। इसके बाद अलग–अलग समूहों की बैठकें की गयीं और अभी भी जारी है।

1. 2007 में पर्यावरण में परिवर्तन के प्रभावों के आकलन पर चौथी रिपोर्ट Intergovernmental Panel on Climate Change (IPCC) द्वारा लाई गयी। इस रिपोर्ट ने मनुष्य–कृत जलवायु परिवर्तन एवं इसके प्रभावों के बारे में दुनिया भर में जागृति पैदा की। इस रिपोर्ट में बताया गया है कि "GHGs के उत्सर्जन से निश्चित रूप से वायुमण्डल व समुद्रों का तापमान बढ़ा है और बहुत बड़े स्तर पर बर्फ पिघल रही है और समुद्रों का औसत स्तर बढ़ रहा है।" यह रिपोर्ट यह भी बताती है कि GHGs के उत्सर्जन व इकट्ठा होने से 20 वीं शताब्दी के मध्य से विश्व में औसत तापमान बढ़ रहा है।

2. ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन एवं उस के मुख्य कारण

कार्बन डाइ आक्साइड (CO_2) तथा मीथेन (CH_4), ये दो मुख्य GHGs है जो कि दुनिया भर में तापमान को बढ़ानें के लिये जिम्मेदार मानी जाती है। बहुत से आर्थिक क्रिया–कलापों के कारण इन गैसों का उत्सर्जन होता है। निम्न तालिका में इन क्रिया–कलापों से सापेक्षित तौर पर कितनी GHG उत्सर्जित होती है उसका विवरण दिया गया है।

तालिका–1

ग्रीन हाउस गैसों (GHGs) के उत्सर्जन के कारण

	आर्थिक क्रिया–कलाप	GHGs का उत्सर्जन (% हिस्सा)	
		विश्व	भारत
1.	औधोगिक प्रक्रिया	19.4	8
2.	कृषि कार्य	30.9	28
3.	बिजली उत्पादन	25.9	
4.	यातायात के साधन	13.1	61
5.	वणिज्यिक व घरेलू क्रिया–कलाप	7.9	
6.	Waste निष्पादन	2.5	2

(स्रोत : IIPC, 2007 तथा भारत का जलवायु परिवर्तन पर राष्ट्रीय आयोग–2004)

2007 में दुनिया में CO_2 का उत्सर्जन लगभग 30 बिलियन टन आँका गया जिसमें से करीब आधा महानगरों में, जंगलों में व धरती में समा जाता है। इसका तात्पर्य है कि प्रतिवर्ष करीब 15 बिलियन टन CO_2 विश्व के वातावरण में चला जाता है। इस तरह से अभी तक प्राप्त अनुमानों के अनुसार सन् 1750 से 2007 तक CO_2 की मात्रा 2184 बिलियन टन से बढ़ कर 2995 बिलियन टन हो गयी थी। CO_2 ही नहीं बढ़ी है बल्कि मीथेन गैस (CH_4) की मात्रा भी सन् 1750 से 2005 के बीच 5569 बिलियन टन से बढ़कर 13837 बिलियन टन हो गयी है। इसी तरह नाइट्रोजन आक्साइड (N_2O) की मात्रा इस दौरान 2106 बिलियन टन से बढ़कर 2488 बिलियन टन हो गयी। इसलिये यदि इस पृथ्वी को बचाना है तो इन गैसों के उत्सर्जन में इस तरह की वृद्धि को रोकना होगा।

GHGs का प्रतिव्यक्ति उत्सर्जन का आकलन औधौगिक देशों में विकासशील देशों की तुलना में इन गैसों का प्रति व्यक्ति उत्सर्जन करीब दस गुना ज्यादा है (Grubb, 2003)। जिन देशों ने क्योटो प्रोटोकोल के अनुसार 2008 से 2012 के समय के लिये मात्रात्मक जिम्मेदारी (Commitments) मानी है, उनमें 1990 में इन गैसों का प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष उत्सर्जन दो टन से ज्यादा था। 2005 में बीस ऐसे देश थे जिनमें इन गैसों के कुल उत्सर्जन का 80% हिस्सा था। 2005 में जो सबसे ज्यादा इन गैसों का

उत्सर्जन करने वाले देश थे, उनमें चीन (17%), अमेरिका (16%), यूरोपीय संघ (11%), इंडोनेशिया (6%) भारत (5%) रूस (5%) ब्राजील (4%) जापान (3%) कनाड़ा (2%) तथा मैक्सिको (2%) शामिल है। प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष कार्बन उत्सर्जन में सबसे ऊपर अमेरिका (24.1 टन), इसके बाद में कनाड़ा (23.2 टन), रूस (14.9 टन), इन्डोनेशिया (12.9 टन), यूरोपीय संघ व जापान (10.6 टन), ब्राजील (10 टन), मैक्सिको (6.4 टन), चीन (5.8 टन) तथा भारत (2.1 टन) हैं।

3. जलवायु परिवर्तन के प्रभाव

जलवायु परिवर्तन के कारण ठंडे दिन, ठंडी रातें व बर्फ व पाला पड़ने की आवृत्ति सारे विश्व में कम हो गयी है। गर्म हवायें चलना आम स्थिति होती जा रही है। ज्यादातर इलाकों में एक साथ भारी वर्षा होने की आवृत्ति भी बढ़ गयी है। सन् 1880 के बाद में विश्व के औसत तापमान में 17ं सेल्सियस की वृद्धि हुई है और यह वृद्धि पिछली कुछ दशाब्दियों में ज्यादा हुयी है (NASA, GISS)। बहुत से जलवायु सम्बधित अध्ययन यह बताते हैं कि 20वीं शताब्दी की आखरी दो दशाब्दियाँ पिछले 400 वर्षो में सबसे ज्यादा गर्म रही हैं। सम्भवतः ऐसा पिछले कई हजार वर्षो में भी नहीं हुआ होगा। IPCC, 2007 के अनुसार 1850 के बाद में पिछले 12 वर्षों में से 11 वर्ष सबसे गर्म रहे हैं। आर्कटिक महासागर इससे सबसे ज्यादा प्रभावित हुआ है। अलास्का, पश्चिमी कनाड़ा तथा पूर्वी रूस में दुनिया के औसत तापमान में वृद्धि से दुगनी वृद्धि हुई है (Multinational Arctic Climate Impact Assessment (ACIA) – 2002-2004)। इसलिये आर्कटिक पर बर्फ तेजी से समाप्त होती जा रही है। ऐसा अनुमान है कि इस क्षेत्र में 2040 की गर्मियों तक बर्फ समाप्त हो जायेगी। गलेशियर व पहाड़ों पर भी बर्फ पिघल रही है। उदाहरणार्थ मोंटाना के ग्लेशियर राष्ट्रीय उद्यान में 2007 तक केवल 27 ग्लेशियर ही बचे थे जो कि 1910 में 150 थे। कोराल रीफ जो कि पानी के तापमान में थोड़ी सी वृद्धि से ही बहुत ज्यादा प्रभावित होती है उनमें 1998 में एक आकलन के अनुसार ब्लीच (Bleaching) की दर करीब 70% थी। ऐसी अपेक्षा की गयी थी कि आने वाले 50 वर्षों में ऐसी घटनाओं की आवृत्ति बढ़ेगी। इसके अलावा जलवायु परिवर्तन से विश्व भर में समुद्र की सतह प्रतिवर्ष 1.8 मिलीमीटर की दर से ऊपर उठी है। 1961 से समुद्र के जल स्तर में वृद्धि एक वैश्विक खतरे के रूप में उभरी है। यह खतरा खास कर नदियों के निम्नस्तर पर स्थित डेल्टा, छोटे–छोटे द्वीपों एवं समुद्री किनारों में ज्यादा है। इसके परिणाम बहुत बुरे इसलिये भी होने वाले हैं कि विश्व की करीब आधी जनसंख्या समुद्र से करीब 200 किलोमीटर की परिधि में रहती है।

4. जलवायु परिवर्तन के भारत पर प्रभाव

भारत के परिपेक्ष्य में तापमान में वृद्धि एवं जलवायु परिवर्तन के कारण बार–बार बाढ़ का आना एवं सूखा पड़ने की संभावना बढ़ जायेगी। इससे पानी की उपलब्धता में कमी आयेगी एवं बीमारियों में बढ़ोत्तरी होगी। हिमालय के क्षेत्र में ग्लेशियर लुप्त होते जा रहे हैं। 2007 के एक अनुमान के अनुसार 2030 तक 5 लाख वर्ग किलोमीटर ग्लेशियर की तुलना में केवल एक लाख किलोमीटर में ही ग्लेशियर बचे रहेंगे (IPCC-2007)। इस तरह की स्थिति एवं घटनायें कृषि क्षेत्रों को बुरी तरह से प्रभावित करेंगी। तापमान में अचानक वृद्धि व परिवर्तन से, खास कर, खाद्यान्नों की उत्पादकता में कमी आयेगी। जरूरत के समय पानी की उपलब्धता की कमी से भी उत्पादकता घटेगी। गंगा के मैदान जो खाद्यान्नों की पैदावार में काफी मदद करते हैं, वे इस तरह की समस्या से प्रभावित होंगे। कुछ वैश्विक रिपोर्ट बताती हैं कि सन् 2100 तक फसल उत्पादन में 10% से 40% तक की कमी आयेगी। उदाहरणार्थ सन् 2002–2003 के अकाल के कारण भारत में सन् 2001–2002 की तुलना में करीब 38 मिलियन टन अनाज कम पैदा हुआ, जो कि करीब 18% गिरावट थी। चावल के उत्पादन में उस वर्ष करीब 23% की गिरावट तथा गेहूं के उत्पादन में करीब 10% की गिरावट आंकी गयी। यह बहुत ही डरावनी स्थिति है। ऐसा मानना है कि यह नुकसान रबी की फसलों में ज्यादा होता है क्योंकि उस समय पानी की भी कमी होती है एवं तापमान में भी परिवर्तन होता रहता है। एक अनुमान के अनुसार सर्दी के मौसम में खासकर फरवरी–मार्च में जब गेहूं की बाली में दाना बनता है, यदि तापमान एक डिग्री बढ़ जाता है तो गेहूं के उत्पादन में करीब 4 से 5 मिलियन टन की कमी हो जाती है।

इसके अलावा जलवायु परिवर्तन से कृषि उत्पादन में बहुत उतार–चढाव होने से खाद्य सुरक्षा खतरे में पड़ने की संभावना बढ़ती है तथा अचानक आयात करने का बोझ बढ़ सकता है। इस तरह की समस्या और भी बढ़ जाती है जब तापमान बढ़ने के कारण नुकसानदायक पैथोजेनिक माइक्रोब्स एवं कीड़े उत्पादकता को नुकसान पहुँचाते हैं। इसके कारण खाद्यान्नों का उत्पादन बढ़ाने के लिये खाद, पानी व कीटनाशक दवाईयों का ज्यादा उपयोग करने की आवश्यकता पड़ेगी तथा इससे उत्पादन की लागत बढ़ेगी। साथ ही इन सबके उपयोग से GHGs के उत्सर्जन में वृद्धि होगी। लेकिन उत्तरी अमेरिका, चीन व यूरोप के देशों में गर्मी बढ़ने से सकारात्मक असर होगा तथा वहाँ खाद्यान्नों का उत्पादन बढ़ेगा जिससे कि खाद्यान्नों के मामले में व्यापार संन्तुलन उनकी तरफ झुकेगा।

बागवानी क्षेत्र में मुख्य फलों की उत्पादकता में मौसम परिवर्तन के कारण कमी आयेगी। उदाहरण के लिये सर्दी में कमी के कारण हिमाचल प्रदेश में सेव की उत्पादकता में भारी उतार–चढ़ाव के अतिरिक्त 1980–1981 व 2000–2001 के बीच 30 प्रतिशत की कमी आयी है। इसी तरह से समुद्र व नदियों का तापमान बढ़ने से मछली उत्पादन में कमी आयी है। बहुत से क्षेत्रों से मछलियाँ पलायन भी कर गयी है। तापमान बढ़ने से पशुओं की उत्पादकता में भी कमी आयी है। ऐसा अनुमान है कि 2020 तक दूध के उत्पादन में 1.5 मिलियन टन की कमी हो जायेगी।

5. जलवायु परिवर्तन के बारे में वचनबद्धता

क्योटो प्रोटोकाल के अनुसार विभिन्न देशों ने वैश्विक बढ़ती गर्मी तथा GHGs के उत्सर्जन को कम करने के लिये कई Commitments किये हैं। औधोगीकृत देशों ने यह समझौता किया कि 1990 के GHGs के उत्सर्जन स्तर में 2012 तक 5.2 प्रतिशत की कमी लायी जायेगी। इस तरह के वचनबद्धता के लक्ष्य विभिन्न देशों के लिये अलग–अलग हैं जैसे कि यूरोपीय संघ के लिये 8% ब्रिटेन के लिये 7% उत्तरी अमेरिका के लिये 12.5% जापान के लिय 6% आस्ट्रिया 13% डेनमार्क 21% तथा रूस के लिये 0% GHGs के उत्सर्जन को धटाने का लक्ष्य रखा गया है। इसके विपरित, कुछ देश 1990 की तुलना में GHGs के उत्सर्जन को बढ़ा भी सकते हैं। दूसरे शब्दों में उन देशों में अब तक बहुत ज्यादा औद्योगिक क्रिया–कलाप नहीं हुये हैं एवं वहाँ पर GHGs का उत्सर्जन बहुत ही कम है। ऐसे देशों में आस्ट्रेलिया 10% आइसलैण्ड 10% आयरलैण्ड 13% स्पेन 15% ग्रीस 25% तथा पुर्तगाल 27% तथा का उत्सर्जन बढ़ा सकते है। यहाँ यह भी अंकित करने की बात है कि इन लक्ष्यों में अन्तराष्ट्रीय उड़ानों एवं जहाजरानी से जो उत्सर्जन होता है वह शामिल नहीं है।

इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये इस प्रोटोकोल के भागीदार देश जमीन के उपयोग तथा उसमें परिवर्तन तथा वनों को बढ़ा कर भी कर सकते है। ऐसे क्रिया–कलापों का Sink Activities भी कहते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि कोई भी देश GHGs के उत्सर्जन के नुकसानदेह प्रभावों को वन क्षेत्रों में वृद्धि करके या भूमि के उपयोग में परिवर्तन कर के कम कर सकता है। ये लक्ष्य चार तरह की GHGs के लिये लागू होते है। इनमें (i) कार्बनडाई आक्साइड (CO_2) (ii) मीथेन (CH_4) (iii) नाइट्रोजन आक्साइड (N_2O) तथा (iv) सल्फर हेक्सा फ्रोराइड (SF_6)। इन सबके उत्सर्जन को CO_2 के बराबर परिवर्तित कर के आँका जाता है।

ये लक्ष्य औद्योगिक गैसों व क्लोरोफ्लोरो कार्बन के उत्सर्जन के अलावा है जिनको 1987 के माण्ट्रियल प्रोटोकोल में शामिल किया गया था तथा जो ओजोन पर्त को नुकसान पहुँचाने के लिये जिम्मेदार मानी जाती है। इस तरह से विकासशील देशों के लिये क्योटो प्रोटोकाल के अनुसार यह जरूरी नहीं कि उत्सर्जन में कमी लाना है बल्कि GHGs के उत्सर्जन को आने वाले वर्षों में एक विशेष निर्धारित सीमा के भीतर रखने की वचनबद्धता है।

6. क्योटो प्रोटोकोल पर विभिन्न विचार

विश्व बैंक की 2010 की रिपोर्ट के अनुसार क्योटो प्रोटोकोल GHGs के उत्सर्जन में कमी लाने में बहुत कम प्रभावी रहा है। यद्यपि यह समझौता 1997 में हुआ था लेकिन 2005 तक ऊर्जा से सम्बन्धित गैस उत्सर्जन में 24 प्रतिशत की वृद्धि हुयी है। इसके अतिरिक्त इस समझौते के अनुसार विकासशील देशों को उत्सर्जन में कमी लाने के लिये तथा जलवायु परिवर्तन पर काबू करने के उपायों के लिये बहुत कम धन राशि प्रदान की गयी। जलवायु न्याय (Climate Justice) के मामले में एक आलोचना यह भी है कि जहाँ विकासशील देशों में GHGs का बहुत कम उत्सर्जन होता है वहीं विकसित देशों में काफी ज्यादा उत्सर्जन है और इस कारण विकासशील देशों में जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभाव होते हैं। प्रश्न यह उठता है कि इस नुकसान की किस तरह से भरपायी की जाय। सारे विचार विमर्श में यह एक बहुत महत्वपूर्ण मामला है जिसका एक सही उपाय नहीं निकाला गया है। कुछ विशेषज्ञों का मानना है कि यदि क्योटो प्रोटोकोल के कारण कुछ करार सख्ती से लागू किये जायेंगे तो उससे समस्या का समाधान होगा। दूसरी तरफ अन्य विशेषज्ञ यह मानते हैं कि वर्तमान करार बहुत ही कमजोर है। बहुत से अर्थशास्त्री यह सोचते हैं कि ये करार जरूरत से ज्यादा सख्त है (Grubb-2000)। लन्दन स्कूल ऑफ इकोनोमिक्स तथा ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के कुछ प्रोफेसरों ने अपने हार्टवेन प्रपत्र (2010) में यह दर्शाया है कि कोपेनहेगेन सम्मेलन की असफलता के बाद क्योटो प्रोटोकोल भी धाराशायी हो गया क्योंकि पिछले पंद्रह वर्षो में इन खतरनाक गैसों के उत्सर्जन में कोई खास कमी नहीं आयी है। इस तरह का विचार भी व्यक्त किया गया कि कोपेनहेगेन समझौते ने ही क्योटो समझौते की कमजोर नींव डाली थी। इससे विकसित देशों पर कोई मजबूत कानूनी शिकंजा नहीं कसा जा सका। "क्लाइमेट एक्सन ट्रेकर" के एक आकलन के अनुसार इस तरह के करारों से ग्लोबल तापमान 3 डिग्री सेल्सियस बढ़ेगा। विकसित देशों में 1990 की तुलना में GHGs के उत्सर्जन में 11% से 19% तक की कमी आयेगी जबकि IPCC (2007) के

अनुसार 40% की कमी आवश्यक थी जिससे कि ग्लोबल तापमान में 2% तक वृद्धि सुनिश्चित की जा सके।

7. आगे क्या होगा ?

कुछ छोटे समूह जैसे, मुख्य अर्थव्यवस्थाओं का संगठन (Major Economies Forum-MEF), BASIC (ब्राजील, दक्षिणी अफीका, भारत व चीन), G-20 देश जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को ठीक ढंग से काबू में करने के लिये प्रयासरत है। इनका ध्यान मोनिटरिंग, रिव्यू तथा वेरिफिकेशन (MRV) पर केन्द्रित हैं। विकासशील देशों में उत्सर्जन के प्रभावों को विशेष तरह की मदद द्वारा कम करने का प्रयास होगा। लेकिन इस क्षेत्र में बहुत से लम्बित मुद्दों को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बातचीत के द्वारा सुलझाने की जरूरत है। दूसरा मुद्दा अडप्टेशन, मिटिगेशन व वित्त का है। इस बात को भी ठीक से समझाना आवश्यक है कि जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने के लिये कानूनी समझौता, ऐच्छिक (Scheduled Approach) प्रयास या सारिणी एप्रोच में से कौन सा ठीक रहेगा या एक साथ सभी करने की जरूरत है।

8. भारत में किये गये प्रयास

जून 2008 में भारत सरकार ने जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने के लिये एक राष्ट्रीय कार्य योजना बनाई गयी है। इस बहु आयामी व दूरदर्शी योजना को आठ राष्ट्रीय मिशनो के द्वारा लागू किया जा रहा है। इनका विवरण नीचे दिया जा रहा है।

1 सौर मिशन :– यह मिशन जनवरी 2010 से लागू किया गया है। इस का मुख्य उद्देश्य सौर ऊर्जा के उत्पादन व प्रयोग को बढ़ावा देना है। इसके साथ ही ऊर्जा के नवीनीकरण स्त्रोतों जैसे वायु, नाभिकीय और बॉयोमास द्वारा बिजली पैदा करने को भी प्रोत्साहित करने पर जोर दिया गया है।

2 ऊर्जा के प्रभावी उपयोग के लिये मिशन : ऊर्जा के उपभोग में बचत के लिये Energy Conservation Act, 2001 लाया गया था। इस मिशन का उद्देश्य ऊर्जा के प्रभावी उपयोग को बढ़ाना है। इस दिशा में कई कदम उठाये जा रहे है। ऐसा मेकेनिज्म बनाया जायेगा जिससे बड़े उद्योगों में बाजार आधारित सिस्टम से ऊर्जा की लागत में कमी व ऊर्जा के उपयोग में कमी लाई जायेगी, बिजली के ऐसे उपकरणों के प्रयोग को बढ़ावा दिया जायेगा जिससे कि ऊर्जा उपयोग में कमी आ सके। ऐसा करके Demand-side मेकेनिज्म से वित्तीय सहायता दे सकेंगे। इनके

अतिरिक्त ऐसे राजकोषीय उपाय किये जायेंगे जिससे कि अनावश्यक ऊर्जा उपयोग में कमी लाई जा सके। इस मिशन के माध्यम से सरकारी तथा प्राइवेट पार्टनरशिप के द्वारा बाजार को खोला जायेगा जिससे कि ऊर्जा के उपयोग में गुणवत्ता व प्रभावशीलता आयेगी। ऐसा अनुमान है कि इसके लिये करीब 74000 करोड़ रूपयों की लागत आयेगी। इससे उपभोक्ताओं तथा देश को फायदा होने की अपेक्षा की जाती है।

3 सतत पर्यावास मिशन (Sustainable Habitat Mission) : यह मिशन शहरी क्षेत्रों के लिये है। इसका उद्देश्य है कि किस तरह से बेहतर शहरी नियोजन व नवीनीकरण लोक यातायात, कूड़ा प्रबन्धन एवं उसको री–साइकिलिंग करके उसका इस्तेमाल, इत्यादि को प्रोत्साहित करके ऊर्जा के उपयोग में कुशलता सुनिश्चित की जायेगी।

4 जल मिशन : इस मिशन का उद्देश्य है कि जल संसाधन का प्रबन्धन इस तरह से सुनिश्चित किया जाय जिससे कि पानी की बचत की जाय, इसका व्यर्थ इस्तेमाल न हो एवं राज्य के भीतर एवं विभिन्न राज्यों में समान वितरण की व्यवस्था हो। ऐसा प्रयास होगा कि शहरी क्षेत्रों में पानी की ज्यादातर पूर्ति पुनः चक्रित (Recycled) पानी से हो। तटीय क्षेत्रों में भी उपयुक्त तकनीक अपना कर पानी की माँग को पूरा किया जायेगा।

5 हिमालय के पर्यावरण को बचाने के लिये मिशन : इसका मुख्य उद्देश्य हिमालय में बर्फ की नदियों तथा पहाड़ों के इको–सिस्टम को बचाने तथा जीवित रखने के लिये उपयुक्त प्रबन्धन करना है। यह इसलिये भी आवश्यक है कि हिमालय से लगातार बहने वाली बहुत सी नदियाँ निकलती है। इसलिये इस मिशन के द्वारा यह समझने का प्रयास किया जायेगा कि यहाँ के ग्लेशियर किस गति से कम हो रहे हैं तथा इस समस्या का क्या हल हो सकता है।

6 हरित भारत मिशन : इस मिशन का उद्देश्य इको–सिस्टम को बढ़ाना है। जैसे वन क्षेत्र को बढ़ा कर कार्बन सिंक बनाये जा सकते हैं जो वातावरण को GHGs के उत्सर्जन द्वारा दूषित होने से बचाते है। पर्यावरण में संतुलन रखने व जैव–विविधता (Bio-diversity) को बनाये रखने के लिये वन बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है। राष्ट्रीय स्तर पर 33 प्रतिशत क्षेत्र में वन या पेड़ उगाने का लक्ष्य है जो कि वर्तमान में करीब 23 प्रतिशत ही है।

7 सस्टेनेबल कृषि मिशन : इस मिशन के द्वारा ऐसी व्यूह–रचना बनाने का प्रयास है जिससे कि भारत में कृषि पर जलवायु परिवर्तन के विपरीत प्रभाव को न्यूनतम स्तर पर रखा जा सके। इस व्यूहरचना के तहत फसलों की ऐसी जिंसो को चुनना या विकसित करना है जिन पर तापमान का असर न हो और भिन्न प्रकार के फसल उगाने के तरीकों को अपनाना है जिससे कि अत्यधिक गर्मी या सर्दी, सूखा, बाढ़ आदि को फसलों द्वारा सहन किया जा सके और उनकी उत्पादकता पर विपरीत प्रभाव न पड़े। इसके लिये पुरखों का ज्ञान (Traditional Knowledge) और उनकी खेती करने की पद्धतियों, जल के उपयोग को और प्रभावी बनाने के उपाय उन क्षेत्रों में कृषि भूमि का विकास जहाँ अभी खेती नहीं हो पाती है, खराब जमीन की उत्पादकता बढ़ाने के उपाय, सूचना–प्रोद्योगिकी, बायो–टेक्नोलोजी व जियो–स्पैसियल तकनीकों के उपयोग को वृहत् स्तर पर इस्तेमाल करने के प्रयास किये जायेंगे। ऋण व बीमा उपलब्ध करा कर इस तरह के उपायों को शीघ्र अपनाने पर जोर दिया जायेगा।

8 जलवायु परिवर्तन पर विशिष्ट (Strategic) ज्ञान मिशन : इस मिशन का उद्देश्य भारत में जलवायु परिवर्तन के प्रभावों का ठीक से आकलन करने की क्षमता पैदा करना है। इस दिशा में इंडियन नेटवर्क फोर क्लाइमेट चेंज (INCCA) काम कर रहा है जिसमें इस क्षेत्रों में भारतीय वैज्ञानिक एवं अनुसंधान करने वाले संगठन इस प्रयास के हिस्से हैं। इसका उद्देश्य है सम्पूर्ण विश्व में जो भी वैज्ञानिक या संगठन जलवायु परिवर्तन व इसके प्रभावों के आकलन करने में संलग्न हैं उनको जोड़ा जाय और उन के ज्ञान का लाभ प्राप्त किया जाय। इससे आवश्यक क्षेत्रों में विशिष्ट कार्यो के लिये आर्थिक सहायता देने में सुविधा होगी। साथ ही जलवायु परिवर्तन का सामाजिक–आर्थिक (Socio-Economic) क्षेत्रों जैसे स्वास्थ्य, जनसंख्या, लोगों का एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्रों में पलायन तथा तटीय क्षेत्रों में भरण–पोषण पर प्रभाव आदि का आकलन व खोज की जायेगी। इससे समुचित उपायों को सुझाने में मदद मिलेगी।

निष्कर्ष–

यह विश्व के सारे देश मान चुके हैं कि GHGs के उत्सर्जन से धरती, समुद्र व वायुमण्डल में गर्मी बढ़ रही है। इस से आने वाले वर्षो में खतरनाक परिणाम होने वाले है। इसलिये सब देशों को मिलकर इस तरह के उपाय शीघ्र करने चाहिये जिससे कि ग्लोबल वार्मिंग को काबू में रखा जा सके। मेलबोर्न विश्वविधालय के एक खोज पत्र

(सितम्बर, 2013) में यह स्पष्ट रूप से बताया गया है कि इस दिशा में यदि नीति बनाने में देरी की गयी तो खतरनाक गैसों के उत्सर्जन को काबू करने की लागत तीन गुनी बढ़ेगी, राजनीतिक इच्छाशक्ति कम होगी और लोगों के सहयोग में भी कमी आयेगी। इससे विश्व में 2030 तक आर्थिक विकास में 7 प्रतिशत की कमी आयेगी। परिणामस्वरूप बहुत से देशों में जीवन निर्वाह का बड़ा प्रश्न खड़ा होगा। इसलिये समय रहते उचित उपाय करने की आवश्यकता है।

* * *

करे मननः क्यों न करे खनन? विकास की मार झेलती अति उपेक्षित आदिवासी समुदाय

*शरद कुमार यादव

किसी भी राज्य के विकास में अजीविका व व्यापार में खनिज सम्पदा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। भारत प्राकृतिक संसाधनों से समृध्द देश है। देश की आजादी के उपरान्त राष्ट्र निर्माण में खनिज की महत्ता और सरकार ने औद्योगिक विकास के लिए इस ओर ध्यान दिया और खनिज सम्पदा भारतीय अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण हिस्सा बनकर उभरी लेकिन औद्योगीकरण की रफ्तार में सार्वजनिक हित और राष्ट्रीय विकास के नाम पर देश के सम्पन्न खनिज सम्पदा उड़ीसा, झारखण्ड, छतीसगढ़ इत्यादि जैसे क्षेत्रों में खनन की गतिविधियाँ और उसमें प्रभावित स्थानीय मूल निवासियों और पर्यावरणीय क्षरण ने विकास की इस संकल्पना को लोकतांत्रिक दायरे में एक नए विवाद को जन्म दिया है कि किस तरह से खनन क्षेत्र–विकास, उन्नति और गरीबी निवारण के नाम पर मूलनिवासियों को विकास की कीमत पर अपनी जमीन और जंगल जिन पर पूरी–तरह से उनका जीवन निर्भर है उससे हाथ धोना पड़ रहा है। उपरोक्त परिपेक्ष्य में विकास का माडल और आदिवासी समाज के उपर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन जरूरी है। फिर यहां पर प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि विकास किस चीज का पर्याय है। आज देश विकास के जिस माडेल पर अग्रसर है वह सामान्य जन के लिए लाभकारी है या हानिकर? यह अपने आप में एक अहम सवाल है। खनिज–सम्पन्न आदिवासी क्षेत्रों से सम्बन्धित इस तरह के अन सुलझे प्रश्नों पर विचार करना आवश्यक है।

भारत के पास 20,000 से अधिक पाये जाने वाले खनिजों का भूगर्भीय भण्डार उपलब्ध है। कोयला, लौह अयस्क, वाक्साइट, क्रोमाइट के उत्पादन में भारत का विश्व

---

*शोधकर्ता, राजनीतिशास्त्र विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

में महत्वपूर्ण स्थान है। भारत का खनिज क्षेत्र जीडीपी में दो से तीन प्रतिशत का योगदान करता है और इस क्षेत्र में लगभग 4 मिलियन लोग काम करते हैं। दुर्भाग्य से भारत के लिए, उसके सभी खनिज संसाधन उसी क्षेत्र में हैं जो सबसे हरे–भरे और बहुल नदियो की व्यवस्था वाले हैं। साथ ही यह भी उल्लेखनीय है कि यह भूमि क्षेत्र देश के सबसे गरीब और अति–अपेक्षित वर्ग अनुसूचित जाति और जनजातियों का है जो अपने जीवन के लिए इन जंगलों और नदियों पर पूरी तरह आश्रित है।[1] देश के खनन क्षेत्र की 90 प्रतिशत जनसंख्या आदिवासी बहुल क्षेत्रो में निवास करती है। खनन पर देशी–विदेशी कम्पनियाँ सलाना अरबों रूपये का मुनाफा कमाती हैं वही आजादी के 65 साल बीत जाने के बाद भी आदिवासी समुदाय वैसे ही गरीब बने हुए हैं। वे सरकार की कई तरह की योजनाओं के लाभ से वंचित हैं और खनन के नाम पर उनके जमीन और जिन्दगी से लगातार बेदखल किया जा रहा है। 'राष्ट्रीय विकास' और 'राष्ट्रीय हित' के नाम पर जिस विकास प्रक्रिया को अंजाम दिया जा रहा है उससे यह समाज और भी उपेक्षित होता जा रहा है। अगर इन क्षेत्रों पर गौर करें तो एक अलग ही तरह की तस्वीर नजर आती है यहाँ पर बिजली, पानी, शिक्षा, स्वास्थ, भोजन जैसी मूलभूत जरूरतों से वंचित लोगों की संख्या बहुतायत में है। यदि पिछले कुछ सालों के ताजा घटनाक्रम पर गौर करें तो हम पाते हैं कि देश के विभिन्न हिस्सों में खनन कम्पनियों को लेकर निजी व सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों में लोगों ने इसके खिलाफ अपनी आवाज बुलंद की है। इस तरह की घटना को पोस्को, वेदांत, सिंधुदुर्ग, बेल्लारी आदि के सन्दर्भ में आसानी से देखा और पहचाना जा सकता है। विकास के नाम पर ये कम्पनियाँ देश में अन्धाधुंध खनन कार्य को अंजाम दे रही हैं जो कि देश की अनुसूचित जनजातियों का क्षेत्र है। वे वहां के लोगों की परिस्थिति और समस्याओं को ध्यान में रखे बगैर अन्धाधुंध खनन कर रहे हैं।[2] आज देश के अधिकतर खनन क्षेत्रों में लोग खनन गतिविधियों को लेकर तीव्र विरोध कर रहे हैं और वे अपनी जमीन नहीं देना चाहते हैं। इसी कारण यहां पर मुख्य प्रश्न यह उठता है कि भारतीय खनिज नीति कैसी हो? संस्थाएं इन जटिलताओं और खनन से जुड़े विवादित मुद्दों को लेकर किस तरह से कार्य करें।

भारतीय सविधांन की 7वीं अनुसूची में केन्द्र सूची के 54 और राज्स सूची के 23 एन्ट्री में जगह–प्रदान की गई है। खान एवं खनिज (विकास एवं विनिमय) एक्ट, 1957

1. Centre for science and Environment, (2008), State of India's Environment: The Sixths Citizen's Report 2008, Centre for science and Environment, New Delhi, p3.
2. Debaranjan Sarangi, (2004), Mining 'Development' and MNCs, Economic and Political Weekly, Vol. 39(17) 1648-1652, p.1649

(एमएमडीआर) सभी खनिज और खनिज पदार्थ के विनिमय को एक कानूनी ढांचा प्रदान करता है। इस के साथ ही खनिज पदार्थ की व्यवस्था को भारत में पर्यावरण और जंगल संरक्षण के कुछ महत्वपूर्ण कानूनों, जैसे एनवायरमेंट प्रोटेक्शन एक्ट रूल्स; 1986, द एनवायरमेंट ऐससमेंट नोटिफिकेशन; 1994, तथा फारेस्ट कंसरवेसन एक्ट (1990) और वन–अधिकार अधिनियम (2005) द्वारा संचालित करना अनिवार्य है।[3]

1957 की खनिज नीति के उपरान्त, वित्तीय, औद्योगिक तथा व्यापारिक क्षेत्रों में भारत सरकार द्वारा जुलाई 1991 में शुरू किए गए आधारभूत सुधारों के अनुसरण में मार्च 1993 में राष्ट्रीय खनिज नीति की घोषणा की गई। राष्ट्रीय खनिज नीति में खनिज क्षेत्रों में अद्यतन प्रौद्योगिकी को आकर्षित करने एवं सीधे विदेशी निवेश के साथ निजी निवेश को बढ़ावा देने पर बल देने की आवश्यकता को समझा गया। नीति में इस बात पर बल दिया गया कि खनिज प्रशासन में आधारभूत समरसता को सुनिश्चित करने हेतु खनन विनियमन एवं खनिज संसाधनों के विकास हेतु राज्य सरकारों के परामर्श के केन्द्र सरकार, वैधानिक उपाय अपनाने का कार्य जारी रखेगी ताकि खनिज संसाधनों के विकास में गति बनी रहे और यह राष्ट्रीय लक्ष्यों के अनुरूप हो।[4]

इस तरह इस नीति के उद्देश्यों को आगे बढ़ाने के लिए 1957 के अधिनियम में संशोधन किया गया है। यहां पर हम उन प्रावधानों की चर्चा नहीं करेंगे लेकिन यह अवश्य रेखांकित करेंगे कि कुल मिलाकर यह नीति अपने वास्तविक लक्ष्यों और लोगों की अकांक्षाओं को पूरा करने में असमर्थ सिद्ध हुई और जिसके कारण देश में सन् 2008 में नई खान और खनिज नीति की घोषणा की गई है।

यह नयी खनिज नीति खनिज रियायतों के लिए उनकी अंतरणीयता और रियायतों के आवंटन में पारदर्शिता, जैसे उपायों की घोषणा करती है यह देरी को कम करने के उद्देश्य से जिन्हें भारत में खनन क्षेत्र में निवेश और प्रौद्योगिक विकास के लिए देश के प्राकृतिक खनिज संसाधनों के इष्टतम उपयोग के लिए सतत ढांचे को विकसित करने और इसके साथ खनन क्षेत्र, जो सामान्यत देश के पिछड़े हुए और जनजातीय क्षेत्र में अवस्थित है, वहाँ रहने वाले लोगों के जीवन में सुधार करने की अपेक्षा करती है।

इन खनिज नीति में स्थानीय आबादी और संवेदनशील वर्गों के हितों का और आर्थिक क्रियाकलापों से प्राप्त लाभों को हिस्सेदारियों के उचित तरीकों के बांटने पर

3. K.Singh and K. Kaliranjan, (2003), 'A Decade of Economic Reform in India: The mining Sector', Resource Policy, Vol. 29, Vol. 29, No 3-4, Elsevier Science Ltd., p.4.
4. Ministry of Mines, (2008) National Mineral Policy, 2008, Ministry of Mines, Government of India, New Delhi, p.2.

ध्यान देने पर महसूस किया गया है। खनिज सम्पदा का बड़ा भाग वनाच्छादित क्षेत्रों में होने के कारण जहां जनजातीय अथवा शोषित समुदाय रहते है उनके सामाजिक–आर्थिक मुद्दे जिसमें विस्थापन, बाहरी व्यक्तियों द्वारा उन क्षेत्रों का नियंत्रण, आर्थिक निजोजन, पर्यावरणीय क्षति, आजीविका तथा आवास की हानि शामिल है, पर ध्यान दिया गया है। इस नीति में अवैध खनन को रोकने पर भी बल प्रदान किया गया है। इसके अलावा खनिज नीति में यह भी बताया गया है कि उचित खनन प्रणालियों के अंगीकरण और खनिजों की इष्टतम उपयोगिता संबंधी खनन योजना को लागू करने के द्वारा खनन क्षेत्र को प्रभावी रूप से विनियमित करने के लिए भारतीय भू–विज्ञान सर्वेक्षण, भारतीय खान ब्यूरो, भारतीय खान मंत्रालय और राज्य खनन काश्तकारी और पंजीकरण प्रणाली को भी मजबूत बनाने पर बल दिया गया है।[5]

इस सन्दर्भ को ध्यान में रखते हुए सरकार ने खान और खनिज (विकास एवं विनिमय) ऐक्ट 2011 लाया जिसमें 25% लाभांश साझा करने की भी बात की गई जिससे उन समुदायों की जमीन जिस पर खनन गतिविधि की जाएगी, लाभ मिले। इसमें राष्ट्रीय खनिज नीति 2008 के प्रावधानों को शामिल किया गया है जिसमें संपोषणीय विकास के साथ–साथ समुदाय के हितों का भी उल्लेख है और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों और निजीकरण के निवेश का भी ध्यान रखा गया है। यहां पर यह प्रश्न उठता है कि खनन से उत्पन्न होने वाली समस्याओं को ये नियम कानून किस हद तक सुलझाने में सफल रहे हैं? इसलिए कुछ लोगों द्वारा इस बिल की आलोचना भी की गई है जो कि प्रमुख चुनौतियों के रूप में मुखर हुई है। कई सामाजिक और पर्यावरण की चुनौतियाँ हमारे सम्मुख प्रस्तुत हुई हैं।

किसी राष्ट्र के विकास, आजीविका व व्यापार में खनिज संपदा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। साथ ही खनन के पर्यावरण और समाज पर होने वाले असर को इसलिए भी नियंत्रण में रखना जरूरी है ताकि खनन की प्रक्रिया से तबाही न हो। यह भी आकलन करना आवश्यक है कि खनन क्षेत्र के आसपास के गांववासियों, खेती और पशुपालन, जलाशयों व वनों पर इसका क्या असर पड़ेगा। यह सभी महत्वपूर्ण प्रश्न हैं।

खनिज जैसी चीजें खनन से निकाली जाती है पर इस प्रक्रिया में वहां के पर्यावरण और मूलनिवासियों पर बहुत बुरा असर पड़ता है। वहां भूमि, जंगल और पानी की गुणवत्ता में भी गिरावट आती है जिस पर वहां का समाज अब तक टिका हुआ रहता

5. Ministry of Mines, (2008) National Mineral Policy, 2008, Ministry of Mines, Government of India, New Delhi, p.10-12.

है। सबसे बुरी बात यह है कि आधुनिक खनन और ओद्योगिक क्षेत्र आजीविका की जरा भी भरपाई नहीं कर पाते है। उनकी जमीन छीन ली जाती है। इससे हालात और भी जटिल हो जाते हैं।[6] इसकी वजह से विस्थापन की समस्या, भयानक बीमारियां, आर्थिक असमानता, पानी की कमी आदि गंभीर समस्याएं पैदा हो जाती हैं। इन क्षेत्रों में निवासियों के लिए पर्यावरण एक विलासिता न होकर जीवन का साधन होता है।

इन क्षेत्रों में अंधाधुंध खनन होने के कारण लोगों के स्वास्थ पर बुरा असर पड़ा है। खनन के कारण जमीनों का अधिग्रहण किया गया और लोग अपनी ही जमीन से विस्थापित हुए। उन उद्योगों में नौकरी न मिलने के कारण उन्हें दूसरे शहर की ओर रुख करना पड़ता है। भारत के सन्दर्भ में देखें तो पिछले 60 सालों में औद्योगिकरण के कारण 60 मिलियन लोग विस्थापित हुए हैं।[7] इस तरह से इन क्षेत्रों में सामाजिक और सांस्कृतिक मुद्दों को नकारा गया जो कि उग्रपंथी समूहों के उदय के लिए एक प्रमुख कारण माना जाता है। सरकार की सार्वजनिक सरकारी संस्थानों के निजीकरण करने की नीति के चलते मजदूरों की भारी छटनी जारी है। झारखण्ड में सबसे ज्यादा सार्वजनिक संस्थान हैं जिनमें अकेले कोयला क्षेत्र में ढाई लाख से उपर मजदूर कार्यरत है। फलस्वरूप मजदूरों की सबसे ज्यादा छटनी झारखण्ड में हो रही है। आदिवासी यहां कोयला चोरी करने पर मजबूर होकर रोज–जेल की हवा खाता है। वह या तो मजदूर बन जाता है या फिर कोयला चोर। जब यह भी नही हो पाता है तो लौटकर अपने हिसाब चुकाने के लिए बन्दूक उठाकर जंगलों में चला जाता है। उसके सामने कोई और विकल्प ही नही बचता है। पता नही देश और समाज कब सुध लेगा? कब कोई विकल्प देगा?[8] इस तरह खनन प्रभावित क्षेत्रों में स्थानीय समुदायों का प्रकृति के साथ संबंध टूटता नजर आ रहा है। बाजार इनके जीवन में प्रवेश कर चुका है और इनके रहन–सहन को बुरी तरह से नष्ट भ्रष्ट किया है। खनन के चलते वे लोग जो जमीन के मालिक थे मजदूर बन गए हैं।[9] अतः ये सभी मुद्दे यह दर्शाते हैं कि खनन की

6. सुनीता नारायण, (2012), 'ये भला कैसा वेदांत?' गांधी–मार्ग वर्ष 52, अंक 6, नवंबर–दिसंबर गांधी शांति प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, पृ.22
7. Felix Padel and Samarendra Das,(2007), 'Agya, What do You Mean by Development?', Rakesh Kalshian,(Ed), Caterpillar and the Mahua Flower Tremors in India's Mining Fields, Panos South Asia, New Delhi, p.25
8. रमणिका गुप्ता (2008), 'किसान से कोयलाचोर', रमणिका गुप्ता (स॰) आदिवासी विकास से विस्थापन, राधाकृष्ण दिल्ली– पृ.9
9. Debaranjan Sarangi, (2004), Mining 'Development' and MNCs, Economic and Political Weekly, Vol. 39(17) 1648-1652, p.1649.

गतिविधि ने किस तरह से सामाजिक और पर्यावरण की स्थिति को अधिक विकट बना दिया है। इसके लिए बहुत हद तक राज्य भी जिम्मेदार है।

खनिज उत्खनन को लेकर देश के समक्ष इसके अभिशासन को लेकर भी कई चुनौतिया हैं। देश मे खनन–उत्खनन को लेकर कानूनों की ज्यादा समस्या नहीं है बल्कि समस्या है उनकी प्रक्रिया और क्रियान्वयन को लेकर। आमतौर पर अभिशासन के तीन प्रमुख सिद्धान्त, भागीदारी, जवाबदेही और पारदर्शिता को देखें तो खनिज उत्खनन के क्षेत्र में इन्हें पूरी तरह से नजर अंदाज किया गया है। खनिज पदार्थ के प्रशासन में शासन की असफलता ने खनिज पदार्थ क्षेत्र में टिकाऊ विकास के लक्ष्य को पाने के मार्ग में एक प्रमुख खतरे के रूप में उभरा है।

नियंत्रण का दोहरापन और राज्य और नियंत्रक एजेंसियों के विविधता का असमान बजट के कारण खनिज पदार्थ के क्षेत्र में शासकीय विफलता एक प्रमुख कारण है।[10]

इस संबंध में देश में खनिज नीतियों को लेकर खासा विवाद दिखता है और कई तरह के आरोप लगाये जाते हैं। राष्ट्रीय खनिज नीति आदिवासियों, जिन्हें उनकी जमीन में विस्थापित किया गया है, उनके राहत और पुनर्वास संबंधी विषयों पर अस्पष्ट है। अधिकतर आदिवासी उपेक्षित भू–धारक हैं जिनका कोई आधिकारिक रिकार्ड नहीं उपलब्ध है जिसके कारण वे जमीन पर अपने अधिकार को जता भी नहीं पाते है।

कुछ लोगों द्वारा आरोप लगाया जाता है कि प्रचलित नीतियाँ पूरी तरह से अंतरराष्ट्रीय खनन लाबियों द्वारा प्रभावित हैं जो राष्ट्रीय हित के खिलाफ हैं। नीति अंतर्राष्ट्रीय कम्पनियों का पक्ष लेती है और सार्वजनिक कम्पिनियों की उपेक्षा करती है।

आजकल खनन क्षेत्र में माफिया की घटना तेजी से बढ़ रही है। ये देश में कानून के शासन और लोकतांत्रिक संस्थाओं को चुनौती प्रदान कर रही इस तरह की हाल फिलहाल कर्नाटक, उड़ीसा, गोवा, झारखण्ड, छत्तीसगढ़ की घटनायें यह दिखाती हैं कि किस तरह से माफियाओं की लॉबी और राजनीतिक व्यवस्था के गठजोड़ ने खनन क्षेत्र में नियमों और कानूनों का उल्लंघन किया है जो एक मुख्य चुनौती बनकर अभिशासन के समक्ष आया है।[11] सरकार द्वारा गठित सक्सेना समिति ने बताया कि किस तरह से खनन समूह कानूनों का उल्लंघन करते हैं। पहले वे कब्जा करके गाँव

10. Planning Commission, (2012), Sustainable Emerging issues in India's Mineral Sector, Planning Commission, Government of India, New Delhi, p.221.

11. Mining Mafia- A Threat to Democracy: The Study of Gali Brothers, p.4.

के वनों को बिना किसी अनुमति के घेर लेते हैं। दूसरा, कम्पनी अपने कच्चे माल की आपूर्ति अवैध खनन के माध्यम से करती है। तीसरा, अपनी खनन की क्षमता को वे बढ़ा देती हैं जो पर्यावरण स्वीकृति के अन्तर्गत के अन्तर्गत नहीं आता है।[12] इस तरह की चुनौतियाँ अभिशासन के समक्ष हैं जिन्हें दूर करना अत्यन्त आवश्यक है। पेसा एक्ट (1996) के तहत कहा गया है कि किसी भी जमीन के स्वीकृति के लिए ग्राम सभा की स्वीकृति आवश्यक है लेकिन लगातार इस कानून का उल्लंघन किया जा रहा है। इसके साथ ही आज कानून निर्माताओं के समक्ष माइन क्लोसर को समाहित करना भी एक एक महत्वपूर्ण चुनौती है। इस प्रकार शासन की विफलता के कारण अवैध खनन, कारपोरेट वर्गों और माफियाओं को और अधिक मौका देता है जिसके कारण प्रभावित लोगों को इसकी कीमत चुकानी पड़ रही है।

उपर्युक्त वर्णनों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आज देश में खनन गतिविधि को लेकर कई तरह के प्रतिरोध और दमन घटित हो रहे हैं जिसके कारण देश की खनिज संबंधी नीतियों और संस्थाओं पर प्रश्नचिन्ह खड़ा किया जाता है जैसा कि हमने देखा कि किस तरह खनन की गतिविधियों में उसमें प्रभावित लोगों में और उन जगहों पर अराजकता को जन्म दिया और न ही उन में विस्थापित लोगों के पुनर्वास की व्यवस्था है। खनन–सम्पन्न क्षेत्र होने के बावजूद इसमें प्रभावित लोगों की स्थिति दिन–प्रतिदिन बदतर होती जा रही है। जब भी सामाजिक, आर्थिक समता की बात आती है तब भारतीय राष्ट्रीय नीति इस पर मौन रहती है। नीति की प्रस्तावना सामाजिक न्याय के मुद्दे पर पूरी तरह से मौन है जबकि इसकी जगह देश के आर्थिक विकास के लिए खनन उद्योगों की भूमिका पर अधिक ध्यान केन्द्रित किया जाता है।[13] इस सन्दर्भ में खनन अभिशासन में आज संस्थात्मक सहयोग की जरूरत है। इसके अतिरिक्त विनियमित संस्थाओं की स्वतंत्रता और पारदर्शिता के साथ विशेषज्ञता और क्षमता भी जरूरी है।[14] इस तरह ही समस्याओं से निजात पाने में सफलता मिल सकेगी। सरकार की तरफ से यह सहमति भी मिलनी चाहिये कि राष्ट्रीय खनन विनियमित और स्थानीय खनन विनियमित स्वतंत्र होकर काम करें जिससे खनन क्षेत्रों के अभिशासन में अधिक विश्वास पैदा हो सके।[15] इसके साथ–साथ यह भी जरूरी है कि स्थानीय समुदायों को

12. सुनीता नारायण, पृ.24

13. Charls, et al, (2012), Influence of South African Legislation on India's Mines and Mineral Bill: Problem and Perils, Economic and Politicaly Weekly, Vol XLVII (40), p.77.

14. Governance of Mining in India: Responding to Policy Deficits, TERI Policy Brief, Issue 5 New Delhi, p.6.

15. Ibid, p.6

खनन क्षेत्रों में अधिक से अधिक भागीदार बनाया जाए और उनकी कीमत पर खनन गतिविधि को प्रक्रिया मे लाना एक तरह से राष्ट्रीय अपराध होगा। इन सब मुद्दों को ध्यान में रखकर ही सरकार को कोई कानून या नीति बनानी चाहिए ताकि उन स्थानीय निवासियों के हितों को भी ध्यान में रखा जा सके न कि केवल कारपोरेट, माफिया, राजनीतिज्ञों के निहित स्वार्थ को। विकास की अवधारणा अधिक परिस्थितिक, संवेदनशील और न्यायपूर्ण न होने के कारण इन क्षेत्र में विभाजन और विषमता को जन्म दे रही है। आदिवासी समाज दयनीय स्थति में हैं क्या विकास का हमारा माडल उन वंचित समुदायों के लिये है इस पर मनन करना होगा। इन मुद्दों और चुनौतियों को ध्यान मे रखकर ही कार्य करना होगा। आखिरकार ये किस तरह का विकास है जिसे क्रियान्वित करने के लिए हमें आपरेशन ग्रीनहंट और सलवा जुडूम जैसी कार्यवाई करनी पड़ रही है।

* * *

21वीं सदी : पुलिस और मानवाधिकार

***डॉ. के0 एस0 द्विवेदी, आई पी एस.**

'पुलिस भली और शांति प्रिय जनता के लिए आतंक बन गयी थी'[*] और 'समाज के लिए हानिकारक कीटाणु, समुदाय के लिए आतंक और जनता के कष्टों और असंतोष का आधा कारण पुलिस थी'[2] ये बातें 1855 में नियुक्त किये गये टार्चर कमीशन के सामने कही गयी थीं। टार्चर कमीशन ने अपनी रिपोर्ट 1855 में समर्पित की, जिसे मद्रास गवर्मेंट द्वारा स्वीकार करते हुए पुलिस में सुधार की आवश्यकता उसी समय महसूस कर ली गयी थी। किंतु इसके बाद जो सुधार किये गये वे पर्याप्त साबित नहीं हुए और पुलिस में सुधारों के लिए पुलिस कमीशन 1860 की स्थापना की गयी। यद्यपि इस कमीशन के लिए जो लक्ष्य निर्धारित किये गये थे, वे बहुत आशाजनक नहीं थे। इस कमीशन के सामने ब्रिटिश इंडिया में पुलिस प्रशसन को बेहतर बनाने परंतु पुलिस पर खर्च कम करने के उपाय खोजने की शर्त रखी गयी थी। परिणामस्वरूप पुलिस एक्ट 1861 सामने आया जिसे तत्कालीन बॉम्बे प्रेसिडेंसी को छोड़कर सभी राज्यों में लागू कर दिया गया।

भारत सरकार ने 1902 में दूसरा पुलिस कमीशन गठित किया क्योंकि 1860 के पुलिस कमीशन द्वारा सुझाये गये संगठनात्मक परिवर्तन संतोषजनक एवं आशातीत परिणाम नहीं दे सके। पुलिस कमीशन 1902–1903 की रिपोर्ट के 'पॉपुलर ओपिनियन रिगार्डिंग द पुलिस' अध्याय में उल्लेख किया गया कि जनता के बीच पुलिस की छवि भ्रष्ट एवं दमनात्मक चरित्रवाली है। इतना ही नहीं यह भी कि पूरे देश में पुलिस की

---

*अपर पुलिस महानिदेशक, बिहार सरकार, पटना।

1. 'The police, was a terror to well disposed and peaceable people, none whatever to thieves and rogues.'
2. 'bane and pest of society, the terror of the community and the origin of half the misery and discontent that existed among the subjects of government'

स्थिति बिल्कुल असंतोषजनक है जिससे जन–भावनायें ही आघात नहीं हुई हैं बल्कि पुलिस के घृणित कार्यों के कारण सरकार की भी छवि खराब हुई है। यद्यपि इसका कारण पुलिस में बहुसंख्यक अशिक्षित एवं समाज के निचले तबके से आने वाले लोग बताया गया और यह उल्लेख किया गया कि इस समस्या को प्रशिक्षण की कमी, कार्य के अनुसार शिक्षा की कमी और कम वेतन ने और बढ़ा दिया है। इसी अध्याय में आगे लिखा गया है कि जनता के साथ सम्मानित व्यवहार करने, अनावश्यक कठोरता से बचने और पुलिस की क्रूरता रोकने का कोई उपाय नहीं किया गया। अधिकांश अन्वेषण अधिकारियों के भ्रष्ट एवं अक्षम होने की बात भी कही गई। पुलिस अधीक्षक के पर्यवेक्षण के काम को आवश्यकता के अनुरूप नहीं पाया गया और आयोग द्वारा यह सिफारिश की गई कि पुलिस सुधार में सबसे आवश्यक अधीक्षकों का चयन और ट्रेनिंग में बदलाव होना चाहिए। भारत सरकार ने इस कमीशन की रिपोर्ट पर 21 मार्च 1905 को आदेश जारी किये जिसमें गॉव के स्तर पर चौकीदारों को पुलिस के अधीन रखने के बजाय ग्राम प्रधान के अधीन रखा गया। अधीनस्थ पुलिस कर्मियों के चयन और प्रशिक्षण के प्रावधान के साथ–साथ असिस्टेंट सुपरिटेन्डेन्ट की नियुक्ति के प्रावधान बनाये गये तथा भारतीयों के लिए एक नये पद डिप्टी सुपरिटेन्डेन्ट का सृजन किया गया। इसके साथ–साथ क्रिमिनल इन्भेस्टीगेशन विभाग और रेलवे पुलिस की भी स्थापना की गई।

पुलिस कमीशन 1902 के आधार पर आदेशों के निर्गत होने के उपरांत 1947 तक, जब अंग्रेजो ने हमारे देश को छोड़ा, पुलिस की कार्य –पद्धति और चरित्र को बदलने वाली अन्य कोई पहल नहीं हुई। यह भी संदिग्ध है कि 1905 के कथित सुधारों के आधार पर पुलिस के दृष्टिकोण में कोई सकारात्मक परिर्वतन हुआ। भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के दौरान पुलिस की दमनात्मक कार्रवाई के कारण जनता के हृदय में पुलिस के प्रति और भी विक्षोभ पैदा हुआ। हा, यह जरूर कह सकते है कि पुलिस ने इस क्रम में सरकार के प्रति अपनी वफादारी प्रमाणित की होगी। यह बात मि0 ल्वॉयड के इस कथन से असंदिग्ध रूप से प्रमाणित होती है –

'भारतीय पुलिस से श्रेष्ठ पूरे साम्राज्य में कोई बल नहीं है। सरकार की सेवा वफादारी से करते हुए वे शांति व्यवस्था संचारित करते हैं जिसके विना कोई राजनैतिक व्यवस्था बरकरार नहीं रह सकती हैं।'[3]

3. 'No force in the empire stands higher than the Indian Police. They maintain, in loyal support of the government they serve, the peace and order without which no political structure can subsist'.

15 अगस्त 1947 को देश स्वतंत्र हुआ लेकिन संगठनात्मक विकास की दृष्टि से पुलिस में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हो सका और 1861 में पुलिस को जो स्वरूप प्रदान किया गया था तथा 1905 में जो कमोवेश परिवर्तन हुए थे, स्थिति वहीं तक सीमित रही। हा, बाद के वर्षों में पुलिस बल की संख्या, सशस्त्र वाहिनियों की संख्या अवश्य बढ़ी और पुलिस अनुसंधान में तकनीकी तरीकों का समावेश हुआ, किंतु जनता के दृष्टिकोण से पुलिस में कोई दृश्यमान परिवर्तन नहीं हुआ। अतः जनता का दृष्टिकोण न तो पुलिस के प्रति बदला और न पुलिस का जनता के प्रति। एक बात अवश्य बहुत जोर–शोर से सामने आयी कि पुलिस के अनुशासन में गिरावट आ रही है, जिसका कारण पुलिस के काम में राजनीतिक हस्तक्षेप है। अपराधों में वृद्धि हुई और जनसुरक्षा भी घटी, लेकिन पुलिस को उत्क्रमित करने के बजाए इनके अन्य कारण खोज कर संतोष कर लिया गया। अंग्रेजी हुकूमत के दौरान पुलिस पर कम बजट रखा जाता था, प्रशिक्षण तथा विधि–विज्ञान आदि विकसित करने पर भी बहुत ध्यान नहीं था जो बाद में किया गया। सी0आर0पी0एफ0, सी0आईएस0एफ0, बी0एस0एफ0, सी0बी0आई0 आदि विशिष्ट पुलिस संगठनों का निर्माण एवं सृजन भी 20वीं सदी के उत्तरार्ध में हुआ। इस सबके बावजूद एक कमी कहीं न कहीं रह गयी है, जिसके कारण हर व्यक्ति में यह भावना है कि क्या भारत की लोकतांत्रिक व्यवस्था में जन–भावना के अनुरूप पुलिस लोकतांत्रिक बन सकी है? जवाहर लाल नेहरू ने 18 अक्टूबर 1958 को माउन्ट टाबू में आई0पी0एस0 प्रशिक्षुओं को संबोधित करते हुए इसी समस्या की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए कहा था कि, 'यह सर्वप्रथम याद रखने योग्य बात है कि लोकतांत्रिक राज्य की पुलिस उन राज्यों की पुलिस से भिन्न होती है जो लोकतांत्रिक नहीं हैं।'[4]

भारत की स्वतंत्रता के बाद पुलिस जो क्रिमिनल जस्टिस सिस्टम का सबसे दृश्यमान अंग है उसकी उन्नति के बजाय नैतिक एवं पेशागत अवनति के प्रति लोग ज्यादा चिंतित हुए । कई विद्वानों ने यह मत दिया कि राज्य की शक्ति चुनाव जैसे वैधानिक प्रावधान और राज्य के दंडात्मक तंत्र से सशक्त होती है। पुलिस राज्य शक्ति का सर्वाधिक दृष्टिगोचर होने वाला दंडात्मक तंत्र का अंग है। पुलिस को विधि–व्यवस्था संचारित करने और सुरक्षा बनाये रखने का जो काम दिया गया है, वह राज्य की शक्ति का प्रतीक है। इस काम को सम्पन्न करने में पुलिस से अपेक्षा है कि वह सभी नागरिकों के लिए सुरक्षा और विधि का शासन सुनिश्चित करेगी। शासन व्यवस्था में पुलिस की एक महत्वपूर्ण भूमिका है जो सुरक्षा व्यवस्था के माध्यम से सामाजिक, आर्थिक एवं

4. 'That it is the first thing to remember that in a democratic State the police are different, in a sense, from the police in a State that is not democratic.'

राजनैतिक स्थिति को भी प्रभावित करती है। भारत एक विविधता पूर्ण राज्य है जिसमें कई धर्म, जाति, भाषा, संस्कृति, रंग–रूप के लोग रहते है। अतः भारत में विधि के शासन को संचारित करने वाली लोकतांत्रिक पुलिस की प्रासंगिकता अधिक है। यद्यपि लोकतंत्र में पुलिस को एक बल के बजाय सेवा होना चाहिए जो सभी व्यक्तियों की सुरक्षा, स्वतंत्रता एवं अधिकार सुनिश्चित करें लेकिन विडम्बना यह है कि पुलिस के देखने मात्र से लोगों में भय की भावना व्याप्त हो जाती है। इसका कारण यह प्रतीत होता है, कि पुलिस का अधिकांश प्रयोग लोगों को नियंत्रित करने के उद्देश्य से भय पैदा करने के लिए किया जाता है। कठोर भाषा का प्रयोग करना या अभियुक्त आदि के साथ मारपीट करना पुलिस के स्वभाव का अंग माना जाता है। हम 1947 में उपनिवेशवाद से मुक्ति पा चुके हैं परंतु हमारी पुलिस अभी भी औपनिवेशिक मानी जाती है और यह समझा जाता है कि पुलिस का काम नियंत्रण, दमन और विनियमन है न कि सेवा।

1902 के नेशनल पुलिस कमीशन के बाद 1978 में पुलिस कमीशन का गठन हुआ, कई राज्यों ने पुलिस कमीशन बनायें उनके प्रतिवेदन समर्पित हुए किंतु समेकित रूप से उनपर विचार नहीं हो सका। पुलिस की भूमिका पर कभी कुछ पीड़ितों ने आवाज उठायी तो कभी स्वयं पुलिस ने संगठनात्मक स्वतंत्रता के लिए माँग के रूप में पुलिस सुधार की बात कही। किन्तु इस प्रक्रिया में भी पुलिस को लोकतांत्रिक बनाने के लिए पुलिस की नागरिकों द्वारा मोनीटरिंग के विषय पर कभी कोई बहस नहीं हुई। जनसामान्य पुलिस के आलोचक होने के बावजूद पुलिस में सुधार से बहुत सरोकार नहीं रखते हैं। मात्र कुछ सिविल संगठनों यथा कॉमनवेल्थ ह्यूमन राइट्स इनीसिएटिव (CHRI)', द पीपलस यूनियन फॉर सिविल लिवर्टीज आदि द्वारा तथा कुछ अन्य मानव अधिकार संगठनों ने पुलिस सुधार की बात कही है।

भारत में वर्तमान स्वरूप में स्थित प्रशासन एवं पुलिस व्यवस्था की स्थापना ईस्ट इंडिया कम्पनी के द्वारा की गयी थी जिसे बाद में ब्रिटिश सरकार द्वारा और मजबूती से अंगीकार किया गया। अतः निष्कर्ष रूप में इसका चरित्र दमनात्मक ही रहा। केवल पुलिस ही नहीं भारत के पूरे क्रिमिनल जस्टिस सिस्टम का स्वरूप औपनिवेशक है क्योंकि इस विषय से संबंधित सभी मूल कानून 1857 के भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के बाद अवतरित हुए। पुलिस एक्ट 1861 में बनाया गया। भारत की दंड विधान संहिता 1860 में, दंड प्रक्रिया संहिता 1862 में, भारतीय साक्ष्य अधिनियम 1872 में और क्रिमिनल ट्राईब्स एक्ट 1868 में निर्मित हुआ तथा ये ही अधिनियम भारत के क्रिमिनल जस्टिस सिस्टम की नींव है। यद्यपि बाद में क्रिमिनल ट्राईब्स एक्ट और भरतीय दंड प्रक्रिया

संहिता में परिर्वतन हुआ किंतु इनमें पुलिस की भूमिका से संबंधित जो प्रावधान थे उनमें कोई बदलाव नहीं आया अतः पुलिस की भूमिका यथावत रही। 1902–1903 में अंग्रेजों द्वारा बनाये गये पुलिस कमीशन की चर्चा ऊपर की जा चुकी है और यह स्पष्ट किया जा चुका है कि इसके बावजूद पुलिस में काई उल्लेखनीय सुधार नहीं हुआ। यह दुखद है कि 1904 में पुलिस कमीशन ने अपने प्रतिवेदन में भारतीय पुलिस को अक्षम, त्रृटिपूर्ण प्रशासन और संगठन वाला बताते हुए भ्रष्ट एवं दमनकारी कहा था[5] और आज 100 वर्ष से अधिक बीत जाने के बाद भी इस धारणा में कोई परिवर्तन नहीं देखा जा रहा है।

अब जब हम पुलिस के बदलाव की बात करते है तो हमारी अपेक्षा एक लोकतांत्रिक पुलिस की है। लोकतांत्रिक पुलिस का क्या स्वरूप होगा यह जानना आवश्यक है। लोकतंत्र में पुलिस केवल एक कानून प्रवर्तन अभिकरण नहीं रह सकती बल्कि इसे सेवामूलक संगठन बनाने की आवश्यकता है। सेवामूलक संगठन बनाने के लिए पुलिस को विधि के शासन के साथ–साथ जनता के प्रति उत्तरदायी होना अनिवार्य है। पुलिस ही नहीं भारतीय लोकतंत्र के लिए भी यह एक चुनौती है। भारतीय पुलिस जनता के प्रति उत्तरदायी नहीं बनायी जा सकी है। पुलिस में मनमानी करने का स्वभाव भी विद्यमान है, जो लोकतंत्र और विधि के शासन दोनों ही सिद्धातों के प्रतिकूल है।

भारत सरकार के गृह मंत्रालय ने 4 जुलाई 1985 को भारतीय पुलिस में सुधार के लिए एक आचार संहिता परिचालित की है जिसमें निम्नांकित निर्देश दिए गये हैः–

1) पुलिस को भारत के संविधान के प्रति अटूट निष्ठा रखनी चाहिए और उसके द्वारा दिए गए आश्वासन के अनुरूप नागरिकों के अधिकारों का सम्मान और उनकी रक्षा करनी चाहिए।

2) पुलिस को किसी भी विधि निर्मित कानून के औचित्य अथवा आवश्यकता पर संशय नहीं करना चाहिए। उनसे बिना भय अथवा पक्षपात, वैमनस्य अथवा प्रतिशोध भाव के कानून को दृढतापूर्वक तथा निष्पक्षतापूर्वक लागू करना चाहिए।

3) पुलिस को अपने अधिकारों और कार्यों की सीमाओं का ज्ञान होना चाहिए तथा आदर करना चाहिए। उन्हें न्यायपालिका के कार्यों में अनाधिकार हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए अथवा अनाधिकार हस्तक्षेप करने का आभास नही देना चाहिए तथा प्रकरणों पर निर्णय देने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए। उन्हें न तो किसी व्यक्ति के पक्ष में किसी से प्रतिशोध लेना चाहिए और न ही दोषी को दण्ड देना चाहिए।

5. 'The police force is far from efficient; it is defective in training and organization; it is inadequately supervised; and it is generally regarded as corrupt and oppressive.'

4) कानून का पालन करवाने में अथवा व्यवस्था बनाए रखने में पुलिस को समझाने–बुझाने, सलाह तथा चेतावनी के तरीके काम में लाने चाहिएं । इनके असफल हो जाने पर तथा शक्ति का प्रयोग अपरिहार्य हो जाने पर परिस्थितियों की मांग के मुताबिक अल्पतम मात्रा में ही बल प्रयोग करना चाहिए।

5) पुलिस का प्राथमिक कर्त्तव्य अपराध तथा अव्यवस्था को रोकना है। पुलिस को यह समझना चाहिए कि उसकी दक्षता की कसौटी इन दोनों का अभाव है, न कि इनसे निपटने के लिए की गई पुलिस कार्रवाई का प्रत्यक्ष प्रमाण।

6) पुलिस को यह ज्ञात होना चाहिए कि वे जनता के सदस्य है, अन्तर केवल इतनी ही है कि समाज के हित में तथा उसकी ओर से उन्हें उन कर्त्तव्यों पर पूर्णकालिक ध्यान देने के लिए नियुक्त किया गया है, जिनका निर्वाह करना सामान्यतः प्रत्येक नागरिक के लिए आवश्यक है।

7) पुलिस को यह समझना चाहिए कि उसके कर्त्तव्यों का कुशलतापूर्वक निर्वहन, उस तत्पर सहयोग की मात्रा पर निर्भर करेगा जो वह जनता से प्राप्त करती है साथ ही यह सहयोग अपने आचरण तथा कार्यों का सार्वजनिक अनुमोदन प्राप्त करने, सार्वजनिक आदर तथा विश्वास अर्जित करने एवं उसे बनाए रखने की उसकी योग्यता पर ही निर्भर होगा।

8) पुलिस को सभी लोगों के प्रति संवेदनशील तथा विचारवान होना चाहिए और उनके कल्याण का सदा ध्यान रखना चाहिए। उन्हें लोगों की संपत्ति तथा सामाजिक प्रतिष्ठा का विचार किए बिना सभी को वैयक्तिक सेवा तथा मित्रता अर्पित करने और आवश्यक सहयोग प्रदान करने के लिए सदा तत्पर रहना चाहिए।

9) पुलिस को आत्महित से बढ़कर कर्त्तव्य हित को समझना चाहिए। चाहे कैसा भी संकट अथवा उत्तेजना हो, उसे शांत तथा प्रसन्नचित रहना चाहिए तथा दूसरों के जीवन की सुरक्षा हेतु जीवन का उत्सर्ग करने को तत्पर रहना चाहिए।

10) पुलिस को सदा सौजन्यशील तथा सुसंस्कृत होना चाहिए। उसे विश्वसनीय तथा अनासक्त होना चाहिए। उसमें आत्मगौरव एवं साहस होना चाहिए और उसे अपने चरित्र तथा जनता के विश्वास को विकसित करना चाहिए।

11) उच्चतम श्रेणी की निष्ठा पुलिस की प्रतिष्ठा का मूलभूत आधार है। इसको समझते हुए पुलिस को अपने व्यक्तिगत तथा शासकीय दोनों ही स्तरों पर आत्मसंयम विकसित करना चाहिए, विचार एवं कार्य में सत्यनिष्ठ एवं ईमानदार रहना चाहिए जिससे कि जनता उन्हें अनुकरणीय नागरिक समझ सके।

12) पुलिस को यह समझना चाहिए कि वह केवल अनुशासन का उच्चतर स्तर, वरिष्ठ अधिकारियों के प्रति अक्षुण्ण आज्ञाकारिता तथा पुलिस बल के प्रति हार्दिक निष्ठा बनाए रखकर और अपने आपको सतत प्रशिक्षण तथा तैयारी की अवस्था में रखकर ही प्रशासन एवं देश के प्रति अपनी उपयोगिता बढ़ा सकती है।

13) धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक राज्य का सदस्य होने के नाते पुलिस को वैयक्तिक पूर्वाग्रहों से ऊपर उठने का लगातार प्रयास करते रहना चाहिए और धर्म, भाषाई और क्षेत्रीय या जातीय भिन्नताओं से हटकर भारत के सभी लोगों में मैत्रीभाव और सामान्य भाईचारे की भावना को बढ़ावा देना चाहिए और समाज में नारी की प्रतिष्ठा के प्रति और पिछड़े हुए वर्गों के प्रति अनादर की प्रथा को समाप्त करना चाहिए।

पुलिस सुधार के लिए अभी तक किये गये प्रयास या तो प्रशासनिक थे अथवा निदेशक प्रकृति के जिनमें पुलिस कर्मियों को शपथ की भाँति कानून एवं लोकतंत्र के प्रति निष्ठा की बातें कही गयी थीं। ये उपाय बहुत कारगर प्रमाणित नहीं हुए।

पुलिस की स्थिति में कोई सुधार न होते देख कर न्यायपालिका ने इस विषय में जोरदार हस्तक्षेप किया। इस संबंध में विनीत नारायण बनाम भारत संघ (ए0आई0आर0 1998 उच्चतम न्यायलय, 889) तथा प्रकाश सिंह बनाम भारत संघ (2006) के मामलों में माननीय उच्चतम न्यायलय द्वारा दिये गये निर्देश–निर्णय बहुत महत्वपूर्ण हैं।

विनीत नारायण बनाम भारत संघ में आरोप था कि हवाला मामले में प्रभावशाली व्यक्तियों के शामिल होने के कारण सी0बी0आई0 तथा राजस्व विभाग ने मामले की यथोचित जाँच नहीं की। माननीय उच्चतम न्यायलय ने केन्द्र सरकार को निर्देश दिया कि भारत सरकार राज्य सरकारों के साथ मिलकर केवल राज्य के पुलिस प्रमुख ही नहीं बल्कि पुलिस अधीक्षक एवं उनसे ऊपर के सभी अधिकारियों की नियुक्ति, कार्यकाल, स्थानान्तरण एवं पदस्थापन के संबंध में युक्ति – संगत प्रक्रिया स्थापित करेगी।

प्रकाश सिंह बनाम भारत संघ के मामले में पुनः उच्चतम न्यायालय ने पुलिस सुधार की शीघ्र आवश्यकता बताते हुए भारत सरकार को पुलिस पदाधिकारियों के स्थानान्तरण, पदस्थापन तथा कार्यकाल आदि के विषय में पारदर्शी व्यवस्था स्थापित करने के साथ–साथ पुलिस को राजनैतिक दबाव से मुक्त रखने हेतु व्यवस्था सुनिश्चित करने का निर्देश दिया। माननीय न्यायलय ने यह भी निर्देश दिया की जबतक राज्यों द्वारा अपने पुलिस अधिनियम की रचना नहीं कर ली जाती है तबतक वे माननीय

उच्चतम न्यायालय द्वारा दिये गये दिशा निर्देश के अनुरूप पुलिस व्यवस्था संचालित करेगें। माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्देश पर भारत सरकार ने 2006 में पुलिस एक्ट ड्राफ्टींग कमिटी गठित की जिसने 25 अगस्त 2006 को पुलिस अधिनियम की रूप–रेखा समर्पित की। माननीय उच्चतम न्यायलय ने प्रारूप पुलिस अधिनियम की रूप–रेखा जारी करते हुए पुलिस सुधार से संबंधित निम्नांकित सात निर्देश जारी कियेः–

1. राज्य सरकारें एक राज्य सुरक्षा कमीशन गठित करेंगी जो पुलिस के लिए नीति–निर्धारण करेगी। इससे राज्य सरकार का पुलिस पर अनावश्यक दबाव नहीं रहेगा।
2. राज्य के पुलिस महानिदेशक का चुनाव वरीयतम तीन अधिकारियों में से किया जायेगा।
3. थाना प्रभारी एवं उससे ऊपर के क्षेत्रीय अधिकारियों का कार्य–काल कम से कम दो साल का होगा।
4. पुलिस को अनुसंधान तथा विधि–व्यवस्था इन दो भागों में विभक्त किया जायेगा।
5. प्रत्येक राज्य में एक पुलिस स्थापना परिषद होगी जो पुलिस अधिकारियों का स्थानान्तरण, पदस्थापन आदि निर्धारित करेगी।
6. जिला स्तर पर पुलिस शिकायत प्राधिकार गठित किया जायेगा जो पुलिस के विरूद्ध शिकायतों की जाँच करेगा।
7. केन्द्र सरकार ऐसे राष्ट्रीय सुरक्षा कमीशन की स्थापना करेगी जो केन्द्रीय संगठनों में पुलिस पदाधिकारियों के पदस्थापन के लिए पैनल तैयार करेगा।

प्रकाश सिंह के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय का हस्तक्षेप एवं पुलिस सुधार के लिये उपाय संबंधी निर्देश इस दिशा में लिया गया एक अभूतपूर्व कदम है। माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्देश के आलोक में अब तक 15 राज्यों ने पुलिस अधिनियम का गठन कर लिया है। इन पुलिस अधिनियमों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि अधिकांश मामलों में पेशागत स्वतंत्रता, पुलिस को और अधिक अधिकार, विभिन्न अधिकारियों के निश्चित कार्यकाल, राजनैतिक दबाव से बचने के उपाय संबंधी प्रावधान बढ़चढ़ कर किए गए हैं किन्तु जनता के प्रति पुलिस की जबाबदेही स्थापित करने की प्रक्रिया संबंधी प्रावधान नगण्य हैं। लोकतांत्रिक पुलिस का लक्ष्य एवं साधन

अर्थात् प्रक्रिया दोनों लोकतांत्रिक होनी चाहिए। अतएव लोकतांत्रिक पुलिस का स्वरूप लोक–सेवा, लोक–उत्तरदायित्व और भारत के संविधान और विधि का शासन संचारित करने वाला एवं सभी व्यक्तियों के लिए सेवा, सुरक्षा और मानवधिकार सुनिश्चित करने वाला होना चाहिए। अतः मानवाधिकार संबंधी संस्थाओं एवं समीक्षकों ने प्रस्तावित पुलिस अधिनियम में सुधार कर जन उत्तरदायित्व एवं नागरिक अधिकार सुनिश्चित करने हेतु संस्थागत तंत्र की स्थापना संबंधी प्रावधान करने का सुझाव दिया है।

पुलिस का कार्य प्रायः निषेधात्मक एवं नियामक है और उसका स्वाभाविक संबंध व्यक्तियों के जीवन, स्वतंत्रता और गरिमा से है। ये विषय मानवाधिकार के भी हैं, इसलिए यदि पुलिस के स्तर से कहीं अपराध नियंत्रण या विधि–व्यवस्था संधारण में निर्धारित प्रक्रिया का उल्लंघन होता है तो मानवाधिकार का उल्लंघन बन जाता है। किंतु लोकतांत्रिक व्यवस्था में सरकार के किसी भी अभिकरण द्वारा मानव अधिकारों का उल्लंघन क्षम्य नहीं है। पुलिस के मामले में यह बात और भी कठोरता से लागू होती है क्योंकि पुलिस अपने काम में बिना जन समर्थन के सफलता नहीं प्राप्त कर सकती। अतः पुलिस के द्वारा मानवाधिकारों के उल्लंघन का एक परिणाम यह होता है कि पुलिस को जनता का सहयोग प्राप्त नहीं होता है और पुलिस अपने काम को कुशलता पूर्वक नहीं कर पाती है। लोकतंत्र में विधि का शासन निहायत मौलिक मूल्य है, जिसे किसी भी व्यक्ति द्वारा अनदेखा नहीं किया जा सकता है। व्यवहार में विधि का शासन समानता और शक्तियों के मनमाने प्रयोग के निषेध के रूप में घटित हुआ है। भारत के संविधान में विधि के शासन के तीन मौलिक तत्व हैं जो पुलिस पर भी लागू होते हैं। पहला तत्व विधि के समक्ष समानता है जिसे भारत के संविधान की प्रस्तावना में परिस्थिति और अवसर की समानता सुनिश्चित करने हेतु परिभाषित किया गया है तथा यह भारतीय संविधान का मूल ढाँचा है, इसे संविधान के अनुछेद 14,15,16,17 एवं 18 में विस्तारित किया गया है। दूसरा तत्व शक्तियों के मनमाने प्रयोग के विरूद्ध है, जो राज्य को पारदर्शिता, स्वच्छता एवं युक्तियुक्त ढंग से व्यवहार करने के लिए बाध्य करता है। 'विधि का शासन' का तीसरा तत्व है यह कि कानून द्वारा भी भारतीय संविधान द्वारा प्रत्याभूत मूल मानवाधिकारों का न्यूनीकरण नहीं किया जा सकता है।

पुलिस के पास विस्तृत विवेकाधीन शक्तियाँ हैं जिनके कारण विधि के शासन के उपर्युक्त तत्वों के उल्लंघन की काफी संभावना बनी रहती है। इसलिए पुलिस को जनता के प्रति उत्तरदायी बनाने का प्रश्न उठता है जिससे राज्य और जनता दोनों के अधिकारों का संरक्षण हो सके। पुलिस के जनता के प्रति उत्तरदायित्व का संबंध कानूनी

रूप से प्रर्वतनीय नियमों से है। यदि पुलिस को जनता के प्रति उत्तरदायी बना दिया जाय तो पुलिस एक बल न होकर सेवा संगठन का रूप ले लेगी और सेवा संगठन के रूप में पुलिस जनता, कानून और संगठन के प्रति उत्तरदायी होगी। पुलिस को जनता कानून और संगठन के प्रति जिम्मेवार बनाकर हम जन–सामान्य के मौलिक एवं मानव अधिकारों का संरक्षण सुनिश्चित कर सकते हैं। इस दिशा में निरन्तर प्रयास किये जा रहे हैं यद्यपि इसके परिणाम सामने आना बाकी है किन्तु हम आशान्वित है कि न्यायपालिका के निर्देश के आलोक में जनता के सहयोग से 21वीं सदी में हम इस लक्ष्य को प्राप्त कर लेंगे।

* * *

आदिवासी परिवारों को अमानवीय जीवन जीने के लिए मजबूर करता मौताणा

*डॉ. लालाराम जाट'

प्रत्येक समाज की सरचंनात्मक व्यवस्था के लिए प्रथा, परम्परा, रूढ़ियाँ एवं सामाजिक रीति रिवाज अपरिहार्य अंग हैं। आधुनिक समाज के लिए संवैधानिक व्यवस्था एवं नियम भी उतने ही प्रासंगिक हैं। जब ये प्रथा एवं परम्परा समाज के लिए घातक/हानिकारक हो जाती है तो हम कुप्रथा कहना शुरू कर देते है। ऐसी कुप्रथाओं को खत्म करने का संवैधानिक दायित्व सरकार एवं समाज का होता है। दक्षिणी राजस्थान के आदिवासी समुदाय में परिवार के सदस्य की अप्राकृतिक मौत पर एक निश्चित क्षतिपूर्ति लेने की मौताणा प्रथा वर्षों से चली आ रही है। जिसे वर्तमान समय में मौताणा कुप्रथा के रूप में देखा जा रहा है, जो काफी हद तक सही भी है। इस मौताणा कुप्रथा के परिणामस्वरूप आज कई आदिवासी परिवारों को अमानवीय जीवन जीना पड़ रहा है। उन्हें जंगलों में बर्बरतापूर्ण जीवन जीना पड़ता है। भूखे–प्यासे अपनी जान बचानी पड़ती है। अपने जीवन की संचित चल –अचल सम्पत्ति को खोना पड़ता है। वर्षों से जिसे मकान को सुन्दर बनाया है उसे उग्र भीड़ द्वारा आग के हवाले कर दिया जाता है। यदि इन चल–अचल सम्पत्ति से मोह रखा तो उसे जान भी देनी पड़ सकती है। कई दिनों एवं वर्षों तक उन्हें जंगल एवं रिश्तेदारों के यहाँ शरण लेनी पड़ती है। इन आदिवासी परिवारों की ऐसी स्थिति मौताणा के लिए किये जाने वाले चढ़ोतरो एवं मौताणा व्यवस्था के कारण हो रही है।

दक्षिणी राजस्थान के उदयपुर, डुंगरपुर, बांसवाड़ा एवं पाली, सिरोही, राजसमन्द को कुछ क्षेत्र में जनजाति समुदाय निवास कर रही है। उन क्षेत्रों के जनजातीय समुदाय

*सहायक आचार्य, उदयपुर स्कूल ऑफ सोशल वर्क, जनार्दन राय नागर राजस्थान विद्यापीठ विश्वविद्यालय, उदयपुर

में कई परम्पराएं एवं प्रथाएँ प्रचलित हैं। इन जनजाति समुदाय की परम्परागत व्यवस्था का एक भाग सामाजिक न्याय व्यवस्था भी है। सामाजिक न्याय व्यवस्था की जिम्मेदारी फलों एवं पालों के गडडा, गमेती एवं भाजकड़िया को सौंपी गयी है। आज भी इस समुदाय का सामाजिक न्याय व्यवस्था में काफी विश्वास है। छोटे–छोटे मामलों का निपटारा या निस्तारण सामाजिक न्याय व्यवस्था के भीतर किया जाता है। आदिवासी व्यक्ति अपराध एवं उसके आरोप से न्यायालय से चाहे बरी हो जाए या सजा काट ले परन्तु सामाजिक स्तर पर निस्तारण के बिना वह आरोप या सजा से मुक्त नहीं हो सकता है। हमारे लिए कुछ परम्परागत व्यवस्था को समझना नितान्त आवश्यक है जो इस प्रकार हैः–

1. **पाल प्रबंन्धन व्यवस्था** :– जनजातीय परिवारों को मिलाकर एक फलां का निर्माण होता है जिसका अपना एक नाम होता है। यह नामकरण सामन्यतः उपला फलां, निचला फलां, गमेती फलां, डामोर फलां, भील फलां आदि आदि नामों से जाने जाते हैं। कई फलों से मिलकर एक पाल का निर्माण होता है। इस पाल का एक मुखिया होता है जिसे गमेती कहा जाता है। इसकी अध्यक्षता में बैठक का आयोजन कर विवादों का निपटारा किया जाता है।

2. **सामाजिक न्याय व्यवस्था** :– फलों के अंतर्गत विवादों को फलां/पाल स्तर पर निपटा दिया जाता है तथा पालों के मध्य सीमा को लेकर विवाद होता है तो बारापाल की बैठक में निपटारा किया जाता है। विवादों के निपटारे के लिए निम्न स्तर से उच्च स्तर तक एक कड़ी बनायी हुयी है।

3. **दण्ड एवं जुर्माना व्यवस्था** :– आपसी विवादों का निस्तारण स्थानीय स्तर के सामाजिक ढांचें में किया जाता है। विवादों का निस्तारण सामाजिक समझौतों, दण्ड व जुर्माना के माध्यम से किया जाता है। आपसी मनमुटाव एवं छोटे वादों का निस्तारण समझौते के माध्यम से कर दिया जाता है तथा जानमाल की हानि के वादों का निस्तारण जुर्माना एवं दण्ड़ निर्धारित करके किया जाता है।

4. **सम्पत्ति बंटवारा व्यवस्था** :– जनजातीय समुदाय में सम्पत्ति का बंटवारा पुरुषों के मध्य किया जाता है तथा यदि मृत व्यक्ति की पत्नी जिंदा है तो उसका भी अधिकार रहता है। सम्पत्ति का बंटवारा परिवार, गड़ड़ा गमेती की उपस्थिति में आपसी सहमति से बराबर हिस्से में बांट कर किया जाता है।

5. **गोद लेने की व्यवस्था** :– जिस परिवार में पुरुष उत्तराधिकारी नहीं है उस परिवार में किसी अन्य परिवार/रिश्तेदार के पुत्र को गोद लेने की प्रथा प्रचलित है। गोद लेने की परम्परा का निर्वाहन मुखिया की उपस्थिति में किया जाता है।

6. **गड्डा – गमेती व भांझगडिया की व्यवस्था** :– जनजाति समुदाय सामाजिक न्याय व्यवस्था का जिम्मा इन गड्डा–गमेती व भांझगडिया के हाथ में होता हैं। हर फलें में एक गड्डा व भांझगडिया अवश्य होता है। आज भी गड्डा–गमेती व भांझगडिया के नेतृत्व में वादों का सुलटारा किया जाता है।

मौताणा :– आदिवासी समुदाय की पहचान उसकी सामाजिक न्याय की परम्परागत व्यवस्था से होती रही है। मौताणा व्यवस्था का सम्बन्ध भी सामाजिक न्याय व्यवस्था के साथ था। आधुनिक समाज में बीमा व्यवस्था का जो प्रचलन है वह आदिवासी समुदाय में वर्षों–वर्षों से चली आ रही मौताणा प्रथा का एक स्वरूप है। अब ये क्षतिपूर्ति की मौताणा प्रथा एक कुप्रथा के रूप में स्थापित हो गई है।

आदिवासी समुदाय में किसी पुरुष, महिला एवं बच्चे की अप्राकृतिक मृत्यु हो जाने पर उस क्षति की क्षति पूर्ति हेतु चढ़ोतरा किया जाता है तथा एक अनिश्चित राशि पर दोनों पक्ष के मध्य समझौता तथा लेन देन होता है। इसे आदिवासी समुदाय में मौताणा कहा जाता है। मौताणा एक प्रकार का हर्जाना है जो आरोपित व्यक्ति या उसके परिवार या नातेदार को देना पड़ता है। अतः मौताणा समाज द्वारा दिया गया प्रस्तावित दण्ड अर्थात जुर्माना है। जो आरोपित पक्ष द्वारा दिया जाता हैं।

मौताणा एक कुप्रथा :– आदिवासी समुदाय में सामाजिक समस्याओं के निराकरण के लिए एक परम्परागत सामाजिक न्याय व्यवस्था आज भी प्रचलित है। इस सामाजिक न्याय व्यवस्था की जिम्मेदारी गड्डा, गमेती एवं भाजंगडियों द्वारा निर्वाह की जाती है। आदिवासी समुदाय के गड्डा, गमेती एवं भांजगडिया वंशानुगत आधार पर बनते हैं। इनकी योग्यता में शिक्षा का कोई महत्व नहीं होता है। अकसर देखा गया है कि गड्डा, गमेती एवं भाजगडिया अशिक्षित होते हैं तथा जो लोग शिक्षित हैं उनमें भी अन्धविश्वास एवं अतार्किक बातों एवं तथ्य पर ज्यादा विश्वास होता है। क्षतिपूर्ति को लेकर समाज में स्थापित प्रथा को इन निहित स्वार्थी गड्डा गमेतियों एवं भांजगड़ियों द्वारा एक कुप्रथा के रूप में ला खड़ा कर दिया है। मौताणा को कुप्रथा इसलिए कहा जाता है क्योंकि इस व्यवस्था में किसी भी प्रकार के वैज्ञानिक तर्क, वास्तविक तथ्य एवं आधुनिक न्याय व्यवस्था से परे हैं। इसे हम निम्न कारणों से कुप्रथा कह रहे हैं :–

1) दोहरी सजा की व्यवस्था :– मौताणा एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें आधुनिक न्याय व्यवस्था का कोई वजूद नहीं है। चाहे व्यक्ति न्यायालय से बरी हो गया हो; चाहे न्यायालय ने उसे दण्डित कर दिया हो तथा उसकी सजा उसने पूरी कर ली हो परन्तु वह व्यक्ति तब तक अपराध या उसके आरोप से मुक्त नहीं हो सकता है जब तक उसे

समाज के गड्डा–गमेती एवं भांजगड़ियों द्वारा निर्धारित जुर्माना का भुगतान या आरोप से मुक्त नहीं कर दिया जाता है। इस तरह एक व्यक्ति एक अपराध के लिए या अपराध के आरोप पर उसे दो तरह की न्याय व्यवस्था से गुजरना पड़ता है। अतः यह व्यवस्था प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्तों के खिलाफ है।

2) अमानवीय एवं अतार्किक व्यवस्था :– मौताणा एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें सत्य एवं सही तथ्यों पर कई बार चर्चा नहीं होती है। इसमें मानवीयता का भाव नहीं होता है। यदि व्यक्ति मौताणा देने में असमर्थ है तो हत्या के बदले हत्या करने की बात को मजबुती से रखा जाता है। यदि मृत्यु प्राकृतिक है तब भी यदि आरोप हत्या का है तो उसे मौताणा देने के लिए मजबूर कर दिया जाता है। कई बार मौताणा का मामला बनाने के लिए मिथ्या तर्क लगा दिया जाता है कि आरोपी ने जादू टोना करके हत्या कर दी है। इस तरह के अवैधानिक एवं मिथ्या तर्क के आधार पर मौताणा ले लिया जाता है। चाहे मृत्यु को चिकित्सक द्वारा उसे प्राकृतिक मृत्यु ही क्यों नहीं करार दिया हो। मौताणा के समय व्यक्ति की आय, क्षमता एवं चल–अचल सम्पत्ति को ध्यान में रखकर राशि तय नहीं की जाती है। आरोपी पक्ष की गैर मौजूदगी में ही समस्त आरोप का सत्यापन कर दिया जाता है। कहीं कहीं पक्ष रखने एवं मौका मुआवना करने का नाटक भी कर दिया जाता है। राशि का निर्धारण गड्डा, गमेती एवं भांजगड़िया की खातेदारी एवं हिस्सेदारी पर मौंताणा राशि निर्भर करती है जिसमें न्याय की तर्क संगतता का कोई संबंध नहीं होता हैं।

3) चढ़ोतरा (हिंसात्मक हमला) :– आदिवासी समुदाय में मौताणा की राशि की प्राप्ति हेतु आरोपित पक्ष के आवास स्थल की ओर चढ़ोतरा किया जाता है। चढ़ोतरा एक अनियन्त्रित भीड़ है जो परम्परागत हथियार से लैस होती है। जिसमें महिलाएं, पुरुष एवं बच्चे भाग लेते हैं। जिसका नेतृत्व स्वार्थी एवं लूटमार कर कुछ हासिल करने में विश्वास रखने वाले लोगों के हाथ में होता है। ये लोग आरोपित पक्ष के घरों को लूट लेते हैं तथा पशुधन को अपने साथ ले जाते है। खाली मकानों में आग लगा दी जाती है। यदि आरोपित पक्ष द्वारा मुकाबला करने का प्रयास किया तो खून खराबा कर दिया जता है। पुलिस इस तरह के चढ़ोतरों में हस्तक्षेप नहीं करती है। वह केवल मूकदर्शक बनकर मौके पर मौजूद रहती है। अराजकता के खुले नाच को देखती रहती है।

4) मौताणा के नाम पर अवैध वसूली :– मौताणा एक अप्राकृतिक मौत की क्षतिपूर्ति के रूप मे ंराशि अर्थात हर्जाना लिया जाता था। इस परम्परा की आड़ में अवैध वसूली की जाने लगी है। व्यक्ति का मौत से दूर–दूर का वास्ता नहीं होते हुए भी उसे मौताणा देना पड़ता है। कई बार आरोपी का पता नहीं चल पाता है परन्तु मौताणा की

राशि तय की दी जाती है तथा कमजोर व्यक्ति पर अपराध का दोष लगा दिया जाता है। ऐसा भी देखने एवं पढ़ने को मिलता है कि जिस व्यक्ति की जमीन पर व्यक्ति की लाश मिलती है उसी व्यक्ति से मौताणा की राशि वसूल कर ली जाती है।

5) मौताणें की राशि में हिस्सेदारी :– मौताणा की राशि का निर्धारण बढ़ा चढ़ा कर इसलिए लिया जाता है क्योंकि उसमें गड्डा–गमेतियों एवं भांजगडियों की भी हिस्सेदारी होती है। यह भी देखने में आया है कि इसमें पुलिस भी अपनी हिस्सेदारी बना लेती है। वास्तव में देखा जाए तो मौताणें का काफी हिस्सा इन बिचोलियों के मध्य ही वितरित हो जाता है। क्षतिग्रस्त व्यक्ति के परिवार तक तो काफी कम राशि ही पहुंच पाती है। एक मोटी राशि चढ़ोतरे के समय बैठकें कराने में ही खर्च हो जाती है। एक गमेती से इस पर चर्चा की तो उसका कहना था कि न्याय के हर दरवाजे पर व्यक्ति को कुछ देना पड़ता है तो हम इसमें कुछ हिस्सेदारी ले लेते हैं तो कोई गलत नहीं है। हम भी तो अपना व्यक्तिगत कार्य छोड़कर समाज के लिए कार्य करते हैं।

6) मिथ्या आरोप पर भी मौताणा की वसूली :– जनजातीय समुदाय में यदि गड्डा–गमेती किसी व्यक्ति के पक्ष में है अर्थात समाज में अच्छी पहुंच है तो वह कभी भी किसी भी मौत पर मिथ्या आरोप लगाकर अवैध वसूली कर लेता हैं। कई बार दो चचरे भाई साथ काम करने निकले बीच में उसकी प्राकृतिक मौत हो जाती है तब भी उसे निर्दोश होते हुए भी मौताणा की राशि देनी पड़ती है। इस तरह के आरोप लगाने के लिए भांजकड़िया की बहुत बड़ी भूमिका रहती है।

7) कानूनी एवं सामाजिक सुरक्षा का अभाव :– मौताणा ऐसी व्यवस्था है जिसमें सत्य एवं सही पर विचार नहीं होता है। समाज उस व्यक्ति के पक्ष में खड़ा रहता है। जिसके पक्ष में गड्डा, गमेती एवं भांजकड़िया खड़े हैं। चाहे विवाद का आरोप सच्चा नहीं हो। आरोपित पक्ष यदि कमजोर है तो उसकी सुनने वाला कोई नहीं है। सच के पक्ष में खड़ा रहने वाला कोई नहीं होता हैं यदि कोई खड़ा हो जाता है तो उसे समझा दिया जाता है कि ये हमारी परम्परा है इसमें हस्तक्षेप सहन नहीं किया जायेगा। इस तरह समाज द्वारा उसे किसी प्रकार की सुरक्षा नहीं मिल पाती है। दूसरी तरफ पुलिस भी जनजाति समाज की प्रथा मान कर अपना दायित्व निर्वाह कर लेती है। इस तरह कानूनी सुरक्षा के रास्ते भी बंद हो जाते हैं।

8) लाशों पर की जाती है राजनीति :– मौताणा का निपटारा नहीं हो जाता है तब तक लाशों को पड़ा रखा जाता है। कई बार तो सप्ताह भर लाशों को खुले में रख दिया जाता है तथा लाश के पास ही पंचायत की जाती है। यदि निपटारा समय

पर नहीं हो जाता है तब लाशें सड़ने लग जाती हैं। ऐसा भी देखने को मिलता है कि आरोपी के घर के आँगन में लाश को जला दिया जाता है। मौताणा की राशि को लेन – देन की व्यवस्था नहीं हो पाती तब तक उस लाश को जलाया नहीं जाता है। अब तो इस पर दलगत राजनीति भी होने लग गई है।

9) विरोधी को भगाने एवं सबक सिखाने / बदला लेने का आसान रास्ताः– यदि व्यक्ति को अपने विरोधी से बदला लेना है तो उसे केवल उस दिन का इंतजार करना पड़ता है कि कोई ऐसी मौत हो जो विरोधी के खेत के आस पास, घर के आस पास हुई हो। बस उस पर केवल आरोप लगा देना ही काफी है कि उक्त व्यक्ति से उसकी दुश्मनी तथा उसने हत्या की धमकी दे रखी है। इस पर ही चढ़ोतरा कर दिया जाता है तथा मौताणा की मांग कर दी जाती है।

अमानवीय एवं बर्बरता के उदाहरण :–

1) सन् 2000 में दक्षिणी राजस्थान के उदयपुर जिले के फलासिया क्षेत्र के नया खोला में रामलाल नामक व्यक्ति की हत्या / मृत्यु हो गई थी। इसका इल्जाम मृतक के चचेरे भाई नानालाल भगोरा पर लगाया गया। रामलाल की लाश मिलने के कुछ घन्टों बाद ही चाचा के द्वारा अपने भतीजे पर हत्या का आरोप लगा दिया गया था। भांजकड़ियों एवं गड्डा, गमेती ने अपनी सहमति प्रदान कर दी कि यह हत्या का ही मामला है। उसके पश्चात् परिजनों एवं आस–पास के फलों के लोगों द्वारा मृतक के परिवारजनों के घरों पर चढ़ोतरा कर दिया गया। चढ़ोतरे में हमलावरों ने घर के सामान, जेवर, रुपये तथा पशु सभी लूट लिए तथा आरोपी, उसके रिश्तेदार एवं नातेदारों के घरों में आग लगा दी गई। उसके पश्चात आरोपी तथा उसके पिता की सम्पत्ति पर कब्जा जमा दिया तथा आरोपी को भगा दिया गया।

कोर्ट से आरोपी बरी :– जिस पर हत्या का आरोप लगाया गया उस व्यक्ति अर्थात नानालाल को न्यायालय द्वारा बरी कर दिया गया तथा उसे न्यायालय द्वारा निर्दोष घोषित कर दिया गया परन्तु समाज के गड्डा–गमेती द्वारा उसे आरोपी ही माना गया। यहाँ न्यायालय के निर्णय का कोई वजूद नहीं रहता है। इस कारण से इस न्याय का कोई फर्क इस परिवार की स्थिति पर नहीं पड़ा

आरोपी का स्वतंत्र मकान :– जिस व्यक्ति पर हत्या का आरोप लगाया गया। वह व्यक्ति अपने पिता से अलग रहकर अपना जीवन व्यतीत कर रहा था तथा उसके माता–पिता एवं अपंग भाई स्वतंत्र रह कर अपना जीवनयापन कर रहे थे। मौताणे की सामाजिक व्यवस्था में आरोपी के रिश्तेदार एवं नातेदार को भी दोषी माना जाता है। इस

मिथ्या एवं अतार्किक तथ्य के कारण निर्दोष माता–पिता तथा अपंग भाई को भी अपने मूल स्थान से पलायन करना पड़ा।

तेरह वर्षों से विस्थापित :– सामाजिक स्तर पर मौताणे का निस्तारण नहीं हो पाने के कारण 2000 से यह परिवार इधर उधर भटक रहा है। शुरुआती दौर में उसे जंगलों में छुपना पड़ा। उसके पश्चात दूसरे जिले में जाकर अपने परिवार को बसाने का प्रयास किया तो वहाँ पर भी उसे शान्ति से जीवन यापन नहीं करने दिया गया। आज भी यह परिवार अपने मूल स्थान पर जाने के लिये तरस रहा है।

न्याय के लिए कोई रास्ता नहीं बचा :– आरोपी रामलाल व उसके माता–पिता व अपंग भाई–भाभी के लिए अब न्याय का कोई रास्ता नहीं बचा है। उन्होंने जनप्रतिनिधियों एवं प्रशासन को अंसख्य बार ज्ञापन एवं प्रार्थना पत्र प्रस्तुत कर चुके है। सामाजिक स्तर पर भी वे मौताणा की राशि देने के लिए तैयार हो गये हैं परन्तु मौताणे की मोटी राशि वसूलने की आड़ में विरोधी पक्ष समझौता नहीं करना चाह रहा है तथा वर्तमान में 10 बीघा जमीन जो मृतक के पिता की है उस पर कब्जा विरोधी पक्ष का है। इस भूमि का मूल्य मौताणें की राशि से ज्यादा मूल्यवान है। इसलिए वह निश्तारण नहीं करना चाहता है। दूसरी तरफ न्यायालय द्वारा भी अपराध के आरोप से मुक्त कर दिया गया है। अब इस परिवार के लिए न्याय का रास्ता नहीं रह गया है।

विकलांगता एवं वृद्धावस्था पर नहीं जागी मानवता :– वृद्ध दंपति व उनका विकलांग पुत्र तथा अपाहिज पुत्रवधू की अस्वस्थता पर आदिवासी क्षेत्र के जनप्रतिनिधियों, जनजातीय विभाग, पुलिस प्रशासन, जिला प्रशासन एवं समुदाय के गड्डा–गमेतियों की मानवता नहीं जग पाई है। सभी एक–दूसरे की जिम्मेदारी का हवाला देकर अपने नैतिक मूल्य, संवैधानिक दायित्व एवं मानवीय जिम्मेदारियाँ से मुक्त हो जाते हैं। वे अब खुले आसमान के नीचे जीवन यापन कर रहे हैं। एक तरफ न्यायालय को विकलांग लोगों के मानव अधिकारों की रक्षा के लिए रपट–पटटी बनाने की व्यवस्था करने का आदेश देना पड़ा परन्तु हमारी सरकार आज उन लोगों के सम्मान देने के लिए केवल दिखावा मात्र कर रही हैं।

2) 15 अगस्त 1998 को दक्षिणी राजस्थान के उदयपुर जिले के उपखण्ड–सलुम्बर से मात्र 5 किलोमीटर दूरी पर बसे मौरिला गाँव के 27 परिवारों को मौताणा के लिए अपने मूल स्थान से विस्थापित होना पड़ा। अपने ही गोत्र के कालू पिता मावा डामोर की मृत्यु पर उठा विवाद 15 वर्षों के बाद भी नहीं सुलट सका। मृतक कालू की आयु 70–75 वर्ष की थी जिसकी मृत्यु रात्रि में हुई। मृतक कालू का न तो मेडिकल हुआ न

ही उसके शरीर पर किसी प्रकार की चोट थी। मृतक कालू के ही गौत्र के भाई बंधुओं के परिवार पर हत्या का आरोप लगा दिया गया। आरोप के पश्चात 27 परिवारों के घरों पर चढ़ोतरा कर दिया गया। उनकी चल–अचल सम्पत्ति को लूट लिया गया। घरों को आग के हवाले कर दिया गया। कई दिनों तक अरावली की पहाड़ियों में छुप कर अपनी तथा अपने परिवार के सदस्यों की जान बचाई तथा वर्षों तक अपने रिश्तेदारों के यहाँ शरण लेनी पड़ी। अब अरावली की पहाड़ियों की चोटी पर उनकी ढलान पर अपना निवास स्थान बनाया है। जहाँ पर पानी–बिजली की व्यवस्था नहीं होते हुए भी अपने मूल स्थान पर बसने की आस लगाये जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

न्यायालय ने किया आरोप से बरी :– जिन छ लोगों पर हत्या का आरोप लगाया गया उन छहों ही लोगों को आरोप से न्यायालय द्वारा बरी कर दिया गया तथा उन्हें निर्दोश माना गया। न्यायालय के निर्णय सामाजिक व्यवस्था में कोई वजूद नहीं रखा हैं। इसीलिए न्यायालय के निर्णय के बाद भी वे अपने मूल स्थान पर पुनः नहीं बस सके।

खण्डहर के रूप में शेष बच्चे मकान एवं खेत व बंजर भूमि :– मौरिला गाँव जो नदी के किनारे बसा हुआ है। यहाँ की भूमि बहुत उपजाऊ है। विस्थापित 27 परिवारों की कुल 140 बीघे उपजाऊ भूमि अब बंजर हो चुकी है। 27 परिवारों की भूमि का बटवारा के जो निशान थे, अब लगभग मिट चुके हैं। यहाँ पर आस–पास के पशु चरने आते हैं। मकान के नाम पर अब कुछ खण्डर बचे हैं जिससे अनुमान लगाया जा सकता है कि यहाँ पर कोई मकान थे जिसमें ये विस्थापित परिवार निवास करते थे। घटना की भयावहता को आज बची–खुची दीवारों के जले हुए निशां बयान कर रहे हैं।

वर्षों तक छुप कर जंगलों से निकलना पड़ता था :– मौरिला के विस्थापित परिवार के सदस्यों को कई वर्षों तक बाजार आने के लिए जंगलों का रास्ता अपनाना पड़ता था। कई बार उनके परिवार के सदस्यों पर जानलेवा हमले किये गये। घरेलू सामान के लिए कई किलोमीटर पैदल चल कर बाजार पहुँचा जाता था। रात एवं सुबह जल्दी में ही उन्हें इन मार्गों से निकलना पड़ता था।

वैवाहिक एवं सामाजिक रिश्तों पर प्रतिबन्ध :– विस्थापित की मार के अलावा समाज के गड्डा –गमेतियों एवं भांजगडियों ने वैवाहिक एवं सामाजिक रिश्तों पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। कई वर्षों तक विवाह जैसी रस्म उनके परिवार के भीतर नहीं देखी गई। धीरे–धीरे सामाजिक सम्बन्ध एवं वैवाहिक रिश्ते तो अब सामान्य होने लगे हैं।

न्याय के लिए हर तरह के प्रयास किये :– न्याय के लिए इन विस्थापित परिवारों ने असंख्य बार गड्डा–गमेतियों एवं भांजगडियों की बैठकों का आयोजन कराया। इस तरह की बैठकों में भी ये लाखों रुपयें खर्च कर चुके हैं। विपक्षी की नजर केवल उस 140 बीघे उपजाऊ भूमि पर है। इस कारण वे मौतणा की नकद राशि लेना नहीं चाहते थे, इसी वजह मौत के बदले मौत की मांग करते रहे हैं। इन विस्थापित परिवारों ने जिला केन्द्रों पर लगभग 60 दिनों तक धरने दिए भूखहड़ताल की गई। परन्तु आज तक इन 27 विस्थापित परिवारों को अपने मूल स्थान पर नहीं बसाया जा सका।

प्रशासन ने दबाव में किया कई बार बसाने का प्रयास :– विस्थापित परिवारों को कई संगठनों के सहयोग मिलने के पश्चात् सरकार द्वारा इन्हें बसाने के लिए सरकारी स्तर पर गड्डा–गमेमियों की बैठक का आयोजन कराया गया जिसमें प्रशासन के द्वारा बसाने के निर्णय तो करवा लिए गए परन्तु सुरक्षा के नाम पर एक चौकी खोली गई जिसमें 3–4 पुलिसकर्मी लगा कर प्रशासन द्वारा अपना पल्ला झाड़ लिया गया। 10वर्ष पश्चात के कुछ दिनों के लिए वे अपने मूल स्थान पर रहे परन्तु पुनः हमला कर उन्हें भगा दिया गया। दुबारा प्रशासन से न्याय की गुहार लगाई तो प्रशासन द्वारा अपनी असमर्थता व्यक्त कर दी गई।

3) दक्षिणी राजस्थान के उदयपुर जिले के फलासियाँ क्षेत्र के आडालाकड गाँव के कनाराम तथा उसकी पत्नी हिरकी शराब का सेवन कर रहे थे इसी दौरान उन दोनों के मध्य आपस में झगड़ा हो गया। दोनों ने जहरीली वस्तु खा ली जिसमें हिकरी की मृत्यु हो गई तथा कनाराम को मुख्यालय के हॉस्पीटल में भर्ती कराया गया। इस दम्पति के पांच बच्चे हैं जो इन्हीं पर पूरी तरह आश्रित थे। आपसी कहा –सुनी के कारण खासा जहर अब बन गया मौताणा का आधार। पत्नी के पीहर वालों ने मांग लिया मौताणा। मौताणा के लिए कर दिया चढोतरा परन्तु गड्डा गमेती के सकारात्मक प्रयास से आगजनी एवं लूटपाट जैसी घटना तो नहीं हुई परंतु मौताणे का मामला बना दिया गया। अब हॉस्पीटल में लाश इस कारण पड़ी रही कि मौताणा की राशि का लेन देन नहीं हो पाया।

पाँच बच्चों का भविष्य हुआ अन्धकामय :– मौताणें की राशि तो क्षतिपूर्ति के रूप में पीहर पक्ष को मिल जायेगी परन्तु उन बच्चों का भविष्य का क्या होगा उस पर समाज के गड्डा–गमेती विचार नहीं करते। मौताणा की राशि इन बच्चों के अमानवीय जीवन जीने के लिए मजबूर कर देगी। इन बच्चों को बाल बजदूरी करनी होगी क्योंकि पिता द्वारा अपनी सम्पत्ति को बेच देने पर भी मौताणा की राशि का पूरा भुगतान नहीं

हो सकता है। अतः अब मौताणें की राशि चुकाने के लिए न केवल पिता का नाम करना पड़ेगा बल्कि खेलने कूदने एवं पढ़ने की उम्र में ही उन्हें बाल मजदूरी कर मौताणें की राशि चुकाने में पिता की मदद करनी पड़ेगी।

आपसी विवाद भी बन गया मौताणा का मामला :– मौताणा में किसी भी प्रकार के तर्क लगाये जा सकते, किसी भी प्रकार से वसूली की जा सकती है। किसी भी पक्ष को पार्टी बनाया जा सकता है। इस मामले में पति–पत्नी का आपसी विवाद था जिसमें उन मासूम बच्चों तथा उसके रिश्तेदारों का कोई लेना देना नहीं था परन्तु उन्हें भय से अपना घर छोड़ कर जंगलों में छुपना पड़ा तथा मौताणें के निपटारे की व्यवस्था करनी पड़ी।

मौताणा का स्वरूपः–

मौताणा का क्या स्वरूप है, यह क्यों किया जाता है तथा इसके परिणाम क्या है? इस पर चर्चा करने से पूर्व मौताणा को लेकर समाचारपत्रों में छपी खबरों के कुछ शीर्षक देखना ठीक होगा क्योंकि तथ्यों की वस्तुनिष्ठता को साबित करने में आसानी होगी।

- तेरह वर्षों से भटक रहा परिवार (पीछा करते रहे हमलावर, हमें दिला दो घर और जमीन, मौताणें का दंश)
- पत्नी की अन्त्येष्ठि से पूर्व मिला पति का शव (बीती रात ही सुलटा था पत्नी की मौत पर मौताणा, थाने में मंगलवार देर रात दोनों पक्षों के मौतबीरों की उपस्थिति में 1 लाख 71 रुपये में मौताणा का विवाद निपटा)
- हादसे में मौत, मॉगा मौताणा (एक लाख 41 हजार रूपये मौताणा राशि तय होने पर उठाया शव, पारसोला थानाधिकारी एवं एएसआई मय जाब्ते के मौजूद)
- नौ लाख में निपटा मौताणा (पत्नी के जहर पीकर आत्महत्या से उपजा मौताणा का विवाद 9 लाख रुपये में निपटा, थानाधिकारी प्रवीण व्यास, मोतबिरों के समझोते के बाद पीहर पक्ष ने अस्सी हजार की जाल की राशि ली।)
- सशस्त्र आदिवासियों का गांव पर धावा (तहस नहस किया गांव, पुलिस चुपचाप देखती रही, हत्या के मामले में किया चढ़ोतरा।)
- करंट से मौत पर मौताणा (पुलिस की समझाइस के बाद तीस हजार का मौताणा तय किया गया।)

- आटा–साटा में निपटा मौताणा (टैक्टर पलटने से चालक की मौत, एक मौत से दूसरी मौत का हुआ आटा–साटा)।

1 **अप्राकृतिक मृत्यु का मौताणा**– मौताणा का मूल उद्‌भव अप्राकृतिक मृत्यु के साथ प्रारम्भ हुआ था। अप्राकृतिक मौत पर यह मौताणा क्षतिपूर्ति को पूरा करने करने के लिए मौताणा राशि ली जाती है। मौताणा राशि आरोपित व्यक्ति या परिवार या रिश्तेदार या गौत्र के लोगों से ली जाती है।

2 **प्राकृतिक मृयु का मौताणा**– जनजातीय समुदाय में कई बार प्राकृतिक मौत को भी बिना तथ्यों एवं तर्कों से अप्राकृतिक मौत मान लिया जाता है। इस तरह अप्राकृ तिक मौत पर भी अब मौताणा व्यापक पैमाने पर लिया जा रहा है।

3 **आत्महत्या का मौताणाा**– महिला/पुरुष द्वारा किसी भी कारण आत्महत्या या स्वयं को हानि पहुंचायी जाती है। जिसको गड्डा–गमेतियों के द्वारा इसे भी मौताणा का मामला बताकर चढ़ोतरा करवा दिया जाता है। आत्महत्या चाहे पति–पत्नी के मध्य आपसी विवाद से हुयी हो या आर्थिक तंगी के कारण हुयी हो, परन्तु मौताणा का मामला गड्डा–गमेतियों के सामाजिक न्यायालय में रखा जाता हैं।

4 **चल/अचल सम्पत्ति के नुकसान का मौताणाा**– कई बार पशुओं की दुर्घटना या अन्य किसी कारण से मृत्यु हो जाती है या खेत में नुकसान हो जाता है। तब भी मौताणा का वाद गड्ड़ा – गमेतियों के सामाजिक प्रशासन में दायर हो जाता है।

5 **पीड़ित पक्ष का मौताणा**– प्राकृतिक/अप्राकृतिक मृत्यु से जिस पक्ष का नुकसान हुआ है उसी पीड़ित पक्ष को कई बार मौताणा की राशि भुगतनी पडती है। पुत्रवधू को खोने पर उसके ससुराल पक्ष को मौताणा देना पड़ता है।

मौताणा के परिणाम :–

1. विस्थापनः– मौताणा कुप्रथा के परिणामस्वरूप उस आरोपित व्यक्ति को विस्थापित होना पड़ता है, साथ ही उसके परिवार, रिश्तेदार तथा गोत्र के लोगों को विस्थापित होना पड़ता है। अधिकांश मामलों में एक बार तो विस्थापित होना ही पड़ जाता हैं। विस्थापन अवधि निश्चित नहीं होती है। यदि मौताणा राशि पर समझौता समय पर हो जाता है तो अल्प अवधि तक ही विस्थापन होता है यदि समझौता नहीं हुआ तो वर्षों वर्षों तक विस्थापित रहना पड़ता हैं।

2. रिश्तेदारों तथा जंगलों में शरण ली जाती हैः— मौताणा के विवाद पर इन आदिवासी परिवारों को विस्थापित होना पड़ता है। घटना से संबंधित फले/गांव के लोगों द्वारा चढ़ोतरा किया जाता है या करने की तैयारी कर रहे होते हैं। तब आरोपित परिवार व रिश्तेदार नजदीक के जंगलों में शरण लेकर अपनी जान बचाते है। इन परिवारों को कई दिनों तक जंगलों में जंगली अवस्था में अपना जीवन बिताना पड़ता है। बाद में यदि समझौता नहीं हो पाता है तो ऐसी अवस्था में अपने रिश्तेदारों से मदद मांगते हैं। जिस पर रिश्तेदार द्वारा टेन्ट या कच्चा — पक्का आवास निर्माण कर रहने की स्वीकृति दे देते हैं।

3. बच्चों का शिक्षा—दीक्षा से वंचित होना :— जैसे ही इन परिवारों को विस्थापित होकर जंगलों एवं रिश्तेदारों के यहां शरण लेने के लिए मजबूर होना पड़ता है इनके बच्चों के स्कूल छूट जाते हैं। जंगलों में शरण के दिनों में तो शिक्षा का सवाल ही नहीं उठता तथा रिश्तेदारों के यहाँ शरण जो मिलती है वह भी दुर्गम स्थल पर मिलती है। जिससे वे बच्चों को स्कूल नहीं भेज पाते हैं तथा इतना पैसा भी उनके पास नहीं बचता है जिससे वह पेन—पेंसिल खरीद सकें। इस तरह इन आदिवासी बच्चों की शिक्षा कोसों दूर चली जाती है।

4. मानव वध या गंभीर नुकसानः— मौताणा के लिए चढ़ोतरा किया जाता है जिसमें हिंसक भीड़ द्वारा हमला किया जाता है। यदि समय रहते हुए जंगलों में भागने में सफल नहीं हो पाते हैं तो उन्हें जान गँवानी पड़ सकती है। या फिर गंभीर चोट का शिकार होना पड़ सकता है। इस तरह चढ़ोतरों से जान—माल की हमेशा खतरा बना रहता है।

5. दोहरी सजा एवं जुर्माना व्यवस्थाः— मौताणा एक ऐसी कुप्रथा है जिसमें समाज के गड्डा गमेती एवं भांजगाड़ियों द्वारा दी गई सजा एवं जुर्माने के अभाव में कभी भी आरोप से मुक्त नहीं हुआ जा सकता हैं। कई मामलों में न्यायालय के आरोपी को दोषमुक्त कर दिया जाता है या वाद को खारिज कर दिया जाता है या फिर व्यक्ति अपराध पर सजा काट लेता हैं। परंतु वह व्यक्ति अपने मूल स्थान पर जाकर पुनः नहीं बस सकता है। जब तक सामाजिक न्याय व्यवस्था से निपटारा नहीं कर लेता। ऐसी दोहरी व्यवस्था में उसे दोहरे दण्ड को वहन करना पड़ता है। जो प्राकृतिक न्याय व्यवस्था तथा प्राकृतिक अधिकारों के खिलाफ है।

6. संवैधानिक दायित्वों का निर्वाह नहीं होता :— मौताणा व्यवस्था में पुलिस प्रशासन केवल यह कहकर अपने संवैधानिक दायित्व का निर्वाह कर देते हैं कि ये जनजातीय व्यवस्था का हिस्सा हैं इसमें हम कुछ नहीं कर सकते हैं। पुलिस ऐसे

कार्यों में अपनी संवैधानिक भूमिका निर्वाह करती है जब सरकार के आदेशों पर जंगलों से उनको हटाना होता है तथा अपनी ताकत वहीं अजमाते हैं। तब उन आदिवासी की संस्कृति एवं व्यवस्था का ख्याल नहीं आता है। किसी भी राष्ट्र की संवैधानिक व्यवस्था से समुदाय की असामाजिक/कुप्रथा बड़ी नहीं हो सकती है।

7. स्वतंत्र कानून नहीं होने से न्याय में देरीः– मौताणा प्रथा की रोकथाम के लिए अभी तक कोई स्वतंत्र कानून नहीं बनाया गया है। इसे सामान्य अपराध की धाराओं से भी रोकने का प्रयास किया जाता है। जिसमें यह रोक पाना असंभव सा है। जबकि इस क्षेत्र से कई जनजाति प्रतिनिधि, सांसद एवं विधानसभा में आदिवासी प्रतिनिधित्व करते है परंतु उनके द्वारा कभी सकरात्मक पहल नहीं की गई। इस तरह सामान्य कानून में न्याय मिलने से काफी देर हो जाती है। अतः सामाजिक व्यवस्था से वे जल्द ही अपना हित साध लेते हैं।

8. सामाजिक बहिष्कार एवं प्रतिबंध :– मौताणा का निस्तारण नहीं हो जाता है तब तक सामाजिक बहिष्कार एवं कई तरह के सामाजिक प्रतिबन्ध लगा दिये जाते हैं। सामाजिक बहिष्कार के अंतर्गत उनके सामाजिक कार्यक्रमों में समाज के लोग एवं दूर के रिश्तेदार भागीदार नहीं बन सकते हैं तथा बेटे–बेटी के विवाह जैसे रिश्तों पर प्रतिबंध लगा दिया जाता है।

निष्कर्षः–

जनजातीय समुदाय दोहरी न्याय व्यवस्था से संचालित हो रहा है जिसमें पहली व्यवस्था परम्परागत व्यवस्था है जो वर्षों से चली आ रही सामाजिक न्याय व्यवस्था के स्वरूप में है। दूसरी व्यवस्था जो प्रजातांत्रिक व्यवस्था है जिसने आधुनिक न्याय व्यवस्था को स्थापित कर रखा है। जनजातीय समुदाय अपनी परम्परागत व्यवस्था से सीधे सम्पर्क में है तथा इन्हें अपनी परम्परगत व्यवस्था तथा संस्कृति में अटूट विश्वास है। वर्तमान समय में अधिकतर निर्णय इन्हीं परम्परागत सामाजिक न्याय व्यवस्था से किये जाते हैं। दूसरी आधुनिक लोकतान्त्रिक व्यवस्था है जिसे जनजातीय समुदाय पूर्णरूप से स्वीकार नहीं कर पाया है। लोकतांत्रिक व्यवस्था पर आज भी इनकी परम्परागत न्याय व्यवस्था भारी पड़ रही है। आधुनिकीकरण की दौड़ ने जनजातीय समुदाय को और अधिक संकट में ला खड़ा कर दिया है। जनजातीय समुदाय की परम्परागत व्यवस्था वर्तमान में गड्ड़ा–गमेतियों एवं भांझगड़ियों के निहीत स्वार्थों के कारण खिलौना बनने लगी है। सामाजिक न्याय व्यवस्था में अब भाई–भतीजावाद, बाहुबल, राजनैतिक पहुँच एवं आर्थिक स्थिति व क्षमता मुख्य आधार बनकर उभर रहे हैं। जिससे वास्तिवक तथ्य नजर

अंदाज कर दिए जाते हैं तथा न्यायसंगत निर्णय नहीं हो पाता है। जनजातीय समुदाय के हित में बनाई गई व्यवस्था आज एक कुप्रथा का रूप धारण कर चुकी है। जनजातीय समुदाय में अप्राकृतिक मौतों की क्षतिपूर्ति की स्वच्छ परम्परा अब एक कुप्रथा का स्वरूप धारण कर चुकी है जिसमें सरेआम खून बहाया जाने लगा है, फले एवं गांव आग के हवाले कर नष्ट कर दिये जाते हैं, फले के लोगों व रिश्तेदारों को पालबदर कर दिया जाता है। मानव गरिमा एवं संवेदनशीलता समाप्त हो जाती है, वर्षों से बनाई चल एवं अचल सम्पति लूट ली जाती है। मौताणा के कई स्वरूप उभर कर सामने आये हैं। प्रशासन की भूमिका का भी पूनः मूल्यांकन करने की आवश्यकता है। इस कुप्रथा के कारण आज आदिवासी परिवार सूदखोरों का शिकार हो रहा है, कई पीढी इस ऋणग्रस्ता के चंगुल में फस रही है, सामाजिक सद्भावनापूर्ण वातावरण के स्थान पर तनाव बढ़ रहा है, अनावश्यक कानूनी मुकदमों के मामले फँसते जा रहे हैं तथा इन्हें अमानवीय जीवन जीने के लिए विस्थापित होना पड़ रहा है। ऐसे में इस तरह की कुप्रथा को समाप्त करने के लिए कानूनी, प्रशासनिक एवं सामाजिक स्तर पर कार्यक्रम बनाने की आवश्यकता महसूस की जा रही है। हमें इस दोहरी व्यवस्था पर पुनः विचार करना होगा। हमें जनजातीय समुदाय की अपनी मूल संस्कृति को भी बचाना है तथा उस संस्कृति में जो अप्रकार्य जन्म ले चुके है उन्हें बाहर करने की आवश्यकता है।

संदर्भः—

1. शर्मा, के.एल.ः भारत में सामाजिक संरचना एवं परिवर्तन, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2006।
2. जोशी, विष्णुः आदिवासियों में मौताणा, आस्था, उदयपुर, 2012।
3. Menon, P.S.K. and Sinha D. Bakshi: Panchyati Raj in Schedule Area, Institute of Social Science, 2003.
4. www.tad.rajasthan.gov.in (02/7/12)
5. पुलिस विभाग द्वारा दिनांकः 06—07 जुलाई 2006 में ''विकास व कानून व्यवस्था पर प्रभाव एवं संसाधन विषय पर आयोजित कार्यशाला।
6. राजस्थान पत्रिका (दिनांकः 05.07.2006, 06.07.2006, 02.06.2013, 05.06.2013, 08.06.2013, 17.06.2013, 16.7.2013, 26.7.2013, 17.7.2013, 09.08.2013, 10.08.2013, 18.08.2013, 18.09.2013)
7. दैनिक भास्कर (दिनांक : 005.07.2006, 06.07.2006, 15.07.2012, 09.08.2013)
8. प्रातःकाल (दिनांक : 10.08.2013)

* * *

कन्या भ्रूण हत्या – मानव जाति पर प्रहार (राजस्थान राज्य के विशेष संदर्भ में)

– *पुष्पेन्द्र सोलंकी

"मेरे लिए बेटा यदि बुढ़ापे की लाठी है तो
बेटी मेरे जीवन–ज्योति पुंज की बाती है।
बेटा यदि दृष्टि है तो बेटी सम्पूर्ण सृष्टि है।
बेटा आंखों का तारा है तो बेटी आसमान सारा है।"

– वृषकेतु श्रीवास्तव (दैनिक भास्कर, 07.08.2012)

भारतीय समाज पितृसत्तात्मक होने के कारण यहाँ पर महिलाओं की तुलना में पुरुषों को अधिक महत्व दिया जाता रहा है और आज भी समाज में यह धारणा व्याप्त है कि पुत्र कुल का दीपक होता है। इसके चलते महिलाओं की दशा निम्न स्तरीय रही है। इस प्रकार समाज में लड़की होने पर उसके विवाह पर होने वाले व्यय की चिंता, सामाजिक असुरक्षा की भावना के कारण लड़कियों को जन्म लेने से रोका जाता रहा है।

आर्थिक, सामाजिक रूप से समृद्ध और प्रतिष्ठित व्यक्ति को भी किसी लड़की का पिता होने में अपमान महसूस होता है। यह कैसी विडम्बना है कि "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता" जैसी अवधारणा वाले भारत देश में जन्मी–अजन्मी निर्दोष बालिकाओं के हो रहे कत्लेआम ने हम सभी को हृदयविहीन शिलाखण्ड के समान केवल मूकदर्शक बना दिया है। समाज में घटित हो रहे इस प्रकार के जघन्य कुकृत्य पर हमारा मस्तिष्क लज्जावश झुक जाता है।

*शोधार्थी, विधि संकाय, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

आज विश्व स्तर पर देखा जाये तो कन्या भ्रूण हत्या एक ज्वलंत एवं संवेदनशील चर्चा का विषय है। सदियों से सामाजिक मौन स्वीकृति के तले यह दुष्कृत्य सतत् रूप से गतिमान है। वर्तमान समय में विज्ञान एवं तकनीकी विकास के परिणामस्वरूप कन्या भ्रूण हत्या और लिंग चयनित गर्भपात के द्वारा गर्भ में ही कन्या भ्रूण को मार दिया जाता है। जनसामान्य के लिए गर्भस्थ शिशु के लिंग की जाँच करना सुलभ हो गया है।

21वीं शताब्दी की ओर तेज गति से आगे बढ़ रहे विकासशील भारत में कन्या भ्रूण हत्या से संबंधित आंकड़ों में हो रही निरन्तर वृद्धि सभ्य समाज के लिए एक गंभीर चुनौती के साथ–साथ मानव सभ्यता के लिए भी खतरा है। निर्दयी, निर्मम माता–पिता, संरक्षक, दम्पति, परिवार, समाज कन्या को जन्म के पूर्व या पश्चात् समाप्त करने पर आमादा है।

इस प्रकार मानव अपने द्वारा विकसित विज्ञान एवं तकनीकी के विकास को स्वयं के सर्वनाश में प्रयोग कर रहा है जो कि आने वाले समय में आत्मघाती सिद्ध होगा।

सन् 1795 में ब्रिटिश शासनकाल में पारित किये गये बंगाल रेग्यूलेशन – 21 के अन्तर्गत शिशु वध को हत्या की श्रेणी में माना गया था लेकिन फिर भी ब्रिटिश काल में यह कुप्रथा प्रचलन में रही। 19वीं शताब्दी में इस कुप्रथा को पूर्णतया समाप्त करने के लिए कठोर कदम उठाये गये लेकिन सामान्यतः यह देखा गया है कि समाज में कन्या भ्रूण हत्या जैसी जटिल मानसिकता आज भी जीवित है।

महिलाओं के गर्भवती होने पर भ्रूण लिंग की पहचान करना कन्या भ्रूण होने पर उसका पारम्परिक तरीकों के अलावा अत्याधुनिक तकनीकी साधनों के माध्यम से चिकित्सकीय समापन करना बहुत ही सरल कार्य हो गया है। समाज में कहीं चोरी छुपे ढंग से तो कहीं खुलेआम दम्पति एवं चिकित्सक की आपसी रजामंदी से यह अमानवीय कार्य सम्पादित हो रहा है।

कन्या शिशु हत्या और कन्या भ्रूण हत्या के बीच एक मुख्य अन्तर यह है कि बालिका भ्रूण हत्या में एक अन्य पक्षकार चिकित्सक की भी महत्वपूर्ण भूमिका है। गर्भवती महिला के शिशु का लिंग चयन तथा कन्या भ्रूण को गर्भ में ही समाप्त करने वाले क्लिनिक, नर्सिंग होम आज जगह–जगह कुकुरमुत्तों की भांति गली–गली, गांव–गांव, तहसील और शहरों में फैले हुए हैं।

लिंग निर्धारण की तकनीक का आरम्भ सन् 1970–1980 के दशक में प्रारम्भ हो गया था। विशेष रूप से पंजाब व हरियाणा राज्यों में इस प्रकार की तकनीक का सबसे

अधिक दुरूपयोग हुआ और यह नारा दिया गया कि "लड़का अथवा लड़की 500 रुपये खर्च करो और 5 लाख रुपये बचाओ"।[1] केवल पंजाब राज्य में ही 1000 से अधिक संख्या में अल्ट्रासाउण्ड चिकित्सालय हैं। राज्य के ग्रामीण क्षेत्रों में यह सुविधा बहुत ही आसानी से प्राप्त हो जाती है। यह कहा जाता है कि यहाँ पर जल आपूर्ति की अपेक्षा भ्रूण लिंग परीक्षण की सुविधा ज्यादा आसानी से प्राप्त हो जाती है।[2]

भारत में सन् 1978 से 1982 के मध्य 78,000 कन्या भ्रूण हत्या हुई थी।[3] संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम की एक रिपोर्ट के अनुसार सन् 1984 में अकेले मुम्बई शहर में 40,000 कन्या भ्रूण हत्या की गई थी।[4]

सेटर फॉर ग्लोबल हेल्थ रिसर्च के इस साल कराए गए सर्वेक्षण में यह तथ्य सामने आया है कि भारत में पिछले तीन दशक में 1 करोड़ 20 लाख बच्चियों को गर्भ में ही लिंग का पता लगा कर मार दिया गया।[5]

गैर कानूनी ढंग से हर साल 20 लाख गर्भपात कराए जा रहे हैं। 25 हजार प्रसव कराने वालों में से केवल 2 हजार ही रजिस्टर्ड हैं। प्रसूताओं की 20 फीसदी मौतें असुरक्षित गर्भपात की वजह से होती हैं। सेंटर फॉर सोशल रिसर्च की डायरेक्टर रंजना कुमारी के अनुसार – "गर्भपात के लिए 20 सप्ताह की अवधि को बढ़ाया गया तो इसकी आड़ में कन्या भ्रूण हत्या और अधिक होने लगेगी क्योंकि तीन महीने में लिंग परीक्षण थोड़ा मुश्किल ही रहता है लेकिन इसके बाद लिंग का पता चलते ही लोग गर्भपात के लिए भ्रूण की खराब सेहत का बहाना करने लगेंगे।[6]

अन्य सरकारी संगठनों द्वारा किये गये आकलन के अनुसार गर्भधारण करने की आयु में प्रत्येक 1000 महिलाओं में से 260 से 400 तक महिलाएं गर्भपात कराती हैं। सामान्यतया यह माना गया है कि 1 वैध गर्भपात के लिए 10 से 12 अवैध गर्भपात होते हैं। इस बारे में विश्व बैंक द्वारा वर्ष 1996 में एक रिपोर्ट पेश की गयी थी जिसके अनुसार भारत में प्रतिवर्ष 50000 अवैध गर्भपात होते है। इण्डियन मेडिकल ऐसोसिएशन ने भी इस रिपोर्ट को स्वीकार करते हुए कहा है कि वास्तविकता से परे सरकार मानती है कि प्रतिवर्ष केवल 107 कन्या भ्रूण हत्याएं होती हैं।

---

1. दिलायर्स क्लैस्टिक, 2 नवंबर 2001, पृ. 5।
2. जार्ज साबू, फीमेल फिटीसाइड इन इण्डिया, हेल्थ सेक्शन, दिसम्बर 2000, पृ. 25
3. टाइम्स ऑफ इण्डिया, जून 1982
4. डीकैन हैराल्ड, शनिवार, 2 जून 2001, पृ. 4
5. दैनिक भास्कर, 30 सितम्बर 2012
6. राजस्थान पत्रिका, 25 सितंबर, 2010

भारत में कन्या भ्रूण हत्या एक उद्योग का दर्जा प्राप्त कर चुका है क्योंकि एक अन्य अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि भारत में कन्या भ्रूण हत्या का कारोबार 450 करोड़ रुपये तक पहुँच गया है। इसी प्रकार भारत में प्रत्येक वर्ष 1 करोड़ 2 लाख गर्भपात किये जाते हैं इनमें से 67 लाख गर्भपात कन्या भ्रूण हत्या से संबंधित हैं।[7]

भारत की मौजूदा जनगणना के अनुसार सन् 1961 से लेकर सन् 2011 के बीच 6 वर्ष तक की आयु वर्ग के शिशु लिंगानुपात में निरन्तर विषमता पैदा होती जा रही है। सन् 1961 में शिशु लिंगानुपात 976 था जो कि सन् 2001 में 927 तथा 2011 में 914 ही रह गया है।

दुर्गा पूजा के लिए विख्यात पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी स्वयं एक महिला हैं, लेकिन उनके राज्य में एक महिला रूपाली बीबी को ससुराल वालों ने सिर्फ इसलिए जला कर मार दिया क्योंकि मृतक महिला ने लगातार दूसरी बार एक बेटी को जन्म दिया था।[8] बाल मरणशीलता का शिकार होती एक अन्य बालिका शिशु की हृदयविदारक कहानी इस प्रकार है – "नवजात बालिका शिशु की हत्या करने में माहिर एक दाई छोटे से स्टूल का एक पाया नवजात बालिका शिशु की गर्दन पर रखकर निर्दयतापूर्वक यह कहते हुए बैठ जाती थी कि "जा बिट्टो जा अपने भैया को भेज"। नवजात बालिका शिशु की हत्या कर देने वाली ऐसी कुप्रथा सम्पूर्ण मानव जाति को शर्मसार करती है।"[9]

कन्या भ्रूण हत्या को राष्ट्रीय शर्म की बात बताते हुए प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने कहा कि – "जीवन के हर क्षेत्र में महिलाओं ने अपनी सार्थकता साबित करने के बावजूद देश में यह बुराई जारी है। देश मे बच्चों के लिए लिंग अनुपात की विकृति को ठीक करना महज इस बारे में वर्तमन कानूनों को कड़ाई से लागू किये जाने तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इससे भी जरूरी यह है कि हम अपने समाज में कन्या शिशु को किस नजर से देखते हैं।[10]

देश में कम होते लिंगानुपात से चिंतित केन्द्र और राज्य सरकारों ने कुछ कड़े फैसले लेना तय किया है। सरकार कन्या भ्रूण हत्या को रोकने के लिए इसे एक महत्वपूर्ण एजेंडा बनाने जा रही है। इसे महिलाओं के सशक्तीकरण के लिए बने राष्ट्रीय

7. दैनिक भास्कर, 26 मार्च 2012
8. आउटलुक, अगस्त 2010, पृ. 22
9. राजस्थान पत्रिका, 22 अप्रेल 2011
10. राजस्थान पत्रिका, 20 अप्रेल 2011

महिला अधिकारिता मिशन का महत्वपूर्ण मुद्दा बनाया जाएगा। सरकार ने कन्या भ्रूण हत्या को रोकने के लिए कांग्रेस अध्यक्षा सोनिया गांधी की अध्यक्षता वाली राष्ट्रीय सलाहकार परिषद द्वारा की गई सिफारिशों पर अमल करना शुरू कर दिया है। राष्ट्रीय सलाहकार परिषद की सिफारिश के अनुसार महिला और बाल विकास मंत्रालय एक राष्ट्रीय योजना बनाने जा रही है, जिसमें विभिन्न मंत्रालयों के सुझावों को शामिल किया जाएगा।[11]

सरकार की काफी कोशिशों के बाद भी महिला और बाल विकास मंत्रालय तथा केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय को कन्या भ्रूण हत्या होने की लगातार शिकायतें मिल रही हैं। केन्द्र सरकार जिन राज्यों में घटते लिंगानुपात को देख कर हरकत में आई है, वहां लड़के–लड़कियों के बीच बढ़ते अंतर का एक और कारण सामने आया है। केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय के ताजा आंकड़ों के अनुसार मार्च 2011 तक जन्म से पूर्व लिंग परीक्षण करने वाले के विरुद्ध 805 मामले दर्ज हुए, लेकिन इनमें से केवल 55 मामलों पर ही कार्यवाही आगे बढ़ सकी यानि मात्र 6 फीसदी डॉक्टरों को ही PC&PNDT ACT -1994 के अन्तर्गत आरोपी बनाया गया। अन्य मामले पर्याप्त सबूत के अभाव में बंद कर दिए गए।[12]

भ्रूण हत्या के मुख्य कारण

हमारी सामाजिक एवं सांस्कृतिक विचारधारा, अंधविश्वास, पितृसत्तात्मक समाज के नियम तथा मानसिकता सभी मिलकर स्त्रियों के साथ विभेदकारी व्यवहार करने के लिए एक पृष्ठभूमि तैयार करती है। बदलते आधुनिक परिवेश में पराम्परागत, रूढ़िवादी विचारधारा में बदलाव आया है। ऐसा माना जाता है, लेकिन वास्तविक रूप में समाज में लड़कियों के प्रति आज भी पक्षपातपूर्ण और संवेदनहीन व्यवहार किया जाता है।

भारत में कन्या भ्रूण हत्या के कुछ प्रमुख कारण इस प्रकार हैं –

1. अशिक्षा, निर्धनता, बेरोजगारी
2. समाज में स्त्रियों के प्रति असुरक्षित वातावरण
3. ईज्जत और अभिमान की भावना
4. बाल–विवाह, दहेज–प्रथा, अनुलोम विवाह

11. राजस्थान पत्रिका, 22 अप्रेल 2011

12. राजस्थान पत्रिका, 25 अक्टूबर 2012

5. पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था और अंधविश्वास
6. बलात्कार
7. महिलाओं के प्रति हिंसा, अत्याचार और यौन शोषण
8. महिलाओं में एनिमिया रोग की समस्या
9. महिलाओं को पोषित एवं संतुलित भोजन नहीं मिलना
10. परिवार नियोजन के साधनों की विफलता
11. लिंग आधारित भेदभाव
12. सम्मान की रक्षा हेतु हत्या (ऑनर किलिंग)
13. चिकित्सकों में असंवेदनशीलता
14. चिकित्सा क्षेत्र में अत्याधुनिक तकनीकों का प्रयोग
15. चिकित्सकीय पेशे का व्यवसायीकरण
16. गर्भस्थ शिशु के लिंग जॉच के लिए एम्निओसेन्टेसिस, कोरिओनिक विलस बायोप्सी और सर्वाधिक चर्चित तकनीक अल्ट्रासोनोग्राफी का अधिक इस्तेमाल

कन्या भ्रूण हत्या संबंधित कानून

कन्या भ्रूण हत्या की समस्या को केवल कानून के भरोसे रहकर समाप्त नहीं किया जा सकता है। जनसामान्य में इसके लिए सामाजिक जनचेतना जाग्रत करना भी जरूरी है।

भारतीय समाज में धार्मिक, नैतिक और विधिक दृष्टिकोण से कन्या भ्रूण हत्या एक अपराध माना जाता है। विभिन्न धार्मिक ग्रन्थों में भी उल्लेख किया गया है कि कन्या वध या कन्या भ्रूण हत्या ब्रह्म हत्या के समान ही है जिसका कोई प्रायश्चित नहीं है।[13]

विधिक दृष्टिकोण से कन्या भ्रूण हत्या की रोकथाम के लिए विशेषतः निम्न अधिनियमों में विशेष प्रावधान किये गये हैं –

1. भारतीय दण्ड संहिता 1860
2. गर्भधारण पूर्व और प्रसव पूर्व निदान तकनीक अधिनियम 1994
3. गर्भ का चिकित्सकीय समापन अधिनियम 1971

13. राष्ट्रीय सहारा, 26 जनवरी 2009

(1) भारतीय दण्ड संहिता 1860

भारतीय दण्ड संहिता 1860 के अन्तर्गत वह गर्भपात जो किसी स्त्री का जीवन बचाने के उद्देश्य से सद्भावनापूर्वक कारित नहीं किया जायेगा, ऐसा गर्भपात दण्डनीय अपराध है।[14] भले ही यह अपराध किसी भी कारणवश स्त्री की सहमति के बिना किया गया है। भारतीय दण्ड संहिता 1860 के अन्तर्गत किसी व्यक्ति द्वारा शिशु का जीवित जन्म लेने से रोकने या जन्म के बाद उसकी मृत्यु कारित करने के उद्देश्य से किया गया किसी प्रकार का कार्य दण्डनीय अपराध घोषित किया गया है तथा ऐसा अपराध कारित करने वाले व्यक्ति को दंडित करने के लिए प्रावधान किये गये हैं।[15]

(2) गर्भधारण पूर्व और प्रसव पूर्व निदान तकनीक अधिनियम 1994

यह अधिनियम गर्भस्थ शिशु के लिंग की जाँच और कन्या भ्रूण हत्या का पूर्ण प्रतिरोध करता है। यह अधिनियम उपबंधित करता है कि अनुवांशिक सलाहकार केन्द्र या अनुवांशिक प्रयोगशाला या क्लिनिक प्रसव पूर्व निदान तकनीक का प्रयोग भ्रूण के लिंग चयन के लिए नहीं करेगा।[16]

परन्तु कुछ विशेष परिस्थितियों में प्रसव पूर्व भ्रूण की जाँच करने के लिए अनुमति प्रदान की गई है[17] –

1. गुणसूत्रों की असामान्यता
2. अनुवांशिक शारीरिक बीमारियां
3. हिमोग्लोबिन संबंधी बीमारियां
4. लिंग संबंधी अनुवांशिक बीमारियां
5. जन्मजात असामान्यताएं
6. केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड द्वारा बनाई गई कोई अन्य असामान्यताएं

14. राजस्थान पत्रिका, 4 सितम्बर 2011
15. राजस्थान पत्रिका, 7 अप्रेल 2011
16. दैनिक भास्कर, 2 अप्रेल 2012
17. राजस्थान पत्रिका, 7 अप्रेल 2010

कोई भी व्यक्ति, संगठन, अनुवांशिक परामर्श केन्द्र, अनुवांशिक प्रयोगशाला,अनुवांशिक क्लिनिक द्वारा प्रसव पूर्व या गर्भधारण पूर्व लिंग जाँच अथवा लिंग चयन संबंधी कोई भी विज्ञापन किसी भी रूप में प्रकाशित, प्रसारित, वितरित करना दण्डनीय अपराध माना गया है।[18]

कोई भी व्यक्ति, जिसमें प्रसव पूर्व निदान प्रक्रिया जुड़ा व्यक्ति भी शामिल है, संबंधित गर्भवती महिला या उसके किसी रिश्तेदार को या अन्य किसी व्यक्ति को शब्दों द्वारा, संकेतों द्वारा, अन्य किसी प्रकार से गर्भस्थ भ्रूण के लिंग के बारे में नहीं बतायेगा।[19]

इस अधिनियम में एक केन्द्रीय पर्यवेक्षी मंडल[20] तथा समुचित प्राधिकारी और सलाहकारी समिति[21] की स्थापना का प्रावधान किया गया है। जिनका कार्य कन्या भ्रूण हत्या को रोकने के लिए प्रभावी कदम उठाना है।

यदि कोई चिकित्सकीय विशेषज्ञ, स्त्री रोग विषेशज्ञ, पंजीकृत चिकित्सकीय व्यवसायी द्वारा इस अधिनियम के प्रावधानों का प्रथम बार उल्लंघन करने पर 3 वर्ष तक के कारावास या रु. 10000 के जुर्माने या दोनों से दण्डनीय होगा और अनुगामी दोष सिद्ध होने पर वह 5 वर्ष तक के कारावास/50000 रुपये तक के जुर्माने या दोनों से दण्डनीय होगा।[22]

समुचित प्राधिकारी द्वारा पंजीकृत चिकित्सक के प्रथम बार दोष सिद्ध होने पर राज्य चिकित्सा परिषद से 5 वर्ष तक के लिए उसका पंजीकरण रद्द किया जायेगा और अनुगामी अपराध के लिए दोष सिद्ध होने पर चिकित्सक का पंजीकरण स्थायी रूप से रद्द कर दिया जायेगा।[23]

कोई भी व्यक्ति अधिनियम की धारा 4(2) के अलावा अन्य किसी प्रयोजन के लिए प्रसव पूर्व लिंग जाँच या प्रसव पूर्व गर्भपात करता है, वह प्रथम अपराध होने पर 3 साल तक का कारावास/50,000 रुपये तक का जुर्माना अथवा दोनों से दण्डित होगा।[24]

---

18. राजस्थान पत्रिका, 20 अक्टूबर 2012
19. राजस्थान पत्रिका, 10 दिसम्बर 2011
20. राजस्थान पत्रिका, 22 अप्रेल 2011
21. दैनिक भास्कर, 2 अप्रेल 2012
22. दैनिक भास्कर, 27 दिसम्बर 2011
23. यत्पांय ब्रह्मात्याया द्विगुण गर्भपातने। प्रायष्चितं न तस्यास्ति तस्यास्त्माओं विधियते – मानस 4120
24. भारतीय दण्ड संहिता 1860 की धारा 312, 313

गर्भधारण पूर्व और प्रसव पूर्व निदान तकनीक अधिनियम 1994 के अधीन प्रत्येक अपराध –

1. संज्ञेय अपराध
2. अजमानतीय अपराध
3. अक्षमनीय अपराध है।[25]

किसी भी न्यायालय द्वारा इस अधिनियम के अधीन निम्नलिखित की शिकायतों पर ही मामले का प्रसंज्ञान होगा –

1. न्यायिक मजिस्ट्रेट (प्रथम वर्ग) या मेट्रोपोलिटिन मजिस्ट्रेट द्वारा प्रसंज्ञान किया जायेगा
2. समुचित प्राधिकारी द्वारा परिवाद पेश किये जाने पर
3. किसी व्यक्ति द्वारा परिवाद पेश किये जाने पर जिसने की समुचित प्राधिकारी को 15 दिन का नोटिस दे दिया है

(3) गर्भ का चिकित्सकीय समापन अधिनियम 1971

यह अधिनियम पारित करने के मुख्यतः दो प्रमुख कारण थे। प्रथम गर्भवती महिला एवं शिशु की रक्षा करना तथा द्वितीय परिवार नियोजन को बढ़ावा देना था।

गर्भ का चिकित्सकीय समापन अधिनियम 1971 के अन्तर्गत निम्न विशेष परिस्थितियों में पंजीकृत चिकित्सक द्वारा गर्भ समापन किया जा सकेगा[26] –

1. गर्भ का चिकित्सकीय समापन गर्भवती स्त्री की सहमति से ही किया जा सकेगा।
2. यदि गर्भवती स्त्री अवयस्क है या मानसिक रोगी है तो ऐसी स्थिति में गर्भ का चिकित्सकीय समापन करने से पूर्व उसके संरक्षक की लिखित स्वीकृति प्राप्त करना आवश्यक है।
3. यदि पंजीकृत चिकित्सकों द्वारा यह राय दी गयी है कि गर्भ के बने रहने पर गर्भवती स्त्री के जीवन को खतरा हो सकता है या स्त्री का शारीरिक, मानसिक आघात हो सकता है या गंभीर प्रकार से अयोग्य विकलांग शिशु का जन्म होगा।

---

25. भारतीय दण्ड संहिता 1860 की धारा 315, 316

26. PC & PNDT Act 1994 Sec. 6

4. बलात्कार के परिणामस्वरूप स्त्री के गर्भवती होने पर

5. परिवार नियोजन की सफलता

इस प्रकार उपरोक्त परिस्थितियों में गर्भ का चिकित्सकीय समापन पंजीकृत चिकित्सक के द्वारा ही किया जा सकेगा।

न्यायपालिका की भूमिका

समय–समय पर भारतीय न्यायपालिका ने भी कन्या भ्रूण हत्या को रोकने के लिए कठोर दिशा–निर्देश जारी किये हैं। उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि राज्य सरकार सक्रिय होकर अल्ट्रासाउन्ड मशीनों के पंजीकरण का कार्य करें। न्यायालय ने इस बारे में असफल रहने वाले अधिकारियों एवं कर्मचारियों को पद से तुरन्त हटा देने की सिफारिश की है।[27]

बॉम्बे उच्च न्यायालय ने एक वाद में कन्या भ्रूण हत्या को रोकने के संबंध में आदेश जारी करते हुए कहा कि – यदि किसी के विरुद्ध कन्या भ्रूण हत्या के कार्य करने का प्रथम दृष्टया साक्ष्य उपलब्ध हो तो ऐसे कार्य करने वाले डायग्नोस्टिक सेंटर की अनुज्ञप्ति रद्द की जानी चाहिए।[28]

हरियाणा के फरीदाबाद जिला न्यायलय ने कन्या भ्रूण हत्या को रोकने संबंधी सराहनीय कार्य किया है। जिला न्यायालय ने एक चिकित्सक तथा उसके सहयोगी के दोषी साबित हो जाने पर 2 वर्ष का कारावास तथा 5000 रुपये के जुर्माने की राशि से दण्डित किया था।[29]

विभिन्न कानूनों के बावजूद छोटे–बड़े शहरों, गांवों में अमानवीय स्तर पर फलफूल रहा लिंग परीक्षण व लिंग चयनित गर्भपात का व्यवसाय मुनाफे का सौदा साबित हो रहा है। अतः भारत में शिशु लिंगानुपात और महिलाओं की स्थिति संतोषजनक नहीं है। इससे यह पता चलता है कि हमारी प्रशासनिक एवं कानूनी कार्यवाहियां लुंज–पुंज हैं।

27. PC & PNDT Act 1994 Sec. 4(2)
28. PC & PNDT Act 1994 Sec. 22(1), (2), (3)
29. PC & PNDT Act 1994 Sec. 5(2)

कन्या भ्रूण हत्या – राजस्थान के विशेष संदर्भ में

राजस्थान की कुल जनसंख्या फरवरी 2011 तक 68621012 थी जिनमें 35620086 पुरुष तथा 33000926 महिला है। 2011 की जनगणना के अनुसार राजस्थान में 6 वर्ष तक की आयु का शिशु लिंगानुपात 883 है जबकि 2001 में यह आंकड़ा 909 था। इस प्रकार वर्तमान जनगणना में महिला–पुरुष का लिंगानुपात 922 से बढ़कर 926 हो गया।[30]

यूनिसेफ द्वारा मातृत्व एवं नवजात शिशु स्वास्थ्य पर जारी की गयी रिपोर्ट में कहा गया है कि – "राजस्थान राज्य में प्रत्येक घंटे में 13 ऐसे बच्चों की मौत हो जाती है जो कि अपनी आयु का एक साल भी पूरा नहीं कर पाते हैं।"[31]

राजस्थान में हर वर्ष 5300 महिलाओं की गर्भावस्था संबंधी जटिलताओं के कारण मृत्यु हो जाती है। जन्म के एक वर्ष के भीतर 98500 शिशु, जन्म के एक माह के भीतर 66800 शिशु और जन्म के एक सप्ताह के भीतर 50700 शिशु अकाल मृत्यु के शिकार हो जाते हैं।[32]

शिक्षा को कन्या हत्या, भ्रूण हत्या पर अंकुश का बड़ा माध्यम माना गया लेकिन लिंगानुपात के नये आंकड़ों की हकीकत बिल्कुल विपरीत है। राजस्थान राज्य के गत दो दशक के जनगणना आंकड़ों के अनुसार जिन जिलों में साक्षरता की दर में वृद्धि हुई है उनमें लड़कों की तुलना में लड़कियों के जन्म में कमी दर्ज की गई है। विशेषज्ञों का मत है कि शिक्षित होने के बाद लोगों में भ्रूण हत्या के खिलाफ जागरूकता बढ़ने के स्थान पर लोग भ्रूण जांच और भ्रूण हत्या के नित नये तरीकों के जानकार हो रहे हैं।[33]

प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने राजस्थान में घटते लिंगानुपात पर चिंता जाहिर करते हुए राज्य सरकार को एक पत्र लिखा है कि – "हमें उन लोगों के खिलाफ सख्त कार्यवाही करनी चाहिए जो जन्म से पूर्व बच्चों का परीक्षण करवाते हैं अथवा उन्हें जन्म लेने से पहले की मार डालते हैं।"[34]

राजस्थान प्रदेश में 1783 सोनोग्राफी केन्द्र पंजीकृत हैं। इनमें से 1661 निजी क्षेत्र और 122 सरकारी क्षेत्र के हैं। पिछले वर्ष राज्य, जिला व उपखण्ड निरीक्षण दलों ने

30. PC & PNDT Act 1994 Sec. 7
31. PC & PNDT Act 1994 Sec. 17
32. PC & PNDT Act 1994 Sec. 23(1)
33. PC & PNDT Act 1994 Sec. 23(2)
34. PC & PNDT Act 1994 Sec. 23(3)

इनमें से 702 सोनोग्राफी केन्द्रों का ही निरीक्षण किया है। शेष 1000 से ज्यादा केन्द्रों का तो निरीक्षण ही नहीं हुआ। निरीक्षण के बाद 161 मामले न्यायालयों में पेश किये गये तथा 20 मामले अभी भी लम्बित हैं।[35]

राष्ट्रीय बाल आयोग के सदस्य विनोद कुमार टिक्कू और दिनेश लहोरिया द्वारा पिछले वर्ष राजस्थान में बाल शोषण के विषय पर एक रिपोर्ट तैयार गयी की थी। रिपोर्ट के अनुसार राजस्थान के कई जिलों में नवजात बालिकाओं को मारने का अंतहीन सिलसिला धड़ल्ले से चल रहा है। यहां नवजात बालिका शिशु को अफीम खिलाकर और मुंह में कपड़ा ठूंस कर मारा जाता है। जैसलमेर सहित कई जिला अस्पतालों में बेटियां जन्म तो लेती हैं, प्रसूताएँ जननी सुरक्षा योजना के तहत आर्थिक सहायता भी हासिल कर लेती हैं लेकिन घर पहुंचने के बाद बेटियों की कहानी खत्म हो जाती है।[36]

राजस्थान सरकार द्वारा कन्या भ्रूण हत्या को रोकने की दिशा में जुलाई 2010 में चिकित्सा, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण विभाग की ओर से अभिकृत – www.hamaribeti.nic.in वेबसाइट शुरू की गई। इस वेबसाईट पर कोई भी व्यक्ति अपने आसपास के क्षेत्र में किसी निजी अस्पताल या सोनोग्राफी सेंटर पर लड़का या लड़की के भ्रूण की जांच के लिए चोरी छुपे हो रहे लिंग परीक्षण की ऑनलाईन शिकायत दर्ज करा सकता है। शिकायत दर्ज होने पर संबंधित जिले के प्रशासनिक व चिकित्सा अधिकारी उसकी सत्यता की जांच करते हैं और यदि शिकायत सही पायी जाती है तो दोषी के खिलाफ PC&PNDT ACT 1994 के तहत कार्यवाही की जाती है।[37]

इस बारे में केन्द्रीय स्वास्थ्य सचिव के. चन्द्रमौलि ने कहा है कि – "ऑनलाईन सूचना दर्ज करने के लिए प्रौद्योगिकी का लाभ उठाना चाहिए ताकि पंजीकृत क्लिनिक की जानकारी के साथ मशीनों को जब्त करने के लिए की गई कार्यवाही, दोषियों के खिलाफ दर्ज मामलों के बारे में जानकारी को सार्वजनिक किया जा सके।"[38]

महाराष्ट्र में कोल्हापुर और पुणे मॉडल के आधार पर अगर सोनोग्राफी मशीनों पर साइलेंट ऑब्जरवर लगाए जाए तो राजस्थान में भी बेटियों को बचाया जा सकता है।

---

35. PC & PNDT Act 1994 Sec. 27
36. गर्भ का चिकित्सकीय समापन अधिनियम, 1971
37. CHEAT एवं अन्य v/s भारत संघ अन्य (2001) 5 एस.सी.सी. 577
38. मालपति इनकार्टिलीटी क्लिनिक प्राइवेट लि. पंच अन्य v/s एप्रोप्रिएट आथरिटी P.N.D.T. एक्ट एवं अन्य, AIR 2005, बाम्बे 26

क्या है साईलेंट ऑब्जर्वर

यह एक इलैक्ट्रानिक उपकरण है जिसे साइलेंट ऑब्जर्वर एण्ड एक्टिव ट्रेकर नाम दिया गया है। इसे सोनोग्राफी मशीन में लगाया जाता है। इसके बाद उस मशीन पर किया गया काम स्वतः ही रिकार्ड हो जाता है। इसे कलेक्टर अपने कार्यालय में बैठकर मॉनिटर कर सकता है।[39]

विंडोज प्लेटफार्म पर कार्य करने वाले साइलेंट ऑब्जर्वर सिस्टम से सोनोग्राफी विडियो को रिकार्ड किया जा सकता है। सोनोग्राफी करने वाले और भी चालाक निकले। लिंग परीक्षण के दौरान वह सर्वर का तार निकाल देता है। पुणे की आईटी कम्पनी मैगनम ऑपस ने इसका भी हल निकाला और एडवांस एक्टिव ट्रेकर तैयार किया। साइलेंट ऑबजर्वर के साथ किसी भी प्रकार की छेड़छाड़ होने पर एडवांस एक्टिव ट्रेकर अधिकारियों को तुरंत एसएमएस कर देता है।[40]

राजस्थान सरकार द्वारा कन्या भ्रूण हत्या रोकने के लिए की गई पहल[41]

1. PC&PNDT Act 1994 की क्रियान्विति हेतु उपखण्ड अधिकारी, समुचित प्राधिकारी नियुक्त।
2. PC&PNDT Inspection Report (PIR) व्यवस्था लागू
3. राजस्थान मेडिकल कौंसिल द्वारा 8 चिकित्सकों के पंजीयन निलम्बित
4. गैर–सरकारी संगठनों की निरीक्षण एवं जागरूकता अभियानों में भागीदारी सुनिश्चित।
5. मुख्य स्वास्थ्य एवं चिकित्सा अधिकारी (CM&HO) राज्य समुचित प्राधिकारी के प्राधिकृत अधिकारी के रूप में अधिकृत।
6. हमारी बेटी एक्सप्रेस चार मोबाइल जागरूकता वाहन।
7. राजस्थान सरकार के सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता विभाग के द्वारा संचालित योजना के अन्तर्गत गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले बी.पी.एल. परिवार की किन्हीं दो कन्याओं के विवाह के लिए निम्न अनुदान दिया जाता है[42]

39. हिन्दुस्तान, लखनऊ 30 मार्च 2006

40. सूचना एवं जनसम्पर्क निदेशालय, राजस्थान सरकार

41. राजस्थान पत्रिका, 31 दिसम्बर 2011

42. राजस्थान पत्रिका, 31 जनवरी 2009

- 18 वर्ष आयु पूर्ण होने पर विवाह के लिए 10,000 रुपये।
- उच्च माध्यमिक उत्तीर्ण 18 वर्ष की आयु पूर्ण कन्या के विवाह के लिए 15,000 रुपये।
- स्नातक उत्तीर्ण 18 वर्ष की आयु पूर्ण कन्या के विवाह के लिए 20,000 रुपये का अनुदान दिया जाता है।

8. राज्य में लिंग परीक्षण पर प्रभावी नियंत्रण रखने के लिए राज्य स्तरीय टास्क फोर्स का गठन किया जाएगा। गैर कानूनी रूप से लिंग परीक्षण करने वाले के बारे में सूचना देने वाले व्यक्ति को देय पुरस्कार की राशि को बढ़ाकर 1,00,000 रुपये करने की घोषणा।
9. जननी शिशु सुरक्षा योजना के प्रभावी क्रियान्वयन हेतु सभी चिकित्सा महाविद्यालयों एवं संबद्ध चिकित्सालयों में कुल 400 महिला एवं 300 शिशु शैय्याओं की वृद्धि की जाएगी।
10. राज्य में आगामी वर्षों में 3000 उप–स्वास्थ्य केन्द्रों की स्थापना की जाएगी।
11. राज्य में कार्यरत लगभग 180000 आंगनबाड़ी कार्यकर्त्ताओं, सहायिकाओं, साथिनों एवं आशा सहयोगिनियों को देय मानदेय में 10 प्रतिशत की बढ़ोतरी की जाएगी।

राजस्थान जननी शिशु सुरक्षा योजना

सरकारी अस्पतालों, चिकित्सालयों में प्रसव को प्रोत्साहित करने के लिए केन्द्र सरकार की जननी सुरक्षा योजना को राजस्थान सरकार ने प्रदेश में 12 सितम्बर 2011 से पहली बार "राजस्थान जननी–शिशु सुरक्षा योजना" के रूप में प्रारम्भ किया है। योजना के अन्तर्गत सभी प्रसूताओं एवं बीमार नवजात शिशुओं को 30 दिवस तक सरकारी चिकित्सा संस्थानों में सभी प्रकार की सेवाएं तथा दवाइयां, जांच, भोजन और परिवहन इत्यादि उपलब्ध करवायी जा रही है। सरकार द्वारा ग्रामीण क्षेत्र की प्रसूताओं को 1400 रुपये एवं शहरी क्षेत्र की प्रसूताओं को 1000 रुपये प्रोत्साहन राशि के रूप में भुगतान किया जा रहा है।

उपलब्धि –

इस योजना के अन्तर्गत 12 सितम्बर 2011 से मार्च 2012 तक 430235 महिलाओं एवं 132387 नवजात शिशु लाभान्वित हुए हैं।

कन्या भ्रूण हत्या रोकने के उपाय

कानून को व्यावहारिक रूप में क्रियान्वित करते हुए निम्न उपायों द्वारा समाज की मानसिकता में सुधार किया जा सकता है। कन्या भ्रूण हत्या की रोकथाम हेतु सार्थक प्रयास किये जा सकेंगे।

1. समाज में महिलाओं का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है लेकिन कन्या भ्रूण हत्या जैसी गंभीर समस्या के कारण महिलाओं के अस्तित्व को खतरा उत्पन्न हो गया है। समाज में इस समस्या के प्रति हमें जन जागृति फैलानी चाहिए तथा नुक्कड़ नाटक, परिचर्चा, प्रदर्शनी, कार्यशाला, सेमिनार आदि का आयोजन किया जाना चाहिए।

2. आधुनिक सामाजिक व्यवस्था में महिलाओं के प्रति भेदभावपूर्ण तथा पक्षपातपूर्ण व्यवहार की मानसिकता को समाप्त करने के लिए महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक स्थिति को सुदृढ़ करने के साथ ही साथ वैश्वीकरण के दौर में विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित की जानी चाहिए।

3. महिलाओं को अधिक से अधिक शिक्षित करने के अलावा उनकी शैक्षणिक योग्यता के स्तर में वृद्धि करने के प्रयास किये जाने चाहिए। महिलाओं को व्यावसायिक शिक्षा प्रदान करने पर बल दिया जाना चाहिए जिससे उन्हें रोजगार के पर्याप्त सुअवसर उपलब्ध हो सके।

4. कन्या भ्रूण हत्या की रोकथाम के लिए कन्या भ्रूण हत्या संबंधी विषय को पाठ्यक्रम में शामिल करके विद्यार्थियों को इस समस्या के विभिन्न पहलुओं के बारे में जानकारी दी जानी चाहिए जिससे कि वे अपने जीवनकाल में ऐसी अमानवीय त्रुटि न करे।

5. विधिक दृष्टिकोण से कन्या भ्रूण हत्या के अपराध की रोकथाम के लिए गर्भ का चिकित्सकीय समापन अधिनियम 1971 तथा गर्भधारण पूर्व तथा प्रसव पूर्व तकनीक अधिनियम 1994 में व्याप्त अन्तर्विरोधी उपबन्धों में सुधार करते हुए अधिक कठोर बनाये जाने की आवश्यकता है।

6. केन्द्रीय पर्यवेक्षी बोर्ड तथा राज्य सलाहकारी समिति का भ्रूण लिंग जांच करने वाले अनुवांशिक परामर्श केन्द्रों, लैबोरेट्रियों और क्लिनिकों में कार्य करने वाले व्यक्तियों और चिकित्सकों पर उचित नियन्त्रण होना चाहिए। बोर्ड, समिति के कार्यों का समय–समय पर विश्लेषण किया जाना चाहिए।

7. गर्भवती महिला के भ्रूण की लिंग जाँच, लिंग चयन तथा अवैध गर्भपात करने में उपयोग लिये जाने वाले उपकरणों का क्रय–विक्रय करने वाली फर्मों पर पूर्ण नियन्त्रण करने की आवश्यकता है।
8. दहेज प्रथा और बाल विवाह जैसी कुरीतियों को समाप्त करते हुए सामूहिक विवाह का अयोजन किया जाना सराहनीय कदम होगा।
9. पुरुष प्रधान समाज एवं लैंगिक भेदभाव की मानसिकता को समाप्त करने पर बल दिया जाना चाहिए।
10. कन्या भ्रूण हत्या पर रोक लगाने के लिए समाचार पत्रों, विज्ञापनों, टेलिफिल्म, पोस्टर, बैनर आदि माध्यमों द्वारा आमजन में जागरूकता पैदा की जानी चाहिए।
11. चिकित्सकों को अपने व्यवसाय के प्रति समर्पित एवं कर्त्तव्यनिष्ठा की भावना से प्रेरित होकर कार्य करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। वैश्वीकरण के दौर में चिकित्सकों द्वारा अपनायी जा रही व्यावसायिक मानसिकता को समाप्त करने के लिए प्रयास किये जाने चाहिए।

सुझाव

भारत सरकार ने 2011–12 तक बच्चों का लिंगानुपात 935 और 2016–17 तक इसे बढ़ाकर 950 करने का लक्ष्य रखा है। कन्या भ्रूण हत्या में कमी लाने और लिंगानुपात में सुधार हेतु सुझाव निम्नलिखित हैं –

1. गर्भवती महिलाओं के स्वास्थ्य को उत्तम बनाए रखने तथा गर्भ में पल रहे भ्रूण के सर्वोच्च विकास के लिए महिलाओं को स्वास्थ्यवर्द्धक, पौष्टिक एवं संतुलित आहार ग्रहण करना चाहिए।
2. स्वास्थ्य शिशु और समय पर शिशु के जन्म के लिए गर्भवती माता को स्वास्थ्य की समय–समय पर जांच की जानी चाहिए।
3. महिलाओं का उत्तम स्वास्थ्य सुदृढ़ एवं स्वस्थ शिशु के लिए आवश्यक है।
4. गर्भवती महिला को आइरन, कैल्शियम, विटामिन युक्त भोजन नियमित रूप से दिया जाना चाहिए।
5. प्रसव के उपरांत भी माता एवं नवजात शिशु का विशेष ध्यान रखना परम आवश्यक है।

6. शहरी क्षेत्र के साथ–साथ ग्रामीण क्षेत्रों में भी स्वास्थ्य सेवाओं का विकास एवं विस्तार किया जाना चाहिए। गर्भवती महिलाओं और नवजात शिशुओं को अभावग्रस्त इलाकों में बेहतर स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सेवाऐं उपलब्ध करायी जानी चाहिए।
7. सरकारी, गैर–सरकारी अस्पतालों में गर्भवती महिलाओं एवं नवजात शिशुओं का रिकार्ड रखने पर निगरानी को बढ़ाया जाना चाहिए।
8. 2011 की जनगणना के अनुसार केन्द्र और राज्य सरकार द्वारा संचालित परिवार नियोजन कार्यक्रमों में सफलता, प्रतिबद्धता का अभाव रहा है। अतः समय– समय पर परिवार नियोजन सम्बन्धी शिविरों का आयोजन कर भिन्न–भिन्न माध्यमों द्वारा आवश्यक जानकारी प्रदान की जानी चाहिए।
9. हमें बच्चों एवं युवा पीढ़ी को नैतिकयुक्त शिक्षा, घर में अच्छे संस्कार और अच्छा सामाजिक परिवेश उपलब्ध करना होगा।

आज प्रत्येक क्षेत्र में महिलाएं पुरुषों से स्पर्धा में आगे बढ़ रही हैं। महिलाएं, पुरुष एकाधिकार के विभिन्न क्षेत्रों को भेदती नजर आ रही हैं। हम कह सकते हैं कि महिला वर्ग की सामाजिक दृष्टि से प्रतिष्ठा एवं सम्मान में वृद्धि हुई है।

आप और हम आखिर कब तक यूँ ही अपने आसपास चल रहे "लाईसेंसधारी कत्लगाहों" को नजरअंदाज करते रहेंगे।

मानव जाति के अस्तित्व को बनाये रखने के लिए जनहित में प्रत्येक नागरिक को बुचड़खाने में परिवर्तित हो रहे घरों को फिर से नन्हीं किलकारियों, मनमोहक मुस्कुराहटों से आबाद करने के लिए सक्रिय रूप से प्रयास करना होगा।

* * *

मानवाधिकार और मानवतावाद : एक दार्शनिक दृष्टि

***डा0 अमिता पाण्डेय**

मानवतावाद आधुनिक युग में विकसित एक जीवन दर्शन है जो मानव को सर्वोच्च सत्ता के रूप में स्वीकार करता है। मानवतावाद का विचार उतना ही प्राचीन है जितना की स्वयं मानव। मानवतावाद का संबंध ही केवल मानव प्राणी से है और किसी अन्य से नहीं। मानव के बिना किसी भी प्रकार के मानववाद का न व्यवहार में होना संभव है और न सिद्धान्त में विचारणीय। वर्तमान समय में मानवाधिकार और मानवतावाद अत्यन्त महत्वपूर्ण विचार–विमर्श के विषय बन गये हैं। मानवतावाद शब्द से ही यह प्रतीत होता है कि यह एक ऐसी विचारधारा है जिसके अंतर्गत मानव तथा उसकी समस्याओं के विवेचन को सर्वाधिक महत्व दिया जाता है तथा मानव को ही केन्द्रीय स्थान प्रदान किया जाता है। इस दार्शनिक विचारधारा के अर्न्तगत मानव की उत्पत्ति, प्रकृति में उसके विकास, ब्रह्माण्ड के साथ उसके संबंध, उसके व्यक्तित्व, स्वभाव तथा आचरण का निष्पक्ष एंव वैज्ञानिक विधियों द्वारा अध्ययन किया जाता है इसके अर्न्तगत मनुष्य के व्यक्तित्व और उसके अनुभव को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की जाती है। मानवतावादी दर्शन ने विशेष रूप से मानव–मात्र की समस्या को अपना केन्द्र बिन्दु बनाया है। मानवतावादी दार्शनिक इस बात पर एकमत हैं कि दार्शनिक चिन्तन का उद्देश्य मानव जाति का अभ्युदय एवं निःश्रेयस है और इसमें देश, धर्म, जाति और भौगोलिक भेद–भाव के लिए कोई स्थान नहीं है। मानवतावाद का मुख्य सिद्धान्त यह है कि मानव सर्वोच्च मूल्य है तथा मानव का अस्तित्व इसी विश्व में है। इसका लक्ष्य है कि एक स्वतंत्र विश्वव्यापी समाज की स्थापना की जाए, जिससे सभी लोग स्वतंत्र होकर बौद्धिक स्तर पर मानव अधिकार एवं सामान्य हित के लिए सहयोग दें। मानवतावाद की माँग है कि इस सर्वमान्य विश्व में समान अधिकार सभी मानव को मिले। यदि इस विश्व में मनुष्य को अभ्युदय या निःश्रेयस की प्राप्ति नहीं होती तो फिर और कहीं इसके लिए कोई

---

*एसोसिएट प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र विभाग, ईश्वररमण डिग्री कालेज, इलाहाबाद (उ.प्र.)

स्थान नहीं है। मानवाधिकार के संदर्भ में विभिन्न दार्शनिक विचारधारायें मिलती हैं। मानवतावाद का अर्थ है मानव को उदय की ओर प्रोत्साहित किया जाना, यह देखा जाता है कि जिस समय मनुष्य को पूर्ण रूप से विकास करने के अवसर प्रदान किये जाते हैं। उस समय उसके द्वारा भली–भाँति अपने व्यक्तित्व का विकास किया जा सकता है। मानवतावाद के संबंध में विभिन्न दार्शनिकों के द्वारा अपने–अपने विचारों को प्रस्तुत किया गया। यह मानव से संबंधित विचारों का भण्डार माना जाता है। जिसके परिणामस्वरूप मनुष्य को विशेष रूप से उन्नति की ओर अग्रसर किया जा सकता है।

मानवतावाद का तात्पर्य है मानव के अधिकतम विकास के लिये दिया जाने वाला विचार। इसमें मनुष्य को विशेष रूप से उन्नति की ओर अग्रसर करने की कोशिश की जाती है। यह मानव को उन्नति की ऊँचाइयों तक पहुँचने हेतु विशेष रूप से लाभदायक माना जाता है। यही कारण है कि आज इस ओर विशेष रूप से बल दिया जा रहा है कि मनुष्यों को अधिकाधिक मानवतावाद का ज्ञान प्रदान किया जाए। जिससे उनमें मानव के संबंध में उच्च विचारधारा को विकसित किया जा सके। मानवतावाद के संबंध में विभिन्न दार्शनिकों द्वारा अपनी–अपनी परिभाषाओं को स्पष्ट किया गया –

(क) डा0 राधाकृष्णन के अनुसार : ''एक नया मानवतावाद क्षितिज पर उदीयमान है, परन्तु इस बार वह पूर्ण मानवता को अपने में निहित किये हुए है। मनुष्य आज दार्शनिक हो गया है।''

(ख) मैसलों के अनुसार : ''मानवता को एकदम नवीन विचारधारा कहा जाता है। यह विचारधारा मानव से संबंधित है। आज इसे विकसित करने हेतु विभिन्न प्रकार की नवीन मान्यताओं को विकसित किया जा सकता है।''

(ग) लेमण्ट के अनुसार : ''लोकतंत्र तथा विवेक की माँग के अनुसार समूची मानवता की भलाई के लिए कार्य करना जिससे मनुष्य को विशेष रूप से उन्नति प्रदान की जा सके, मानवतावाद कहा जाता है।''

हमारे धार्मिक ग्रन्थ वेद समस्त मानव जाति के कल्याण की बात कहते हैं। समस्त मानव समाज में परस्पर मेल, सहयोग, संवाद की बात करते हैं। सभी में मन की एकता, हृदय की समानता और विचारों की समानता की बात करते हैं। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में भारत में मानवतावादी विचारधारा और मानवाधिकार की पर्याप्त सामाग्री उपलब्ध है।

बौद्ध दर्शन ब्राह्मण व्यवस्था (अवैदिक) पर आधारित व्यवस्था से अलग है। यह समाज में सभी वर्गों के लिए विशेष रूप से दलित वर्ग के लिए है। बुद्ध ने जाति व्यवस्था

के साथ–साथ वैदिक व्यवस्था एवं मान्यताओं का भी खण्डन किया है। बौद्ध दर्शन के मुख्य बिन्दु हैं– किसी को कष्ट न देना, भ्रातृत्व का भाव, अहिंसा। साथ ही बुद्ध ने धर्मनिरपेक्ष शिक्षा एवं सभी को शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया है। बुद्ध के अनुसार मोक्ष की प्राप्ति सबको इसी भौतिक जगत् में मिलती है। इसके लिए किसी धार्मिक अनुष्ठान की आवश्यकता नहीं है। वरन् शुद्ध आचरण ही इसकी कसौटी है। इस प्रकार बुद्ध के यह विचार मानवाधिकार की ओर संकेत करते हैं। जैन दर्शन भी वैदिक विरोधी परम्परा का अनुयायी है। इसमें बताया गया है कि जीने का अधिकार केवल मानव जाति को ही नहीं, सभी जीवधारियों एवं वनस्पतियों को भी है। इनके जीवन को नष्ट करना हिंसा ही नहीं, पाप है। यह पहला अवसर है जब मानव इतिहास में जीवन के अधिकार को मानवाधिकार के रूप में रखा गया।

भौतिकवादी चार्वाक दर्शन में कर्म पुनर्जन्म,मोक्ष और वर्ण व्यवस्था को अस्वीकार किया गया है। चार्वाक दर्शन में मानवतावादी एवं विवेकपूर्ण चिन्तन स्पष्ट दिखाई पड़ता है। वर्ण एवं जाति व्यवस्था का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है। मोक्ष के विचार के विषय में उनका कहना है कि सच्चा मोक्ष स्वतन्त्रता में ही मिल सकता है। मानवतावादी विचार एवं मानवाधिकार के संबंध में चार्वाक दर्शन का यह विचार है कि सुख के लिए यदि व्यक्ति को ऋण लेना पड़े तो ऋण लेकर सुख की प्राप्ति करनी चाहिए।

मानवतावाद के अनुसार मानव अपने प्रारब्ध का निर्माता और स्वामी है। इसका प्रयोजन राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय प्रजातंत्र स्थापित करना है, जिससे विश्व में शान्ति हो। मानवतावादी दार्शनिक मानव कल्याणवाद पर बल देते हैं, वह जातिगत, सांप्रदायिक और किसी प्रकार के भेद–भाव को नहीं मानते। जॉन डी.वी ने मानवतावाद को विज्ञान पर आधारित माना है तथा यह प्रमाणित किया है कि स्वर्ग–प्राप्ति की लिप्सा का त्याग करके मनुष्य को पारस्परिक सहयोग के आधार पर जन–कल्याणकारी योजनाओं को पूरा करने का प्रयास करना चाहिए। मानवतावाद मानव स्वतंत्रता एवं वैयक्तिकता पर बल देते हुए सभी मनुष्यों के कल्याण और समृद्धि की कामना करता है। ब्रबेकर, सेन्ट टॉमस, मैसलो आदि मानवतावादी दार्शनिकों ने ऐसे समाज के निर्माण पर बल दिया है जिसमें शक्ति, प्रगति, वस्तु–बाहुल्य एवं स्वतंत्रता की प्रधानता हो। जिसका आधार सामाजिक समानता, न्याय, एक– दूसरे के प्रति आदर भाव तथा सहयोग हो तथा जिससे मानवजाति की एकता तथा विश्व बन्धुत्व की भावना का विकास हो। इसी विचारधारा के फलस्वरूप मानव अधिकार को बल मिला और सम्पूर्ण विश्व में प्रत्येक व्यक्ति को मानवाधिकार प्राप्त हुआ।

मानवाधिकार के संदर्भ में वर्तमान परिप्रेक्ष्य में मुख्य रूप से तीन प्रकार के तर्कशास्त्रीय विवेचन किये जा सकते हैं

1–संरक्षणवाद
2–उदारवाद
3–सम्प्रदायवाद

राजनैतिक तर्कशास्त्रीय विवेचन की दो पद्धतियाँ संरक्षणवाद व उदारवाद वस्तुतः मानवाधिकार की दो पक्षीय व्याख्या है।

संरक्षणवाद– संरक्षणवाद असमान अधिकार के रूप में कुछ राज्यों में सभी पद्धतियों पर हावी है। इसका अर्थ है शक्तिशाली ही अस्तित्व में रह सकता है, कमजोर इस संघर्ष में मारे जाते हैं। इस तर्क शास्त्रीय विचारधारा ने बारहवीं शताब्दी में समान मूल सिद्धान्तों पर अपनी बहस शुरू की। संरक्षणवाद का तात्पर्य संयुक्त राष्ट्र चार्टर के **अनुच्छेद –55** में उल्लिखित है। ''बिना किसी भेदभाव के'' और 1968 के विश्व घोषणा पत्र के कथन? ''समान और ऐसे अहस्तान्तरणीय अधिकार'' से है, जो प्रत्येक व्यक्ति के पास अधिकृत है। संरक्षणवादी वर्तमान की शक्ति को ही अपना ध्येय मानता है। यह भूतकाल की शक्ति का इस तर्क से खण्डन करता है कि यदि उसमें अस्तित्व क्षमता रहती तो वर्तमान कुछ और होता। अतः भूतकाल की निर्जीवता से ज्यादा अच्छी वर्तमान अधिकार प्रद्धति है, यदि इसका समुचित उपयोग किया जाये।

उदारतावाद– समानता पर जोर देने वाला आधार उदारतावाद है, जिसका अर्थ है– मानव कल्याण का सर्व प्रभुत्व। यह कल्याण भाव तभी उत्पन्न होगा, जबकि प्रत्येक व्यक्ति के पास समान रूप से अधिकार हो। उदारवाद व्यक्तिगत कल्याण को अपना विषय बनाता है और मानव अधिकारों की सर्वव्यापकता को प्रोत्साहित करता है।

सम्प्रदायवाद– यह तर्कशास्त्रीय विवेचन उदारवाद के विपरीत कुछ समूह जैसे– राष्ट्रीयता या वर्ग के विचार को अपना विषय बनाता है।

वर्तमान विषय में नव उदारवाद एवं नव मार्क्सवाद की अनेकानेक धाराओं में मानवाधिकारों के अन्तर्गत व्यक्ति की गरिमा, स्वायत्तता, विलग्नता, शक्तिहीनता से संघर्ष एवं संरक्षण आग्रहों एवं प्रयासों में दिखाई पड़ता है। इस संदर्भ में जॉन राल्स का न्याय सिद्धान्त महत्वपूर्ण सैद्धान्तिक प्रयास है, जिसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व में अन्तःपविृत्रता एवं संवेदनशीलता, जो न्याय के सिद्धान्त पर आधारित है तथा

जिसे सम्पूर्ण समाज के लोक कल्याण के द्वारा प्रस्थापित नहीं किया जा सकता। रोनाल्ड द्ववोरकिन ने राजनैतिक नैतिकता को मानवाधिकारों का आधार माना है। इनके मत में राज्य का यह दायित्व है कि वह सभी नागरिकों को सम्मान दे।

अन्त में कह सकते हैं कि विभिन्न पाश्चात्य दार्शनिक विचार–धाराओं में मानवाधिकार संबंधी चिन्तन भिन्न रूपों में दिखाई पड़ता है। प्रत्येक दार्शनिक विचार–धाराओं ने मानव के अधिकार को स्पष्ट किया है। आदर्श स्थिति तो यह होनी चाहिए कि अधिकार माँगने की आवश्यकता ही न हो। अधिकार की माँग तो अहंकार का टकराव है, न कि आत्मीयता का अतिरेक। सरस, मधुर भाव, जो आनन्द सर का वारि पीकर तृप्ति चाहता है, चिर मिलनः मधुर बंधन चाहता है। इस प्रकार का सरस और मधुर जीवन कैसे बने। सृष्टि के रचयिता ने सरस कमनीय मधुर संसार बनाया और ''तुम्हें'' और ''मुझे'' इसमें स्वच्छन्द विचरण की अनुमति दी, यह संसार ''केवल'' तुम व मेरे लिए बना, तो सरसता के साथ ही जीवन जीना होगा, अन्य कोई विकल्प नहीं है और यदि कोई विकल्प है, तो वह विनाश, प्रकृति व प्रकृति स्रष्टा व नियन्ता का कोपभाजन होगा, जो प्रकृति अर्थात् सहज व स्वाभविक विधि के उल्लंघन से उदभूत होता है और उसके दण्ड की अपनी विधियाँ हैं। जो है संसार में वर्जनाएँ, कुण्ठाएँ, चिन्ताए, हिंसा अन्तः द्वन्द आदि।

यदि इन सबसे बचना है तो हम– ''तुम व मैं'' रचनात्मक संसार में कुण्ठाविहीन अन्तः चेतना से ऊपर उठकर सदा सच्चिदानंद के विरचित संसार में सरसता से जीवन बितायें, जहाँ 'तुम' और 'मै' एक होकर रहें, मधुरता रहे, सरसता रहे और कुछ न रहे। अहंकार, दुराव से दूर अधिकार चेतना से परे अन्तः चेतना का जीवन मधुरम् ही जीवन्त रहें।

यह सब मानवता के लिए अपेक्षित है, मानवता का है, मानवता से ही संभव है। इस मानवीय संसार में प्रेम करुणा, दया सेवा ही परम शुभ सुन्दर सत्य है। इसी के लिए हमको (स्त्री व पुरुष) को सहभाव से, समभाव से समग्रभाव से जीवन जीना है। यह अध्ययन एक प्रयत्न है इस मानवीयता को पाने की दिशा में। अधिकार की जब भी बात आती है, तो मात्र न्याय के संदर्भ में विधिक अधिकार को ही अधिकार माना जाता है, जबकि अन्य अधिकार भी हैं :–

1. सामाजिक अधिकार (Social Rights)
2. आर्थिक अधिकार (Economic Rights)

3. राजनैतिक अधिकार (Political Rights)

4. शक्तिकरण अधिकार (Empowerment Rights)

5. नैतिक अधिकार (Moral Rights)

व्यक्ति व समाज का संबंध क्या है? अधिकारों के संबंध में यह विचारणीय है। व्यक्ति समाज में क्यों रहे? क्यों रहता आया है? क्यों रहेगा? वह कहता है अस्तित्व, सुख शान्ति, समृद्धि, सुरक्षा, संरक्षण/प्रतिरक्षण के लिए। यदि समाज यही नहीं दे सके, तो समाज में रहने से क्या लाभ? फिर उसका अन्तर ही उसका समाज होगा। चाहे वह कैसा भी है? विषमता व उत्पीड़न के सामूहिक जीवन से तो दूर वन में एकांकी आश्रम रूप जीवन अच्छा। जहाँ स्वार्थी मानवता की ईर्ष्या, प्रतिद्वन्दता, हिंसा, क्रोध की अग्नि की जलन तो नहीं होगी, वहाँ हवाओं में ज़हर तो नहीं होगा, पानी तक में मिलावट नहीं होगी, वह एकाकी जीवन इस प्रतिद्वन्द्वात्मक हिंसात्मक जीवन से तो अच्छा ही होगा, चाहे थोड़ा कष्टकारी होगा किन्तु संतोषप्रद तो होगा ही। सहयोग की जगह विरोध मिले, तो यह कष्ट असहनीय होता है, अपनत्व के नाम पर प्रवचन मिले तो दुःख अधिक होता है, संवेदनशीलता के स्थान पर क्रूरता मिले तो वेदना की पीड़ा अति गहन होती है।

प्राचीन यथार्थवाद ने प्राकृतिक विधान और प्राकृतिक अधिकारों को व्यक्तिगत विकास एवं संरक्षण के लिए आवश्यक माना। आदर्शवाद अधिकारों के अनुसार व्यक्ति के विकास का एक साधन है। साथ ही वह अधिकारों की अपेक्षा कर्तव्यों पर अधिक बल देता है। दार्शनिक उदारवाद व्यक्तिवाद, स्वतंत्रता और समानता जैसे मूल्यों को प्रश्रय देता है तथा राज्य का मुख्य कर्तव्य मानव – स्वतंत्रता की रक्षा करने को मानता है। मानव को अधिकारों की रक्षा हेतु राज्य के विरुद्ध विद्रोह करने का भी अधिकार होता है। उपयोगितावाद का अधिकार कानून और समाज की रचना है। यह दर्शन उपयोगितावाद के सिद्धान्त का समर्थन करते हुए अधिकारों को मानवीय आवश्यकता और उपयोगिता की पूर्ति का आधार मानता है। प्रयोगवादी और प्रत्यक्षवादी दार्शनिकों ने मानवाधिकार की व्याख्या करते हूए कर्तव्यों पर बल दिया है। वहीं साम्यवादी दार्शनिकों ने सामाजिक न्याय पर बल देते हुए साम्प्रदायिकता व शोषण का विरोध किया है। अस्तित्ववाद ने अपनी विचारधारा का केन्द्र मनुष्य को मानते हुए मानव अस्तित्व कायम रखने हेतु अधिकारों को आवश्यक माना है। मानवतावादी दर्शन ने मानव मात्र की समस्या को केन्द्र बिन्दु मानते हुए मानव कल्याण, स्वतंत्रता, सामाजिक समानता, न्याय, आदरभाव व विश्व–बन्धुत्व की भावना का समर्थन किया। इसी विचारधारा के फलस्वरूप मानव

अधिकार को बल मिला तथा सम्पूर्ण विश्व में प्रत्येक व्यक्ति को मानव अधिकार प्राप्त हुआ।

ग्रीक दार्शनिक प्रोटागोरस के चिन्तन में मानवतावाद स्पष्टतया परिलक्षित होता है। प्राचीन चीन में कन्फ्यूसियसवाद एवं ताओवाद मानववादी विचारधारा के रूप में आख्यात रही है। इसी प्रकार प्राचीन भारत में बौद्ध एवं जैन दार्शनिक विचारधाराओं में भी मानवतावादी प्रकृति दिखाई देती है। आधुनिक युग में प्रत्यक्षवादी विचारक, आगस्टस डि काम्टे के चिन्तन में मानवतावाद को प्रमुखता प्रदान की गई। पुनः आधुनिक युग में भी विज्ञान एवं तकनीकी के विकास तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण के अविर्भाव ने इस अवधारणा के अविर्भाव में महती भूमिका निभायी। कॉपर निकस, केपलर, गैलीलियों, बूनों, लैप्लेस डार्विन आदि वैज्ञानिकों की खोजों एवं सिद्धान्तों ने मानववादी दर्शन के विकास के लिए आधार तैयार किया। कालान्तर में कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंजिल्स, जिनके मानववादी होने में कुछ विचारक संदेह करते हैं, परन्तु साम्यवादी सामाजिक राजनैतिक दर्शन में भी मानवहित को ही सर्वोपरि महत्व मिला। काम्टे, रसेल, कार्ल बाथम विलियम जेम्स, एफ0 सी0 शिलर, जॉन डी.वी. और सात्र ने मार्क्स की ही भाँति धार्मिक एवं ईश्वरवादी चिन्तन की पृष्ठभूमि से मुक्त होकर मानव जाति के हित में मानवतावादी दर्शन का प्रसार किया। समकालीन युग में सार्त्रे ने मानववादी समस्याओं पर क्रान्तिकारी चिन्तन किया। सार्त्रे – रचित “Existentiolism and humanism” मानववाद का उत्कृष्ट ग्रन्थ है। सार्त्रे ने मार्क्स के वर्ग संघर्ष संबंधी दृष्टिकोण को मानवहित के प्रतिकूल घोषित किया। अर्थ क्रियावादी विचारक जॉन डी.वी. ने अर्थक्रियावादी पृष्ठभूमि में मानववाद का समर्थन किया। उनके मानववादी चिन्तन को प्रकृतिवादी मानवतावाद या प्रयोगात्मक मानववाद के रूप में देखा गया। पाश्चात्य जगत में पंथ निरपेक्षतावाद का विकास भी मानववादी चिन्तन के रूप में हुआ। भारतीय विचारधारा अपने ऊषःकाल से ही मानववादी विचारधारा रही है, यद्यपि भारतीय मानववाद स्वरूपतः पाश्चात्य मानववाद से भिन्न है। **''सर्वे सन्तु सुखिनः वसुधैव कुटुम्बकम्''** जैसे आदर्शों की उद्घोषणा भारतीय मनीषियों ने समय –समय पर की है। भारतीय मानववाद, पाश्चात्य मानववाद जो यथार्थवादी एवं भौतिकवादी रहा है, के विपरीत भारतीय मानववाद अध्यात्मवादी है। उल्लेखनीय है कि भारतीय मानववाद एवं पाश्चात्य मानववाद में विवाद का मूल कारण मानव–स्वरूप विषयक चिन्तन रहा है। आधुनिक युग में महात्मा गाँधी, पं0 जवाहर लाल नेहरू, रवीन्द्र नाथ टैगोर और एम0एन0 राय, भारत में प्रमुख मानवतावादी विचारक के रूप में जाने जाते हैं। इनमें पं0 जवाहर लाल नेहरू और एम0एन0 राय के विचार पाश्चात्य मानववादियों से प्रभावित है। इस कारण इनका मानववाद गाँधी और टैगोर के मानववाद से भिन्न है।

मानवाधिकार की उत्पत्ति को देखते हुए पाश्चात्य विचारधाराओं के विषय में चर्चा अनिवार्य हो जाती है, जैसे वैज्ञानिक व धर्मनिरपेक्षवाद, मानवतावाद विशेषतः उदारवाद एवं समाजवाद जिसने संयुक्त राष्ट्र के निर्माण में योगदान किया एवं समाज में एक बड़े परिणाम के रूप में मानवाधिकारों को पहचान दी, साथ ही इसे परिभाषित भी किया है। इसी प्रकार भारतीय दर्शन के परिप्रेक्ष्य में उन्होंने मानवाधिकारों को अभ्यास एवं प्रशिक्षण के रूप में परिणत करने का प्रयास किया। उन्होंने वेदों में कर्म, धर्म, जैनों की अहिंसा, बौद्ध दर्शन की आध्यात्मिकता, भक्ति का रहस्यवाद एवं अन्त में गाँधी दर्शन के सर्वोदय स्वराज, लोकनीति एवं अहिंसा का उल्लेख किया। अन्ततः उन्होंने ऐसे मानवाधिकार के प्रशिक्षण को महत्व दिया जो मानव अवधारणा के महत्व एवं उद्देश्यों की प्राप्ति के महत्व को अपने में समाहित करें।

आज विभिन्न देशों के राजनीतिक आदर्श मानववादी जीवन पद्धति का हृदय से समर्थन करते हैं। अमेरिका और भारत के संविधान मानववादी आदर्शों के महानतम दस्तावेज़ हैं। अमेरिकी संविधान चाहता है कि ''सभी नागरिकों एवं भावी पीढ़ी को न्याय मिले, उन्हें आन्तरिक शान्ति प्राप्त हो, सामान्य सुरक्षा मिले, सामान्य कल्याण में वृद्धि हो और स्वतंत्रता का अधिकार सबको सुलभ हो'' और भारतीय संविधान भी अपने सभी नागरिकों के लिए ''न्याय, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म एवं उपासना की स्वतंत्रता, स्तर तथा अवसर की समानता और उन सब के बीच भ्रातृ–भाव की वृद्धि करते हुए व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता'' की स्थापना करना चाहता है। यह उल्लेखनीय है कि दोनों ही संविधान किसी देवी–देवता की आकांक्षा नहीं करते। वे मनुष्य के लौकिक हितों के पक्षधर हैं और राज्य अथवा राजनीतिक आदर्शों तथा संस्थाओं को धर्म से पृथक रखते हैं। जीवन पद्धति के रूप में मानववाद का दर्शन संसार के सामाजिक एवं राजनीतिक आदर्शों से मेल खाता है अर्थात् वह सभी राष्ट्रों तथा समाजों की संगठित संरचना का समर्थन करता है। विश्व समुदाय के स्पष्ट संकेत हमें संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणा–पत्र में दिखाई देते हैं। यह एक प्रमुख संस्था है जिसे अनेक राष्ट्रों ने बुद्धिमत्तापूर्वक स्वीकार किया है। इसके मुख्य उद्देश्य हैं– भावी पीढ़ी को युद्ध की विभीषिका से बचाना, मानव व्यक्तित्व की योग्यता, गरिमा एवं भौतिक अधिकारों में पुनः आस्था स्थापित करना, स्त्री–पुरुषों तथा छोटे–बड़े देशों के समान अधिकारों की पुष्टि करना, अनुकूल स्थितियों को पैदा करके न्याय एवं सम्मान को कायम रखना, सामाजिक प्रगति तथा व्यापक स्वतंत्रता सहित जीवन के उत्तम स्तर में वृद्धि करना, इन उद्देश्यों की प्राप्ति की दिशा में सहिष्णुता का व्यवहार करना तथा एक दूसरे के साथ अच्छे पड़ोसियों के रूप में शान्तिपूर्वक रहना और अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा बनाये रखना। वे विशुद्ध रूप से सतत् मानवतावाद के ही

आर्दश हैं। उन लोगों को ये अत्यधिक पसन्द है जो मानव गरिमा, सुरक्षा और खुशहाली के कट्टर समर्थक हैं। अनुच्छेद एक में संयुक्त राष्ट्र संघ का घोषणा–पत्र इस संस्था के लक्ष्यों की सम्पूर्ति के लिए इन बातों को आवश्यक मानता है– अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा कायम रखना, राष्ट्रों के समान अधिकारों तथा आत्म–निश्चय के सिद्धान्तों को मानना, आर्थिक सामाजिक अथवा मानववादी स्वरूप की समस्याओं के समाधान हेतु अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग में वृद्धि करना और इस सामान्य लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में विभिन्न राष्ट्रों की गतिविधियों को समन्वित करने के लिए एक केन्द्र के रूप में संस्था को विकसित करना। संयुक्त राष्ट्र संघ संसार के विभिन्न देशों को शान्ति एवं मैत्री में संगठित करके, सतत् मानववाद के लक्ष्यों की ही सम्पूर्ति कर रहा है।

राष्ट्र संघ का एक महत्वपूर्ण अंग (UNESCO) यह प्रस्तावित करता हैः ''शिक्षा विज्ञान तथा संस्कृति के तत्वों (शक्तियों) को एक ऐसे मानववाद के रूप में निर्मित करना, जो अपने को अभिव्यक्ति की विशेषताओं सामान्य मूल्यों और सामान्य अर्थों में उद्भूत करे। विश्वबोध की उपलब्धियों और एक नया मानववाद मनुष्यों के राजनीतिक समायोजन की सफलता के लिए आवश्यक है : किन्तु ज्ञान के अनुसरण में, मूल्यों की संरचना में और जीवन में शुभ प्राप्त करने के लिए, बोध (समझ) तथा मानववाद महत्वपूर्ण तत्व है। इनके लिए आर्थिक एवं राजनीतिक संस्थाएं तैयारियाँ और आधारशिलाएं हैं।''

मानवतावाद के आधुनिक दार्शनिक विचारों का यह विश्लेषण केवल मानव जीवन की मानववादी परम्परा को उद्घोषित करता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि अनेक गौरवशाली लोग वास्तव में मानववादी रहे हैं। समकालीन मानववाद अपनी उस लम्बी परम्परा पर गौरवान्वित होता है, जो प्राचीन ग्रीस, रोम, भारत, चीन आदि से प्रारम्भ होकर यूरोपियन पुनर्जागरण तथा भक्ति आन्दोलन के माध्यम से आज तक निरन्तर बना है और जिसमें हमारे युग के प्रसिद्ध एवं कर्तव्यनिष्ठ विचारकों का भारी योगदान रहा है। आधुनिक वैज्ञानिक मानववाद वर्तमान जगत में अपना व्यवस्थित विचार प्रस्तुत करता है, इस इरादे से नहीं कि उसने कोई बौद्धिक सत्य अन्तिम रूप में प्राप्त कर लिया हैः किन्तु ऐसी आशा और विश्वास के साथ कि मानवतावाद दुनिया के व्यक्तियों तथा समाज को एक सूत्र में बाँध सके अर्थात् उनमें सद्भाव एवं सहयोग की आकांक्षाएं प्रस्फुटित कर सकें। जहाँ पर यह प्रस्फुटन मानव में हो जायेगा वहाँ पर मानव को अधिकार माँगने की आवश्यकता नहीं रहेगी, वह स्वतः ही मिल जायेगा।

* * *

संदर्भ ग्रन्थः—

1. मानवाधिकार आन्दोलन का संक्षिप्त इतिहास, प्रारम्भिक राजनीतिक, धार्मिक व दार्शनिक स्रोत, मानवाधिकार अँग्रेजी में – Web http:\\www.hrweb.org\history.html.
2. महेन्द्र पी0 सिंह, 'मौलिक अधिकारों के आँकड़े व उसकी प्रक्रियाए तथा नीति निर्देशक सिद्धांत एक मानवाधिकार परिप्रेक्ष्य (2003) 5 SCC (Jour)A available at http:\\www. Ebc-india.com\lawyer\articles\2003V5a4\html.
3. अर्जन सेन गुप्ता राइट टू डेवलपमेन्ट एस ह्यूमन राइट वेबसाइटः http:\\www.hspn. harvard.edu\flbcenter\FXBC_WP&_Scngupts.pdf.
4. महेन्द्र पी. सिंह, वी. एन. शुक्ला, कान्सटीट्यूशन ऑफ इण्डिया, लखनऊ ईस्टर्न बुक कम्पनी, 1995 एडिशन 38, पृ0 125, 147
5. समाजिक एवं मानववादी विचारक, प्रो0 डी0 आर0 जाटव, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर।
6. मानवाधिकार के विविध आयाम भावना वर्मा, पब्लिस्ड पावाइन्टर पब्लिसर्श, जयपुर, पृ0 37, 79
7. Humanism as the next step by Lloyd and Mary Morain Published by Humanist Press, United State of America.
8. The Philosopy of Humanism by Corliss Lamounl Published by Humanist Press, Washington DC.
9. The Humanist Published by Humanist Association, United State of America.
10. Monthly Magazine "Bhartiya Paksha".
11. Monthly Magazine "Yojana" (Manavadhikar Aur Samajik Nyaya).
12. मानवाधिकार सिद्धांत एवं व्यवहार, श्री देवेन्द्र पाल सिंह, पब्लिसर्श हिन्दी बुक सेण्टर, इण्डिन पब्लिसर्श, न्यू दिल्ली।
13. मानवाधिकार क्यों और कैसे, देवदत्त माघव, पब्लिसर्श हिन्दी बुक सेण्टर, इण्डिन पब्लिसर्श, न्यू दिल्ली।
14. योज़ना मासिक पत्रिका, अप्रैल – 2011

समकालीन हिन्दी उपन्यास में मानवाधिकार

***प्रो0 के. वनजा**

अधिकार अथवा स्वतंत्रता का अर्थ प्रत्येक युग में बदलता रहता है। मध्ययुग में स्वतंत्रता का अर्थ मुक्ति, मोक्ष आदि तक सीमित था। आर्यों की वर्णाश्रम प्रथा और व्यवस्था में मनुष्य जीवन का लगभग तीन–चौथाई हिस्सा समाजशास्त्रीय उसूलों से सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक नियमों से प्रत्यक्षतः संचालित और प्रभावित नहीं था। ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और सन्यास के त्रिकोण में मनुष्य के जीवन का पचहत्तर प्रतिशत आ जाता है। इस तरह समाज की भौतिकता के स्थान पर आश्रम का महत्व बहुत बढ़ गया। भौतिक निरपेक्षिता के कारण जीवन के आधारभूत तत्वों और संबंधों से रागात्मक लगाव को कम करने तथा उसे झटके से तोड़ देने का संस्कार दिया गया है। इस तरह मनुष्य और संस्कृति के भौतिक विकास में दरार पैदा होने लगा। अतिरंजना प्रधान नायकत्व में हमेशा अद्भूत और रम्य अतिसाहसिकतावादी दृष्टि को अपनाया गया है। वीरता ओर रासलीला में आसक्त समाज स्वतंत्रता के क्रियमान यथार्थबोध की कल्पना नहीं कर सकता।

दुनिया की बदलती हुई हालात में पुरानी स्मृतियाँ अर्थहीन होकर मिथक बन गई हैं। स्वयं को तथा समाज को क्रांतिकारी भौतिकता के विचारों से परिचित कराया गया। स्वतंत्रता तो समाज की अनिवार्य शर्त है। शोषण और दमन मनुष्य की स्वतंत्रता को छीन लेते हैं। इसलिए स्त्रतंत्रता का मतलब अपने ऐतिहासिक सामाजिक अंतर्विरोधों को समझने, उन्हें दूर करने में सक्रिय होने, जनता के नैतिक विकास में हिस्सेदार होने तथा क्रांतिकारी परिवर्तन के लिए संगठित प्रयास करने से होता है। वर्तमान परिवेश में स्वतंत्रता से तात्पर्य जनता के ऐसे चरित्र विकास से हैं, जिससे उसका जागरूक, विवेकशील, गतिशील और न्यायपूर्ण जीवन संभव हो सके।

*हिन्दी विभाग, विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कोचीन (केरल)।

मनुष्य के प्रत्येक कर्मक्षेत्र में स्वतंत्रता उस को गुलाम बनानेवाली परिस्थितियों के पतिपक्ष में खड़ी कर देती है। साहित्य का मकसद ही स्वतंत्र भावोच्छलन है। लेकिन हमारा इतिहास गवाह है कि साहित्यकार या चिंतकों की स्वतंत्र अभिव्यक्ति पर अंकुश लगाकर उन्हें क्रास पर चढ़ाया जाता है। इस के लिए कभी सत्ता नहीं तो समाज तुला हुआ नज़र आता है।

सत्ता के अमानवीय मुखड़े के अनावरण से प्रायः कलाकार सत्ता की आँखों की किरकरी बन जाता है। सुकरात महान चिंतक थे, उन्हें जहर पिलाया गया था। गांधीजी का 'हिन्दू स्वराज' और प्रेमचंद का 'सोजे वतन' ब्रिटिश सरकार ने जला दिए। मुक्तिबोध के भारत के इतिहास संबंधी रचना पर प्रतिबंध लगाया गया। सलमान रूश्दी, तसलीमा नसरीन जैसे महान कलाकारों को अपने प्रगतिशील विचारों की वजह से सत्ता की निर्मम दंडनीति के शिकार बनने पड़े। सफदर हाशमी ऐसे एक महान रंगकर्मी थे जो जनवादी कला–आंदोलन से जुड़े हुए थे जिनकी दारूण हत्या की गई। महान रूसी लेखक बुलगाकव ने अपनी क्लासिक किताब 'मास्टर एंड मार्गरिट' में लिखा था – पांडुलिपि जलती नहीं हैं। यूरोप में काफका दीर्घ समय तक निषिद्ध थे, परंतु साठ के दशक में जनमत के दबाव से काफका को लेकर एक कान्फ्रेंस करनी ही पड़ी।

उपर्युक्त उदाहरणों से यह जाहिर हो उठता है कि प्रत्येक युग में मानवाधिकार के रक्षक साहित्यकारों एवं कलाकारों की निन्दा ही होती रही। स्वतंत्रता के निषेध से उत्पन्न कलाकार का आत्मसंघर्ष व्यक्ति या समाज का आत्मासंघर्ष है। कलाकार का यह आत्मसंघर्ष ही दरअसल उनकी रचनाधर्मिता को उत्तेजित करता है। निषेध या प्रतिरोध का तीखापन कलाकार की संवेदनाओं को भी तीखा बना देता है। हिन्दी उपन्यास जगत् में विशेष उल्लेखनीय तीन उपन्यास हैं जो कलाकार के आत्मसंघर्ष को बहुत हमदर्दी के साथ उकेरा गया है। अमृतलाल नागर के 'मानस का हंस' एवं खंजन नयन' तथा संजीव का सूत्रधार' 'मानस का हंस' और 'खंजन नयन' के नायक के क्रमशः मध्यकालीन कवि तुलसी एवं सूर है तो सूत्रधार का नायक है भोजपुरी नाटयकला का शेक्सपियर भिखारी ठाकुर।

'मानस का हंस' का तुलसीदास कलाकार की हैसियत या औकात से अच्छी तरह अवगत है। इसे निभाने में समाज उन्हें मदद देने के बजाय उनके सामने विविध प्रकार की अड़चनें पैदा करता है। उनकी प्रतिभा ने अयोध्या की पंडित मंडली में हलचल उत्पन्न कर दी। तुलसी द्वारा रच रहे नए काव्य को चुराकर उसे नष्ट करने की कोशिश कई बार हुई। नतीजा यह हुआ कि तुलसी को अयोध्या छोड़ना पड़ा और काशी में शरण लेनी पड़ी। विद्वानों की नगरी काशी की सृजनात्मक भाषा उस समय संस्कृत थी।

इसलिए आम जनता की भाषा में रचित रामचरितमानस की कड़ी निंदा हुई। सभी तकलीफों को रामकथा सुनाकर एवं रामलीला दिखाकर तुलसी ने खुशी में तब्दील कर दिया। उनके आराधकों की संख्या बढी, तदनुरूप उनके शत्रुओं की भी। शत्रुओं की भी। शत्रुओं ने उनपर झूठा इलज़ाम लगारकर उन्हें बंदी बनवाया। सत्ता को तुलसी के खिलाफ कर लेने में ये लोग काबिल हुए। लेकिन तुलसी की लोकप्रियता के सम्मुख उनके द्वारा रचे गए इन षडयंत्रों का कोई असर नहीं पड़ा। तुलसी ने रचनाधार्मिता में जो स्वतंत्र तरीका अपनाया वह उच्च वर्ग एवं पंडित वरेण्य को रूचिकर नहीं लगा।

'खंजन नयन' में भी कलाकार की स्वतंत्रता एवं प्रतिभा की अस्वीकृति को समस्या उठाई गई है। सूरदास अपने घर में ही भाईयों द्वारा उपेक्षित एवं बहिष्कृत पात्र है। इसलिए वे घर छोड़ने को मज़बूर हो गए। मथुरा से वृन्दावन, वृन्दावन से मथुरा और वहाँ से वाराणसी इस प्रकार वे घूमते फिरे। सबको मंत्रमुग्ध करनेवाला उसका मधुर गायन, भ्रमण के बीच अर्जित ज्योतिष विद्या और साहित्यिक कौशल आदि ने उनके शत्रुओं की संख्या बढ़ा दी। इन सबसे परे वे एक अंधे हैं। विकलांगता के प्रति समाज की जो हीन भावना है इसे हमदर्दी के साथ उकेरने में अमृतलाल नागर से साहस दिखाया। तुलसी ने जिस प्रकार काम और राम के द्वन्द्व में श्याम को वरण किया। इन दोनों संदर्भों में दुर्दमनीय अपराजेय आततायी शक्तियों से उनका संघर्ष असल में मानवाधिकार के ध्वंस के खिलाफ है। उस समय के समाज में निम्न व्यक्ति को अपनी सृजनात्मकता को प्रमाणित करने का हक नहीं दिया जा रहा था।

संजीव का 'सूत्रधार' नामक उपन्यास समकालीन संदर्भ की गंभीर समस्याओं को उभारने के साथ एक दलित कलाकार का आत्मसंघर्ष भी है। जातिप्रथा के शिखर पर बैठे भारतीय समाज एक दलित को रचनाकार के रूप में कैसे स्वीकार कर सकता था? उच्च जाति के लोगों के लिए वह 'भिखारिया' नचनिया था, भांड था, लौंडा था। जिस समय भिखारी ठाकुर नाई से 'कलांवत' बनने का प्रयास कर रहे थे, उस समय सवर्णों ने पग–पग पर उन्हें अपमानित करने, उनके आत्मविश्वास को कुचलने में कोई कोई कसर न छोड़ी और उन्हें बार–बार नाई होने का अहसास कराया। भिखारी ठाकुर के मार्ग की सबसे बड़ी बाधा थी उनका नाई होना। जब भी वे कागज़–कलम उठाते, कोई न कोई दाढ़ी–बाल बनवाने चला आता था। उस प्रकार नाई और कलाकार के बीच के संघर्ष में आखिर कलाकार की जीत होती है। लेकिन यह कलाकार कभी भी नाई का केंचुल उतार नहीं सका। उच्च वर्ग उन्हें जातिगत हैसियत की याद दिलाते रहे। लेकिन 'भिखारी' के मन में कभी भी किसी के प्रति विद्वेष नही पला। वे अपने रचना–क्रम में नित–नित कर्मशील रहे।

'विदेसिया' भिखारी ठाकुर का प्रमुख नाच था। इसके अलावा लोक–नाटकों के माध्यम से भिखारी ठाकुर ने समाज की तस्वीर पेश की। उनके नाच लोगों की आत्मा को झकझोरने लगे। उनके नाच में लेखक–कलाकार की व्यक्तिगत पीड़ा और सामाजिक बोध बार–बार होता रहा। उनके नाटक स्थिर नहीं थे, बल्कि उनमें निरंतर विकास और बदलाव आता गया। भिखारी ठाकुर ने लौडों के अश्लील नाच को सष्जनात्मक साहित्यिक एवं कलात्मक ऊँचाई प्रदान की। भिखारी ठाकुर के नाटकों से उच्च वर्ग के लोग इस हद तक तिलमिला जाते थे कि वे हंगामा कर देते थे। क्योंकि उनके नाचों में बेटी बेचने जैसी जिन कुरीतियाँ का अंकन हुआ है वे सब अधिकांशः उच्च जाति के लोगों में ही व्याप्त थी। कई बार लोग विरोध करते मारा–मारी करने को उतारु हो जाते थे। पर उनके नाटक सचमुच भारतीय समाज में फैली कुरीतियों का पोल खोल देनेवाले थे।

उपर्युक्त तीनों रचनाओं अथवा कलाकार के सृजनात्मक अधिकार का ध्वंस तथा उससे उबरने मे सतत संघर्ष को दर्शाया गया है। कलाकार आज भी सत्ता और समाज के षडयंत्र के शिकार हैं। वैसी परतंत्रता खास तौर पर आज की पत्रकारिता के क्षेत्र में सर्वप्रचलित है। प्रकाश मनु द्वारा लिखित 'यह जो दिल्ली हैं में उपन्यासकार यह जाहिर करते हैं कि पत्रकार आज स्वयं सत्ता का एक केन्द्र बनता जा रहा है जबकि उसका काम मूलतः सत्ता की गलत नीतियों के खिलाफ सख्त आवाज़ उठाना है। लेकिन आज पत्रकारिता एक उद्योग मात्र बन गयी है। इसलिए मुनाफा को लक्ष्य करके पनपनेवाली पत्रकारिता के क्षेत्र में जो ईमानदार लोग प्रवेश करते हैं उन्हें या तो हताश होकर विराम लेन पड़ता है नहीं तो पुंसत्वहीन होकर सत्ता का गुलाम बनना पड़ता है। उपन्यास में नायक अपनी प्राध्यापिकी वष्त्ति छोड़कर दिल्ली में पत्रकार बनने के मोह में आ गया। विविधि पत्रों में काम करने के बाद उसको मालूम हुआ कि दिल्ली की पत्रकारिता को बचाना किसी के वश की बात नहीं है। पत्रकारिता का क्षेत्र पूर्णतः पेशा बन गया, उद्योग बन गया, मुनाफा केंद्रित हो गया। सत्यकाम कहता है– ''यह वह जगह है, जहाँ से बहुत कुछ बनाया जा सकता है– शब्दों की पूरी ताकत का इस्तेमाल। पर यहाँ आकर लगा कृकृ कि यहाँ सिर्फ है और उबकाई जो कृकृ जो बहुत समय से एक ही जेल में रह रहे कैदियों में पैदा हो जाती है कृ और कुछ नहीं। कृकृकृ आज मैं जानता हूँ, दुनिया के सबसे मूर्ख, मनहूस और घाघ लोगों के बीच रहनाा हो तो पत्रकारिता में आ जाइए ... '' (पृ.20)

पत्रकारिता का जो लक्ष्य है, आदर्श है, वह खो गया। स्वतंत्रता के पूर्व हिन्दी पत्रकारिता स्वतंत्रता आन्दोलन के प्रति समर्पित थी। उसका प्रमुख उद्देश्य जन जागरण

था। लेकिन आज़ादी के बाद उसका लक्ष्य बहुआयामी तो हो गया। जो सहज ही था। किंतु सबसे बड़ी कमी यह रह गई कि वह जनोन्मुख नहीं हो पाई। पत्रकारिता की कमी को दूर करने के लिए दिन रात दिल तोड़ काम करके उसके लिए अपने मन को पूर्ण रूप से समर्पित करने के बाद पत्रकारिता एवं जीवन से हताश होकर खुदकुशी के लिए तैयार होनेवाला एक इमानदार और आदर्श पत्रकार है सत्यकाम। अंत में वह अपने गांव जाकर काम करने का निर्णय लेता है, – मुझे लगता है, यह महानगरीय चौधवाली पत्रकारिता के जवाब में ज़मीन से जुड़ी पत्रकारिता की शुरूआत होगी .... काम कितना ही मुश्किल और वेतन कितना ही काम हो, मुझे परवाह नहीं .... (पृ.246) क्या सत्यकाम के दिल्ली छोड़ने से दिल्ली की पत्रकारिता बच जाएगी। नहीं कोई खास बदलाव नहीं आएगा। यह उद्योग मोटा तगड़ा बन गया है। लेकिन ईमानदार पत्रकार अपने अधिकारों से वंचित होकर कभी–कभी उस क्षेत्र को छोड़ देते हैं, नहीं तो पागलखाने में बंद हो जाते हैं, नहीं तो न्याय के लिए कानूनी लड़ाई करते रहेंगे, कौन बचायेगा इस पत्रकारिता को ? पत्रकारिता में सच्चे लेखकों की पराधीनता एवं संघर्श की गाथा चित्रामुद्गल के उपन्यास 'एक ज़मीन अपनी' में भी सूचित किया गया है।

ऊपर रचनाकार एवं पत्रकार के अधिकारों पर इसलिए विचार किया गया कि उनको ही मानवाधिकारों से वाकिफ होकर जनता के सामने खुलकर पेश करना है। लेकिन उनके पैरों पर बेडियाँ हैं तो मानवाधिकार, उससे जुड़े कानून एवं उससे वंचित होने वाले मानवों की दर्दनाक दास्तान कैसे मुखौटा खोलकर बाहर प्रकट हो जाएगी। इसलिए उनको सबसे पहले सत्ता एवं राजनीति के बंधन से मुक्त करना ज़रूरी है।

हिन्दी से समकालीन उपन्यासों में मानवाधिकारों का निषेध कई प्रकार से पेश किया गया है। कहीं स्त्रियों का है तो कहीं दलितों का और कही आदिवासियों का। इन सबसे परे प्रकृति के अनुचित शोषण के द्वारा मानव के जीने के अधिकार को भी छीन लिया जाता है। इन सबके बीच में पेट की ज्वाला को शांत करने के लिए विवश जनता है। इसलिए वर्गगत समस्या के साथ स्त्रीविमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, पारिस्थतिक विमर्श, वृद्धविमर्श जैसे कई विमर्शों की दृष्टियों से समकालीन उपन्यासों को जब परखा जाता है तब कई मानवीय अधिकार या मानवीय स्वतंत्रता के ध्वंस अनायास खुलकर प्रकट हो जाते हैं।

हाशिएकृत लोगों का यथार्थ

मानवीय अधिकारों की दृष्टि से विचारणीय एक सशक्त उपन्यास है चित्रा मुद्गल का 'आवां'। में सामज के सबसे निम्न तबके के लोगों का जीवन संघर्ष है। एक जून के खाने

के लिए पहनने के वस्त्र और रहने की झोंपड़ी के लिए लड़नेवाली समाज के सबसे निम्न तबके के लोग ट्रेडयूनियों के सहारे संघर्ष करते हैं। ट्रेडयूनियन अधिकार एवं अन्याय के विरूद्ध लड़ने के लिए प्रयुक्त एक सशक्त हथियार है। वह परिवर्तन के लिए अनिवार्य है। पूँजीवादी के विरूद्ध लड़ने के लिए मजदूर लोग संगठित हुए हैं। अपने अधिकारों के लिए, उचित वेतन के लिए मजदूर व्यवहारों के विरूद्ध मजदूरों को लड़ना ही पड़ता है। उन्यास में अधिकारों के लिए वर्गगत संघर्ष, स्त्रियों का संघर्ष, वेश्याओं का संघर्ष, दलितों का संघर्ष जैसे संघर्षों के कई पहलू अनावष्त हो उठे हैं।

'आवां' में प्रतापनगर के चारों ओर फैली हुई मजदूर बस्तियों की कहानी चित्रित है। इन बस्तियों में घुसना भी मुश्किल है। बहुत तंग गलियाँ है इस प्रदेश की। वहाँ एक जमाने में अन्ना साहब तथा देवीशंकर पांडे मिलकर मजदूरों की भलाई के लिए लड़े थे। आदर्श के रास्ते पर चलनेवाले इन दोनों को साथ देने के लिए वहाँ के सारे के सारे मजदूर तैयार थे।

उद्योगपतियों की पूंजीवादी व्यवस्था के खिलाफ थी उनकी लड़ाई। उस सड़ी–गली सामाजिक व्यवस्था में उन्होंने कहाँ तक जीत हासिल की, वह विचारणीय है। वहाँ की अधिकांश महिलाएं लघु उद्योगों में विशेषकर पापउ बोलने जैसे धंधे को स्वीकार कर गांधी की शिष्या शाहबेन के नेतृत्व में आत्मनिर्भर बनने की कोशिश में थी। स्त्रियों को अपने अधिाकारों एवं शक्तियों से परिचित कराने तथा उनके मुकदमे आदि चलाने, उस पर विचार करने के लिए 'कामगार अघाडी' ट्रेडयूनियन सदा सक्रिय रहता था।

उपन्यास में अठारह महीने के लंबे कपडेमिलोंवाली हड़ताल का जिक्र किया गया है। उसमें दस किलोमीटर लंबा मोर्चा मजदूरों ने निकाला था। लंदन के अखबारों ने उसे विश्व में आठवें आश्चर्य के रूप में अंकित किया था। उपन्यास के देवीशंकर के अनुसार आज का समाज संवेदनहीन, नपुंसक समाज है। श्रमिकों की लड़ाई में आज का समाज अपना कोई दायित्व नहीं निभाता है। देवीशंकर ने अस्थाई श्रमिकों को स्थाई करने और श्रमिक एक्ट के अनुसार उन्हें बुनियादी सुविधायें मुहैया करने के उद्देश्य से प्रंबधन नीतियों के खिलाफ 'विटरम ग्लास' में हड़ताल का आह्वान किया था। नौ दिनों तक चली हड़ताल ने फैक्टरी मालिकों पर कोई असर नहीं छोड़ा। भट्टी पर सुलगनेवाले अस्थायी कर्मचारियों के पक्ष में देवीशंकर ने निरुपाय होकर आमरण अनशन करने का निर्णय किया। फैक्टरी के गेट पर आमरण अनशन पर बैठे देवीशंकर के ऊपर तीसरे दिन में ही प्राणलेवा हमला मानेंजमेंट की तरफ से होता हैं। उन पर इसलिए आक्रमण हुआ है कि श्रमिकों के लिए भरसक कोशिश करनेवाले उनके अंत की जरूरत मानेजमेंट

के महसूस की। लेकिन वरिष्ठ श्रमिक नेता होने के नाते फैक्टरी ने उनके इलाज के प्रबंध में आनाकानी नहीं की। फिर भी वे अपने कर्मक्षेत्र से मुड़ने को तैयार नहीं हुए। वे 'कामगार आधाड़ी' के दफ्तरी काम में लग गए। 'कामगार आधाड़ी' को लेकर उनका जो सपना है वह यों स्पष्ट है, ''दाल चाहिए भाव चाहिए और बच्चों की शिक्षा है/बुनियायदी हक की लड़ाई नहीं मांगते भिक्षा/आज नहीं तो कल तुमको होगा देना हिसाब/पैरों तले रौंद रखे हैं जिन ख्वाबों के/हमसे जो टकराएगा, मिट्टी में मिल ख्वाब जाएगा/कामगर आधाड़ी ज़िन्दाबाद। लोकशाही जिंदाबाद।'' (आवां, पष़ 92) यह लड़ाई बुनियादी हक के लिए है, वही मानवाधिकार की लड़ाई है। इन बुनियाद जरूरतों से वंचित श्रमिकों के लिए जीवन भर लड़नेवाला है उपन्यास के नायक अन्ना साहब।

औद्योगीकरण अथवा भूमंडलीकरण की वजह से विकास के नाम पर कई योजनाएं तैयार की जा रही हैं। इसके तहत श्रमिकों की छोटी–छोटी कुटियों के स्थान पर बड़े–बड़े मकान बनाए जा रहे हैं। विस्थापित इन लोगों के आगे की जिन्दगी को सुचारू रूप से संपन्न कराने में कोई इंतजाम नहीं किया जाता हैं। वासस्थान से वंचित होनेवाले ऐसे अनेक लोग हमारे बीच में हैं। ऐसी घटनाओं के विरूद्ध अन्ना साहब के नेतष्त्व में ट्रे यूनियन ने जो लड़ाइ लड़ी वह विचारणीय है। कुछ चालाक व्यवासायी दिमाग के मालिक दस–बारह रूपए किराए पर उठी खोलियों को श्रमिक भाड़यात्रियों से खाली करवाने के लिए बिल्डरों से साठ–गांठ कर योजना बना रहे थे कि किरायेदारों को जोर–जबरदस्ती बेदखलकर उन्हीं भूखंडों पर बहुमंज़िला इमारतें बनाई जाएं ताकि वे लाखों की रकम आसानी से पीट सकें। इनके विरूद्ध अन्ना साहब ने किरायेदारों को संगठित किया। बहुत कष्टों को झेलकर ही नहीं आखिर उस प्रयत्न को समाप्त किया गया। उन्यास में अन्ना साहब द्वारा आपतकाल का विरोध दर्ज हैं। मानवाधिकार का सबसे बड़ा ध्वंजस आपातकाल के जरिए हुआ था।

जहाँ जहाँ पूंजीवाद का अन्याय हो, वहाँ गरीबों की सुरक्षा के लिए अन्ना साहब पहुँच जाते हैं। प्रतापनगर के आसपास के श्रमिकों की सुरक्षा के लिए बहुत सी बातें उन्होंने कीं। उन्होंने कहा– ''श्रमिकों की अस्मिताा का प्रश्न मेरे लिए राजनीति का खेल नहीं। समता अर्जन का धधकता हुआ संघर्ष है। अपने रक्त की आखिरी बूंद तक मैं इस लड़ाई को जारी रखूँगा। (आवां – पृ. 178) देवीशंकर जब पूर्णतः लकवाग्रस्त हो गए तब उनकी बेटी नमिता जो उपन्यास की नायिका है 'कामगार आघाड़ी' के दफ्तर में पिता के पद पर काम करने आती है। उसने खुद श्रमिकों की बुरी हालत पर सोचा समझा और उसे निपटाने का प्रयत्न शुरू किया। उन्होंने समझ लिया कि श्रमिकों को विवेक से काम करने के लिए और अपने अधिकारों से अवगत कराने के लिए शिक्षा की

अनिवार्यता है। उन्हें शिक्षा से वंचित करने की वजह आज की व्यवस्था ही है। इस सामाजिक एवं शासन– व्यवस्था में परिवर्तन आए बिना श्रमिकों की दशा सुधरेगी। उन्हें मूर्ख बनाकर पूंजीपति वर्ग स्वार्थ के लिए कठपुतली के समान काम करवाता है।

नमिता को 'आघाड़ी महिला मोर्चा' जो श्रमिक महिलाओं का संघ हे उसके जरिए महिला श्रमिकों में चेतना जगाने का अवसर मिला। आघाडी महिला मोर्चा का मुख्य अभियान यही है कि स्वाधार ग्रहण करने वाली प्रत्येक स्त्री महिला श्रम–संबंधी कानूनी पक्ष से पूर्णतः अवगत हो। आज भी वे अपने मूलभूत अधिकारों के प्रति उपेक्षित परे उस ब्लैक बोर्ड की भांति हैं, जिस पर कोई ककहरा अंकित नहीं किया गया। नमिता फैक्टरियों और खदानों में कार्यरत श्रमिकाओं के अधिकारों से संबंधित कानूनों की सामान्य जानकारी प्राप्त कर, उनकी समस्यायें सुनकर, जानकर उनसे संबंधित वास्तविकता की कुरूपता के अतल तक जाने के श्रम में थी। उसने समझ लिया कि श्रमिक नरक सदष्श परिस्थितियों में रहने को अभिशप्त है। श्रमिकों का यथार्थ जीवन देखने के लिए घाटकोपर से लेकर कांजूर मार्ग, भांडुप, मुलुंड तक फैली उन बस्तियों में जाना हैं वहाँ मनुष्य और सुअर में कोई अंतर नहीं। उनके बाल–बच्चे एवं कामगार महिलाओं से मिलने पर उनका यथार्थ जीवन जाना जा सकता है। उपन्यास में पवार एक पात्र है जो दलितों के उद्धार के लिए कटिबद्ध है, उसके अनुसार कानून से अवगत हुए बिना दांव–पेंचों से मुठभेड़ संभव नहीं। संघर्ष की चिनगारी जगाने के लिए इसकी सख्त जरूरत है।

सिबाका में एडबेकर जैसी बहुत कंपनियों में पैकिंग गर्ल के रूप में कार्यरत स्त्रियाँ भी अपने श्रम–अधिकारों से अवगत नहीं, जबकि पैकिंग गर्ल के रूप में मैट्रिक से कम पढ़ी–लिखी स्त्रियों की भर्ती नहीं होती। कामगार आघाडी की केस हिस्ट्री में नमिता ने अनेक केस देखे हैं। उदाहरण के रूप में एक केस है पंढरी बाई की। वह 'जय हिन्दू आइल मिल' की महिला श्रमिक है। जचकी का केस होने के बावजूद कंपनी ने पंठरी बाई को धमकी दी थी कि वह तत्काल काम पर लौटे, वरना नौकरी खत्म समझे। इतनी लंबी छुट्टी कंपनी बर्दाश्त नहीं कर सकती। अंछर सेक्शन चार का केस थ। कायदे से बच्चा पैदा होने के हछ हफ्ते बाद हो उसे काम पर लौटना काफी था। कंपनी की धमकी से घबराकर पंढरी बाई तुरंत काम करने पहुँच गई। अधिक परिश्रम के चलते उसके पेट के गीले टॉकी टूट गए। काम पर जाकर स्वयं पढरी बाई ने अज्ञानतावश अपराध किया। वह जानती ही नहीं थी कि जटिल परिस्थितियों में वह बारह हफ्ते की छुट्टी ले सकती है। विमला बेन ने जो 'आघाड़ी महिला मोर्चा' के नेतष्त्व में है पंढरी बाई का केस उठाया। उन्होंने कंपनी प्रबंधकों को ऐसा हड़काया कि कंपनी को अपनी

धमकी ही वापस नहीं लेनी पड़ी जचकी के समस्त फायदे भी अविलंब देने पड़े। ऐसी कई घटनाएँ हैं, जो कानूनों से वाकिफ न होने पर उत्पन्न हुईं हैं।

लेकिन अपने अधिकार के लिए खुद लड़ने को तैयार होनेवाली किशोरी बाई और उसकी बेटी सुनंदरा की कथा इस उपन्यास को और महत्वपूर्ण बना देती है। वाकई एक त्रासद यथार्थ श्रमिक महिला के रूप में संघर्ष करते जीनेवाली किशोरीबाई और कुछ समय तक के लिए ही सही संघर्ष करते–करते हत्यारों की शिकार बननेवाली सुनंदा उपन्यास के सबसे जीवंत पात्र होने के साथ–साथ पाठकों को संघर्ष–चेतना से ओत–प्रोत श्रमिक नारी का परिचय भी देती है। विवाह के पूर्व ही सुनंदा गर्भवती बन गई। बाद में तो किशोरीबाई को मालूम हुआ है कि सुहैल नामक मुसलमान का बच्चा सुनंदा की कोख में पल रहा है। सुनंदा को सतमासी बेटी पैदा हुई है। उधर 'मे एंड बेकर' कंपनी में वह काम कर रही थी। कंपनी ने सुनंदा को नोटिस जारी कर दिया कि काम पर लौटे। चेतावनी यह थी कि अगर वह ब्याह का प्रामणपत्र नहीं प्रस्तुत करेगी तो कंपनी न तो उसकी जचकी की छुट्टियाँ कानूनन मंजूर होंगी, न छुट्टियों की तनख्वाह मिलेगी। ब्याहता स्त्रियाँ ही जचकी के फायदे की कानून अधिकारिणी हैं। इसलिए उसका केस कामगार आघाडी में आ गया। सुनंदा बहुत साहसी एवं अपने अधिकारों से अवगत लड़की है। उसने कंपनिवालों को सूचित किया कि सुविधा का प्रावधान गर्भवती स्त्री और उसके बच्चे को लेकर है, न कि कुंआरी–माँ या ब्याहता माँ के विशेषण के लिए। उसने कई कानूनी सवाल उठाए। कुंआरी माँ क्या ब्याहता माँ के ही समान जचकी के घोर कष्टों से होकर नहीं गुजरती? उसे आराम की जरूरत नहीं होती? माँ बनना किसी के निजी मामले की बजाय कंपनी का मामला कैसे हो गया? वह यह भी मांगती है कि अपनी बच्ची के लिए भविष्य में क्रेश की सुविधा चाहिए, वे सारी सुविधायें जो कंपनी अन्या माँ कर्मचारी को उपलब्ध करती है। वह अपने मातृत्व को ब्याह के टुच्चे प्रमाणपत्र का मोहताज नहीं मानती है। अपनी बच्ची की परवरिश करने को वह तैयार है। इस प्रकार स्त्री के माँ बनने के अधिकार पर जोर देने के साथ कुंआरी माँ पर प्रश्नचिह्न उठानेवालों की संकुचित सोच की निंदा भी वह करती है।

चाली के भीतर पली–पढ़ी लड़की की प्रखर अंतश्वेतना देखकर सुनंदा के सामने नमिता को बहुत बौना लगा। सांप्रदायिक विद्वेष के खिलाफ सुनंदा का आह्वान स्त्रियों की भारी एकजुटता का कारण बन गया। स्त्रियों के अधिकारों से अवगत सुनंदा जब सांप्रदायिक विद्वेष के खिलाफ लड़ रही थी, तब किसी ने उसकी हत्या की। वेश्याओं का संगठन 'जागो री' की सदस्यायें अपने को सेक्स वर्कर मानती हैं और अपने अधिकारों के लिए लड़ती हैं।

उन्यास में यह भी दिखाया गया है कि पूंजीवादी मानसिकता ने गर्भपात्र को भी किराए की चीज बना ली है। नमिता को आभूषण उद्योगपति अपने चंगुल में फंसाकर उसके गर्भपात्र को अपना बीज उगा लेने का साधन बना लेने का षडयंत्र रखने हैं। लेकिन वहाँ भी नमिता का संघर्ष उसे बचा देता है। पूरा उपन्यास मानवाधिकारों के लिए संघर्ष करने की जरूरत पर बल देता है। ट्रेडयूनियन संघर्ष के जरिए अधिकारों को हासिल करने के लिए है जो आजकल कुछ ट्रेडयूनियन सत्ता एवं मानेजमेंट के साथ मिलकर अपने लक्ष्य से भ्रष्ट होते दिखाई देते हैं। यह भी उपन्यास में साबित किया गया है। आदर्श नेताओं की कमी आजकल राजनीति एवं ट्रेडयूनियन के क्षेत्र में निराशा पैदा करती है। जो आदर्श नेता है उनका अंत गांधीजी का जैसा होगा। उपन्यास के मुख्य पात्र को गांधी जैसे महामानव का दर्जा उपन्यासकार ने दिया। चित्राजी अन्ना साहब को कई प्रकार से गांधी के निकट लाने की कोशि करती हैं। इससे यह जाहिर हो उठता है कि गांधी के सामने मानवाधिकारों की रक्षा के लिए संघर्षरत एक महान व्यक्तित्व की कमी वर्तमान जन मानस महसूस कर रहा है।

गांधीचिंतन की प्रतिष्ठा अन्ना साहब के माध्यम से ही नहीं बल्कि श्रमजीवी संस्थान चलानेवाली गांधीजी की चेली शाहबोल के महान कार्यों के द्वारा भी हुई है। स्त्री को आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबन प्रदान करने के लिए श्रमजीवि संस्था का काम बहुत सराहनीय है। पापड बेलहारियों का स्वयंसेवी संघ है श्रमजीवी संस्था। वहाँ काम करके बहुत सी स्त्रियाँ अपनी आजीविका चलाती हैं। गांधी के अनुसार उच्च्य विचार एवं सरल जीवन बितानेवाली शाहबेन गांधीजी के शब्दों की याद करती है, ''जीवन में कोई अकेला नहीं होता, अकेला वही होता है, जिस अपने ऊपर भरोसा नहीं होता।'' (पृ.86) गांधीजी के महान विचारों के सख्त जरूरत आज अधिकारों के लिए संघर्ष करनेवालों को है, यह उपन्यास की कई संदर्भों से विविद होता है। ट्रेडयूनियन का आदर्श ईमानदार राजनीति को अपनाना चाहिए, वहाँ से ही लक्ष्य प्राप्त हो सकता है।

निष्कर्षतः 'आवा' संघर्ष का उन्यास है। जब तक समाज में जनता अपने अधिकारों से वंचित हो जाएगी, चाहे वह श्रम का हो या स्त्री का हो, तब तक संघर्ष का आवां युवा मानस में जलताा रहेगा। इस अजस्र संघर्ष चेतना की ऐतिहासिकता का संदेश पेश करते हुए यह उपन्यास सभी कालों में पुनर्नवा के समान संघर्ष की नित्यनवीन स्फूर्ति प्रदान करता रहेगा।

संजीव के उपन्यास साहित्य की खासियत यह है कि उनमें समाज के उपेक्षित व हाशियेकृत वर्ग को, विशेषकर आदिवासी जनसमुदाय को समाज की मुख्यधारा से जोड़ने की जबरदस्त कोशिश विद्यमान है। हमारी सामाजिक व्यवस्था आदिवासियों को

हमेशा समाज के निचले पायदान पर खड़ा करती है और उन्हें अपनी बुनियादी जरूरतों और अधिकारों से वंचित रखती है। सत्ताधारी वर्ग भी आदिवासी–जनवादियों के सामाजिक जीवन में अयाचित घुसपैठ कर रहे हैं और प्राकृतिक संसाधनों पर कब्जा जमाकर उन्हें हर स्तर पर विस्थापित करते हुए उनके अस्तित्व को भी चुनौती दिए जा रहे हैं। रमणिका गुप्ता का यह शब्द देखिए – ''विकास के नाम पर आदिवासी को विस्थापित कर जंगल और जल से वंचित कर जंगलों से बाहर खदेड़ा जा रहा हैं। दलअसल आदिवासी अपने श्रम के बल पर सदैव आत्मनिर्भर और स्वावलंबी रहा है। वह प्रकृति से संवाद करता चलता है, उसका सहयात्री है, उसको गाय की तरह पोसना और दुहता है।'' (आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी –पृ.8) इन प्रकृति पुत्रों पर जो हमला हो रहा है वह हमारे संस्कृतिक पतन का सूचना है। इसलिए इस अप्रत्याशित परिवेश में आदिवासियों के मुक्ति– संघर्ष को अपनी रचनाधर्मिता का आधार बन लेते हैं संजीव। इस दृष्टि से उनके उपन्यास 'सावधान नीचे आग है', 'धार', पांव तले की दूब' और 'जंगल जहाँ शुरू होता है' विशेष ध्यातव्य है।

'सावधान! नीचे आग है' में संजीव ने बिहार के झरिया–घनबाद कोयला क्षेत्र में मजदूरी करनेवाले आदिवासियों की अभावग्रस्त जिंदगी को बड़ी शिद्दत के साथ उकेरने का प्रयास किया है। खदान माफिया, इजारदार, सूदखोर और दलालों के बहुआयामी शोषण से आदिवासी मजदूरों की जिंदगी बहुत शोचनीय बन गई। मजदूर सूदखोर, दारूखाने, पुलिस, प्रशासन सब खदान माफिया और ठेकेदारों से जायज–नाजायज संबंध रखते हैं। सत्ता एवं सामंती शक्तियाँ मिलकर अंगारडीह के आदिवासियों की जमीन हड़पने की कोशिश करती हैं। संजीव अंगार डीहा के आदिवासियों झानू, काला माझी बृन्दावन और पोना के शब्दों में उनकी बदहालता पर यों प्रकाश डालते हैं ''.... आस्ते–आस्ते सारा जमीन दखलकर लिया हमारा, बोले, हम कहाँ जाएगा। बोले! .... बोला नौकरी देगा, पानी देगा, स्कूल खोलेगा – ये कर देगा, वो कर देगा, सोना से मढ़ देगा। क्या किया, बोले ? .... हम अपना मुश्किल बताने गया तो पोस गुंडों से पिटवाया। ..... हमको घूँसा से मारा था, कुलता साला।'' (सावधान नीचे आग है – पृ.43) इस उपन्यास में आदिवासी शोषण के साथ पूंजीपति वर्ग अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए मजदूरों की जिंदगी तबाह करने का चित्र भी पेश है।

उपन्यास में अंगारडीहा का आदिवासी झानू कोलमाफियाओं के शोषण के प्रति सजग है। वह आदिवासियों की जमीन की पैमाइश् करने के लिए अपने दल समेत पहुँचे एजेंट आहूजा, दलपति भभी–खनराय, सेक्योरिटी गार्ड और पुलिस के जवानों के विरूद्ध स्थानीय लागों को एकत्रित करता है और सशस्त्र संघर्ष की अगुवाई भी करता है।

जमीन की सतह से हजारों फूट नीचे दमछोटू वातावरण में जान–जोखिम में डालकर कोयला खनन करनेवाले झान जैसे मजदूरों को अधिकारीवर्ग की कूटनीति की भी सह पहचान है। इस उपन्यास में वर्ग संघर्ष के साथ ही साथ आदिवासियों के जीवन संघर्ष भी अनावृत हुआ है।

'धार' में लेखक ने संथाल परगाना और छोटा नागपुर के कोयला खदानों में काम करनेवाले श्रमजीवि आदिवासियों की बदहालत को उजागर करने का प्रयास किया है। पूंजीपतियों, कोलमाफियाओं, ठेकेदारों और दलालों का बहुआयामी शोषणतंत्र बांसगडा अंचल के आदिवासी जीवन में वैषम्य पैदा करता है। संथाल आदिवासी टेंगर बांसगडा के आदिवासियों को रोजी–रोजगार मिलने की खुशी में पूंजीपति महेंदर बाबू को देजाब का कारखाना खोलने के लिए अपनी जमीन दान में दे देते हैं। लेकिन कारखाना खोलने पर आदिवासी मजदूरों को महेंदर बाबू अपने वश में रखकर उनका शोषण करने लगता है। इसलिए उन्हें दो जून की रोटी भी मयस्सर नहीं होती। उनकी जिंदगी पर फाक्टरी के कई प्रकार का बुरा असर पड़ता है। बांसगडा के पर्यावरण को दूषित करने के साथ आदिवासियों को परंपरागत कृषिकार्य से वंचित कर उन्हें बरबादी के कगार पर ला खड़ा करती हैं। सब मजदूर बीमार हो गए, बाहर रांची आदि प्रदेशों से जो मजदूर आ गए उनको भी बीमारी के कारण वापस जाना पड़ा। फैक्टरी को वहाँ जनविद्रोह के कारण बंद करना पड़ा। लेकिन फैक्टरी बंद होने पर महेंदर बाबू बांसगडा में अवैध कोयला खनन शुरू करते हैं और राष्ट्रीय संपत्ति की लूट भी करते हैं। अवैध कोयला खनन से बांसगडा गांव प्रायः उजड़ गया था।

'धार' को आदिवासी विद्रोह की अनूठी दास्तान माना जा सकता है। उपन्यास में संस्थाल आदिवासियों की संघर्ष चेतन के मूल में विचार और क्रिया का समन्वय परिलक्षित होता है। अविनाश शर्मा संघर्ष का विचारात्मक पक्ष है तो मैना क्रियात्मक पक्ष। संथाली नारी मैना, जो अशिक्षित है, फिर भी वह आदिवासियों को महेंद्र बाबू सरीखे शोषकों के शिकंजे से मुक्त करने का बीड़ा उठाती है। संथालों की मिटती अस्मिता पर प्रश्न चिह्न डालकर वह संथाल आदिवासियों में नई चेतना भरने की जबरदस्त कोशिश करती है। अविनाश शर्मा संघर्ष का विचारात्मक पक्ष है तो मैना क्रियात्मक पक्ष। संथाली नारी मैना, जो अशिक्षित है, फिर भी वह आदिवासियों को महेन्द्र बाबू सरीखे शोषकों के शिंकजे से मुक्त करने की बीड़ा उठाती है। संथालों की मिटती अस्मिता पर प्रश्न चिन्ह डालकर वह संथाल आदिवासियों में कई चेतना भरने की जबरदस्त कोशिश करती है। अविनाश शर्मा–जनखदान में आदिवासियों की बेहतर और सुव्यवस्थित जिंदगी के लिए अनुकूल वातावरण पैदा करके आदिवासी संघर्ष को सही रास्ता दिखाते हैं। उनके

शब्दों को सुनि – ''ज्ञान का एक दरवाज़ा आपके लिए बंद क्यों रहे। आप खुद जानिए कि सरकार ने आपके लिए क्यों सुविधाएं दी हैं कागज़ों में और आपकी नियति क्या है। इस नियति को बदलने का रास्ता क्या हो सकता है ? कृकृ जिस तरह जुए इत्यादि गलत कामों से आपने तौबा कर ली है, शराब से भी कर ले।'' (धार – पृ. 35) शर्मा और मैना के नेतृत्व में आदिवासी संगठन 'जनखदान' रूपायित हुआ। लेकिन इसे भी पराजित करने का प्रयत्न पूंजीपतियों ने किया। लेकिन उन्हें हौसला देते हुए शर्मा साथ थे, उनके अधिकारों से सजग करते हुए।

'पांव तले की दूब' में शोषण के प्रति झारखंड आदिवासियों के सक्रिय विद्रोह का जीता–जागता चित्र है। विका परियोजनाओं के नाम पर आहत झारखंड के आदिवासी समाज को अन्याय, शोषण, बेदखली, विस्थापन जैसी अनेक समस्याओं से जूझना पड़ता है। अर्थात् औद्योगिक परियोजनाओं की घुसपैठ से झारखंड आदिवासियों का सामाजिक ढांचा बिखर जाता है। ऐसी स्थितियाँ झारखंड आंदोलन के लिए पृष्ठभूमि तैयार करती हैं, जो औद्योगिक प्रगति के दौर में आदिवासियों के स्वतंत्र अस्तित्व की मांग करता है। संजीव ने आंदोलनकर्मी द्वारा आदिवासियों के उद्धार के लिए किए गए प्रयत्नों का उल्लेख उपन्यास में किया है। झारखंड आंदोलन के सक्रिय नेता माधों हंसदा शिक्षा का प्रसार और शराब बंदी के जरिए आदिवासी समाज में फैली सड़ी–गली मान्याताओं को खतम करना चाहते हैं। उनके समान विजय महते, सुदामा प्रसाद, सुदीप युवा छात्र नेता फिलिप आदि झारखंड के आदिवासियों में संघर्ष चेतना जगाने में अपने विचारों और कर्मों के द्वारा समर्थ निकले।

'जंगल जहाँ शुरू होता है' में संजीव यह सवाल उठाते हैं कि ''आखिर इन थारुओं में अपने इस शोषण के विरूद्ध कोई आक्रोश क्यों नहीं उपजता न अपना कोई नायक क्यों नहीं खड़ा कर पाई यह जाति ? कृकृकृ अगर नारियाँ ही पुरुषों से जीवंत है तो नायिका ही खड़ी होती कोई ?'' (पृ. 280) आदिवासी लोगों की अज्ञता, जागरण का अभाव अपने अधिकारों के प्रति अनभिज्ञता आदि पर वे विशेषतः बल देते हैं। लेकिन उपन्यास में मास्टर मुरली पांडे, डी. एस. पी. कुमार और आदिवासी युवक काली अपने–अपने ढंग से आदिवासी समाज में सुधार लाने का प्रयत्न करते हैं। मास्टर मुरली पांडे पेशे से अध्यापक हैं, फिर भी वे एक प्रतिबद्ध सामाजिक कार्यकर्त्ता की हैसियत से एक ओर थारू समाज में व्याप्त धार्मिक अंधविश्वासों पर तीखा प्रहार लेते हैं, तो दूसरी ओर पश्चिमी चंपारण को डाकुओं के चंगुल से मुक्त करने का प्रण लेते हैं। लेखक हमें सोचने के लिए विवश करते हैं, कि क्यों जनजातीय समाज के सदस्य प्रचुर मात्रा में अपराधी बन जाते हैं? यह किसी अंचल विशेष का नहीं, बल्कि संपूर्ण भारतीय समाज

का यथार्थ है। भारतीय समाज में व्यवस्था द्वारा उपेक्षितों के प्रति नकारात्मक रुख पूंजीपतियों के आमानवीय उत्पीड़न, प्रशासन और पूंजीपतियों की मिलीभगत ये सब अपराध को बनाए रखने तथा उसको बढ़ावा दिलाने में जिम्मेदार हैं जनजातीय समाज द्वारा अपने ऊपर होने वाले अन्याय के प्रति चुप्पी साधना, उसके अस्तित्व के लिए खतरनाक सिद्ध होता है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि संजीव आदिवासी जनसमुदायों के बीच नई सोच का प्रसा कर एक परिवर्तित समाज की सषष्टि करना चाहते हैं। इसलिए वे अपना उपन्यासों में अपने अधिकारों के प्रति सचेत एवं सजग पात्रों की संसृष्टि करते हैं। ये पात्र सचमुच लेख के विचारों के संवाहक अवश्य हैं।

दलित उपन्यास दलितों की स्वानुभूति को दर्ज कर अपने अधिकारों के प्रति सतर्कता बरतने के प्रयत्न में है। उन उपन्यासों में दलित मानसिकता है। प्रतिकूलताओं से संघर्ष करते हुए सफलता तक पहुँचानेवाली मानसिकता है वह। उसमें पराजयबोल नहीं, उसमें विद्रोह एवं प्रतिरोध की भावना है। प्रेम कपाडिया का उपन्यास हैं मिट्टी की सौगंध'। इसमें जमीनदार और दलित वर्ग के बीच का संघर्ष है। उनको स्वतंत्र जीवन बिताने का कोई अधिकार नहीं। जमीनदार के अन्यायों से मुक्त होना है तो संगठित होना जरूरी है। दलित संगठित नहीं है, क्योंकि वे अशिक्षित है। शिक्षित समाज ही अन्याय एवं अत्याचार को पहचानने में सफल निकलता है। उपन्यास का नायक विजेन्द्र जो जमीनदार का छोटा बेटा है फिर भी वह हमेशा दलितों के साथ रहकर उनकी भलाई के लिए काम कर रहा है, उसके नेतष्त्व में दलित युवकों के सहयोग से न्याय सेना का गठन करता है। उस सेना का नायक है कालू पासवान। जमीनदार मदनसिंह और उनके बड़े बेटे शमेन्द्र का आतंक पूरे समाज में फैला हुआ है। आखिर न्याय सेना के लोग जमीनदार को चेतावनी देते हैं, जमीनदार मदन सिंह अगर अपने परिवार को ठीक रखना है, तो रामनगर में दलितों और गरीबों पर जुल्म ढाना बंद कर दें, वरना तेरा नाश न्याय सेना कर देंगी।'' (पष्–73) आखिर न्याय सेना की जीत होती है। वे ठाकुर के छोटे बेटे विजेन्द्र की मदद से जमीनदार को गिरफ्तार करा लेते हैं और अदालत उन्हें 10 साल की सजा देती हैं। विजेंद्र दलित युवती शीला से शादी कर लेता है जिसकी इज्जत खुद वीरेन्द्र के पिता ठाकुर मदन ने लूट ली थी। दलितों को सजग एवं सक्रिय बनाने के लिए स्वर्णों की भूमिका महत्वपूर्ण एवं अनिवार्य भी है। यह उपन्यासकार ने विजेन्द्र के माध्यम से दिखाया है। दूसरी बात यह है कि दलितों को अपने अधिकार के लिए या अपने प्रति जो अत्याचार हो रहे हैं उनको उचित जवाब देने के लिए संगठित होना है। ये दोनों दषष्टिकोण सचमुच अम्बेडकर के ही हैं जिन्हें उपन्यास में सफलता के साथ उपन्यास में प्रस्तुत किया है।

रचनाकार श्रमिक मजदूर, स्त्री, आदिवासी, दलित तथा अन्य हाशियेकृत वर्गों एवं जातियों एवं संस्कृतियों के अधिकारों के लिए लड़ना अपना धर्म समझते हैं। मानवाधिकार में प्रत्येक व्यक्ति को भोजन, वस्त्र, आवास तथा चिकित्साओं की सुविधा, बीमार और सशक्त होने पर सुरक्षा का अधिकार आदि सम्मिलित है। इन अधिकारों को प्राप्त करने के लिए प्राकृतिक संसाधनों जैसे पौधों, जंतुओं, नदियों आदि का संरक्षण भी आवश्यक है। आज प्रकृति तथा प्राकृतिक विभवों का जो अनावश्यक शोषण विकासयोजनाओं के परिणामस्वरूप उत्पन्न होता है उसके प्रति भी सजग कई उपन्यास लिखे जा रहे हैं। परिस्थितकीय संतुलन मानवीय जीवन का आधार है। ऐसे उपन्यासों में मुख्य हैं – वीरेन्द्र जैन का 'डूब', संजीवन के धार, जंगल जहाँ शुरू होता हैं, मैत्रेयी पुष्पा का 'इदन्नमम', नासिरा शर्मा का 'कुईयांजान', आदिवासियों पर लिखे गए बहुत सारे उपन्यास आदि।

आज इस भूमंडलीकृत संस्कृति में मानव को कई प्रकार से सजग होना है। वह अपने अस्तित्व के लिए जरूरी है। अपनी संस्कृति एवं जीने के अधिकारों को हमसे आसुरी शक्तियाँ छीन लेती जा रही हैं। इसीलिए कानूनी स्तर पर भी हमें इसका सामना करना पड़ता है। समकालीन उपन्यास इस दृष्टि से बहुत सतर्कता से धर्मयुद्ध कर रहे हैं।

आम आदमी को आदमी की हैसियत से जीने के अधिकार दिलाने के लिए समकालीन उपन्यासकार अपनी सष्जनात्मकता को उनके लिए सतर्कता, ईमानदारी एवं निष्ठा के साथ समर्पित कर रहे हैं। यह सचमुच मानवाधिकार के लिए उनके द्वारा किए जाने वाला महान संघर्ष ही है यानिकि मानव मुक्ति का संघर्ष। यही सचमुच रचना धर्मिता की सार्थकता है।

***

विकास, पर्यावरण तथा मानव अधिकार

***बजरंगलाल जेठू**

आज का युग विकास की तेजी का युग है। वास्तव में देखा जाए तो वर्तमान युग वैश्वीकरण का युग है, जिसने विश्व को ग्लोबल विलेज के रूप में उभारा है। वैश्वीकरण के इस युग में निजीकरण एवं उदारीकरण को बढ़ावा दिया जा रहा है, जिससे विश्व के सभी देश समीप आते जा रहे हैं। वैश्वीकरण से तात्पर्य बाजारोन्मुखी, प्रतिस्पर्धात्मक और उन्मुक्त अर्थ पद्धति के आधार पर सम्पूर्ण विश्व की अर्थव्यवस्था को एक ही धारा में प्रवाहित करने से है। सभी देशों की अर्थव्यवस्था का संचालन सर्वानुमति से समान सिद्धान्तों के आधार पर होना ही आर्थिक वैश्वीकरण है। सन् 1981 के बाद से सारे विश्व में आर्थिक सुधारों का जो दौर प्रारम्भ हुआ, वह 'एल पी जी' (LPG) अर्थात् लिबरलाइजेशन (एल), प्राइवेटाइजेशन (पी) व ग्लोबलाइजेशन (जी) के रूप में जाना जाता है। इसी परिप्रेक्ष्य में 1986 में संयुक्त राष्ट्रसंघ महासभा द्वारा विकास के अधिकार की घोषणा को स्वीकार किया गया।

इस घोषणा के अनुसार विकास का अधिकार एक ऐसा अधिकार है जिसे छीना नहीं जा सकता है, जिसकी आत्मा में यह निहित है कि प्रत्येक व्यक्ति आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक विकास में भागीदारी निभाकर योगदान दे सकता है। तभी मानव अधिकार एवं मूल स्वतंत्रताएँ पूर्ण रूप से प्राप्त की जा सकती हैं।

इसी दिशा में मानव अधिकारों से संबंधित विश्व सम्मेलन 14 जून से 25 जून, 1993 तक वियाना में हुआ, जिसमें 171 देशों के 2100 प्रतिभागियों ने भाग लिया। सम्मेलन के अंतर्गत लोकतंत्र, विकास और मानव अधिकारों के प्रति सम्मान प्रदर्शित करते हुए कहा गया कि ये और मूल स्वतंत्रताएँ अन्योन्याश्रित और पारस्पारिक रूप से सम्मिलित हैं। लोकतंत्र लोगों को अपनी राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक

---

*स्वतंत्र लेखक एवं विचारक, सीकर, राजस्थान।

प्रणालियां निर्धारण करने और अपने जीवन के सभी पहलुओं में भाग लेने की स्वतंत्रतापूर्वक अभिव्यक्त इच्छा पर आधारित है। अंतरराष्ट्रीय समुदाय द्वारा लोकतंत्र, विकास और समस्त विश्व में मानव अधिकारों के प्रति सम्मान को दृढ़ करने और संवर्धन करने का समर्थन किया गया। घोषणा ने विकास के अधिकार को सार्वभौमिक और असंक्रमणीय अधिकार और मूल मानव अधिकारों के अभिन्न भाग के रूप में अभिपुष्ट किया। विकास के अधिकार को साम्यपूर्ण ढंग से विकास और वर्तमान तथा भावी पीढ़ी की पर्यावरण संबंधी आवश्कताओं का सामना करने के लिए पूरा करना चाहिए। वियाना घोषणा में अंतरराष्ट्रीय समुदाय को आह्वान किया गया है कि वह विकासशील देशों के बाह्म ऋणों को कम या न्यून करने में सभी प्रकार की सहायता करे, ताकि विकासशील देशों की सरकारें अपने लोगों को आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकार उपलब्ध करा सकें ।

विकास के अधिकार के माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति को विकास के समान अवसर प्रदान करने एवं मानव केंद्रित विकास की अवधारणा को बढ़ावा देने के लिए राज्यों को बाध्य किया गया है। विकास के अधिकार के अंतर्गत व्यक्ति को जीने के लिए आवश्यक दशाएँ उपलब्ध कराने का उत्तरदायित्व सरकारों का माना गया है, जिससे राज्य सरकारें व्यक्ति को सम्मानपूर्ण जीवन जीने के लिए उपयुक्त दशाएँ प्राप्त करने के लिए प्रयास करा सकें। इसी प्रकार विकास के अधिकार की दूसरी अवधारणा की पूर्ति के लिए प्रत्येक व्यक्ति को कार्य की अनुकूल स्थितियों का अधिकार दिया जाना चाहिए, जिनके अंतर्गत रहते हुए वह अपना सम्पूर्ण विकास कर सके। विकास के अधिकार के माध्यम से व्यक्ति देश में उपलब्ध संसाधनों के उपयोग का समान अधिकार रखता है अर्थात् किसी भी आधार पर किसी एक व्यक्ति या संस्था को किन्हीं प्राकृतिक संसाधनों पर एकाधिकार प्रदान नहीं किया जाएगा, जिससे किसी व्यक्ति के विकास करने के अवसर सीमित होते हो। इस प्रकार संसाधनों के उपयोग का समान अधिकार प्रदान कर व्यक्ति के विकास के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न करने का उत्तरदायित्व राष्ट्रीय सरकारों पर डाला गया है।

विकास की इन वैश्वीकरण, निजीकरण एवं उदारीकरण अवधारणों के कारण विश्व में जहाँ एक तरफ व्यापार एवं निवेश की मात्रा में वृद्धि हुई है, वहीं दूसरी तरफ विभिन्न संसाधनों का दोहन के स्थान पर शोषण होना प्रारम्भ हो गया, जिससे विश्व के विभिन्न देशों में इसके विभिन्न प्रभाव देखने को मिले हैं, विशेषतः विकासशील देशों की अर्थव्यवस्थाओं पर इसके विपरीत प्रभाव देखने को मिले हैं। विकास एवं विकासशील देशों की अर्थव्यवस्थाओं के अतिरिक्त वैश्वीकरण का प्रभाव वहां की सामाजिक एवं

सांस्कृतिक व्यवस्था पर भी देखने को मिलता है। विकसित एवं विकासशील देशों में मानव के अधिकारों को वैश्वीकरण ने प्रभावित किया है। विश्व में उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण के माध्यम से अधिक से अधिक आर्थिक विकास के लिए प्रयास किये जा रहे हैं परन्तु इसीके साथ विश्व के पर्यावरण एवं भविष्य की परिस्थितियों को ध्यान में नहीं रखा जा रहा है, जिससे विश्व में पर्यावरण असंतुलन, आर्थिक असंतुलन, सामाजिक बिखराव एवं सांस्कृतिक मूल्यों में बदलाव के कारण परिस्थितियाँ विषम होती जा रही है। इसमें कुछ अग्रांकित की जा रही है :–

(1) वैश्वीकरण में तकनीकी अधिकार के प्रयोग के कारण विकासशील देशों के श्रमिकों पर प्रभाव पड़ा है।

(2) वैश्वीकरण के दौर में सरकारों द्वारा अपने कार्यक्षेत्र को सीमित किए जाने के कारण सरकारी नौकरियों में कमी होती जा रही है, जिससे नागरिकों को प्राप्त होने वाली सामाजिक सुरक्षा में कमी आ रही है।

(3) वैश्वीकरण में अधिक मशीनरियों के प्रयोग के कारण पर्यावरण प्रदूषण की समस्या सामने आ रही है, इससे मानव के शुद्ध वातावरण में जीने का अधिकार प्रभावित हो रहा है।

(4) जीवन रक्षक दवाओं पर विदेशी कम्पनियों के अधिपत्य के कारण उनकी कीमतें गरीब देशों की जनता की पहुंच से दूर होती जा रही है, जिससे उनके जीने के अधिकार का हनन हो रहा है।

(5) वैश्वीकरण में बड़े उद्योगों की स्थापना के लिए बड़े–बड़े क्षेत्रों की आवश्यकता होती है। इसके लिए विभिन्न क्षेत्रों में छोटे–छोटे गांव व बस्तियों को हटाया जा रहा है। इन विस्थापितों के लिए अन्य जगह पर रहने के लिए भी कोई समुचित व्यवस्था नहीं की जा रही है, जिससे उनका निवास करने का अधिकार प्रभावित होते है।

(6) वैश्वीकरण के अंतर्गत कॉपीराईट के अंतर्गत विकसित देशों के द्वारा प्रतिदिन की आवश्यकता वाली वस्तुओं पर कॉपी राईट लेने एवं उन पर एकाधिकार के माध्यम से ऊँची कीमतें वसूलने के कारण गरीब देश की जनता के अधिकार प्रभावित होते हैं।

(7) वैश्वीकरण के कारण महिला अधिकारों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है, जिसके अंतर्गत अपने उत्पाद की बिक्री बढ़ाने के लिए महिलाओं को भोग की वस्तु के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। विभिन्न प्रकार के विज्ञापनों में महिलाओं को इस प्रकार

से प्रस्तुत किया जाता है कि महिला अस्मिता में कमी आई है, जो सीधा महिला अधिकारों का हनन है।

(8) विदेशों में कार्यरत कर्मचारियों पर अत्याचार किए जाते हैं। उनके साथ साथी कर्मचारियों द्वारा असमानता का व्यवहार किया जाता है। विशेषतः महिला कर्मचारियों के साथ अभद्र व्यवहार किया जाता है।

(9) वैश्वीकरण के दौर में विभिन्न देशों में विश्व शक्ति के रूप में उभरने की इच्छा बढती जा रही है, जिसमें दूसरे देशों के साधनों पर स्वामित्व प्राप्त कर देश की स्वयं निर्णयन के अधिकारों को सीमित किया जा रहा है।

(10) वैश्वीकरण के कारण प्रत्येक देश द्वारा अन्य देशों पर स्वामित्व स्थापित करने के लिए अस्त्र–शस्त्र होड़ बढती जा रही है, जिससे विश्वशांति के संयुक्त राष्ट्रसंघ के प्रयासों को आधात पहुंच रहा है।

(11) वैश्वीकरण के दौर में कृषिगत देशों के अधिकारों का हनन हो रहा है, क्योंकि वैश्वीकरण में सभी वस्तुओं की कीमतों के निर्धारण को बाजार अर्थव्यवस्था के आधार पर निश्चित होने के लिए छोड़ा जाता है, जिससे विकासशील देशों द्वारा अपने यहां किसानों को दी जाने वाली सब्सिडी को कम किया जाना अनिवार्य होता है। परिणामस्वरूप गरीब किसान उन्नत किस्मों एवं औजारों के उपयोग न कर पाने के कारण बाजार मूल्यों से प्रतिस्पर्धा नहीं कर पाते हैं और पिछड़ते जा रहे हैं।

(12) वैश्वीकरण के दौर में एक देश से दूसरे देश में खुले आवागमन के कारण रोगों से ग्रस्त व्यक्तियों के एक–दूसरे देशों में जान लेवा बीमारियों का फैलाव बढ़ता जा रहा है, जिसमें विशेषतः एच. आई. वी. एड्स जैसी असाध्य बीमारियों के रोगियों की संख्या में वृद्धि हुई है।

(13) उदारीकरण के दौर में अमानवीय पद्धतियों के उपयोग के कारण मानव मूल्यों में गिरावट आ रही है, जिसके अंतर्गत मानव क्लोन का निर्माण, आधुनिक संस्कृति के नाम पर भौतिकवाद को बढावा दिया जा रहा है।

(14) वैश्वीकरण के कारण बेरोजगारी में वृद्धि होने से आतंककारी गतिविधियाँ बढ़ती जा रही हैं, जिससे मानव अधिकारों का अतिक्रमण किया जाता है। इसमें विशेषतः महिलाओं एवं बच्चों के अधिकारों पर अधिक प्रभाव पड़ता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वैश्वीकरण के कारण कई चुनौतियाँ सामने आ रही हैं। विकास के अधिकार की मांग तो है पर साथ ही साथ प्राकृतिक संसाधनों के

अत्यधिक दोहन के बजाय, अत्याधिक शोषण होने के कारण पर्यावरण प्रदूषण की समस्या तो सामने आई है, साथ ही साथ आर्थिक अधिकारों के हनन आदि की बातें भी सामने आती हैं। आर्थिक विकास के लिए पर्यावरण संरक्षण को ध्यान में नहीं रखे जाने के कारण पर्यावरण प्रदूषण बढ़ता है। फलस्वरूप मानव के शुद्ध पर्यावरण में जीने के अधिकार का अतिक्रमण होता है। नई सदी में अब जीवन, भोजन एवं शुद्ध पर्यावरण में जीने का अधिकार जैसे मानवाधिकारों का पदार्पण हुआ है।

वर्तमान में विश्वस्तर पर पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में लगभग 200 अंतरराष्ट्रीय पर्यावरण कानूनों का निर्माण किया जा चुका है। इसी के साथ लगभग 600 द्विपक्षीय समझौते किए जा चुके हैं। लगभग 150 क्षेत्रीय कानूनों का निर्माण किया जा चुका है। संयुक्त राष्ट्रसंघ एवं इसकी विभिन्न एजेंसियों के प्रयासों के साथ ही पर्यावरण संरक्षण में विश्व स्तर पर बहुत से गैर सरकारी संगठन कार्य कर रहे हैं। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सामूहिक प्रयास के अंतर्गत सर्वप्रथम स्टॉकहोम में 5 जून, 1972 में 'मानव पर्यावरण सम्मेलन' के नाम से एक सम्मेलन का आयोजन संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्त्वाधान में कियाा गया, जिसे शुद्ध वातावरण के अधिकारों का मैग्नाकार्टा कहा जाता है। इस सम्मेलन के अंतर्गत ऐसे सिद्धांतों एवं योजना के निर्माण पर बल दिया गया जो पर्यावरण प्रदूषण को नियंत्रित कर सके। इसी घटना के कारण प्रतिवर्ष 5 जून को विश्व पर्यावरण दिवस के रूप में मनाया जाता है इसी कड़ी में अगल कदम 15 दिसम्बर, 1972 को संयुक्त राष्ट्रसंघ की महासभा द्वारा लिया गया, जिसके अंतर्गत एक घोषण की गई, जिसमें सभी राष्ट्रों को माननवीय वातावरण के संरक्षण के आपसी सहयोग पर बल दिया गया। संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा इस संबंध में किए गए कुछ प्रयास निम्न प्रकार हैं :–

1. व्हेल नियमन का अंतरराष्ट्रीय कन्वेंशन, 1946
2. अंटार्कटिक ट्रीटी, 1959
3. समुद्री कानून पर संयुक्त राष्ट्र कन्वेंशन
4. तेल प्रदूषण डेमेज के लिए नागरिक दायित्व 1969
5. कोष कन्वेंशन 1971
6. जहाजों से प्रदूषण रोक के लिए अंतरराष्ट्रीय कन्वेंशन 1973
7. नम भूमि पर रामसर कन्वेंशन 1971
8. विश्व विरासत कन्वेंशन 1972
9. संकटापन्न प्रजाति व्यापार पर सम्मेलन 1973

10. देशान्तरीय प्रजातियों पर कन्वेंशन 1979
11. अंटार्कटिक पर जलीय जैव संसाधनों के संरक्षण पर कन्वेंशन 1980
12. पादप जीनीय संसाधनों पर एफ ए ओ अंतरराष्ट्रीय शपथ – 1983
13. जैव विविधता पर कन्वेंशन 1992
14. ओजोन पर वियेना कन्वेंशन 1985
15. ओजोन पर मान्ट्रीयल प्रोटोकॉल 1987
16. ओजोन पर लंदन प्रोटोकॉल संशोधन 1990
17. जलवायु परिवर्तन पर कन्वेंशन 1992
18. क्योटो प्रोटोकाल 1997
19. काट्जेना जैव सुरक्षा प्रोटोकॉल 2003

उपर्युक्त संविदाओं, प्रंसविदाओं तथा घोषणाओं को व्यावहारिक रूप में परिणित करने के लिए समय–समय पर विभिन्न स्थानों पर संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वावधान में सम्मेलनों का आयोजन किया गया, जिनमें प्रारम्भ के स्टॉक्होम सम्मेलन 1972, नैरोबी सम्मेलन 1978, वियना सम्मेलन 1985, मॉट्रियल सम्मेलन 1987 व पृथ्वी सम्मेलन 1992 आदि प्रमुख हैं। इसके बाद विभिन्न वर्षों में पृथ्वी सम्मेलन लगातार होते रहे हैं और चल रहे हैं।

पर्यावरण के संरक्षण के संबंध में एक बात यह है कि यहां अधिकार की तुलना में दायित्व अर्थात् कर्त्तव्यों पर ज्यादा जोर है। मानवाधिकार के संदर्भ में हमारे देश में हमारा संविधान मूल अधिकार प्रदान करता है तो दूसरी तरफ राज्य के नीति–निर्देशक तत्त्व भी संविधान ने प्रदान किए हैं व साथ ही मूल कर्त्तव्य भी दिए हैं इस प्रकार संविधान के भाग –3 में नागरिकों के मूल अधिकारों का उल्लेख है और भाग–4 में राज्य के नीति–निर्देशक तत्त्व दिए गए हैं। संक्षिप्त में ये निम्नानुसार हैं :–

1. मूल अधिकार – भाग –3 में निम्नांकित मूल अधिकारों का उल्लेख है –

(1) समता का अधिकार (अनुच्छेद 14 से 18)
(2) स्वातंत्र्य अधिकार (अनुच्छेद 19 से 22 और 358)
(3) शोषण के विरूद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23 व 24)
(4) धर्म की स्वतंत्रताा का अधिकार (अनुच्छेद 25 से 28)

(5) संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकार (अनुच्छेद 29 से 30)

(6) संवैधानिक उपचारों का अधिकार (अनुच्छेद 32 से 35)

2. नीति–निर्देशक तत्त्व – भाग–4 के अंतर्गत राज्य की नीति के निर्देशक तत्त्व दिए गए हैं इन निर्देशक तत्त्वों में पर्यावरण के संदर्भ इस प्रकार हैं –

अनुच्छेद 48–कृषि और पशुपालन का संगठन – इसमें कहा गया है कि राज्य, कृषि और पशुपालन को आधुनिक और वैज्ञानिक प्रणालियों से संगठित करने का प्रयास करेगा और विशिष्टतया गायों और बछड़ों तथा अन्य दुधारू और वाहक पशुओं की नस्लों के परिरक्षण और सुधार के लिए और उनके वध का प्रतिरोध करने के लिए कदम उठाएगा।

48 (क) पर्यावरण का संरक्षण तथा संवर्धन और वन तथा अन्य जीवों की रक्षा राज्य, देश के पर्यावरण के संरक्षण तथा संवर्धन का और वन तथा वन्य जीवों की रक्षा करने का प्रयास करेगा।

इसी के साथ भाग –4(क) में प्रत्येक नागरिक के मूल कर्त्तव्य बताए गए हैं, जिनमें 10 कर्त्तव्यों में से 7 वां (क्रमांक –छः) सीधा–सीधा पर्यावरण से संबंधित है। ये मूल कर्त्तव्य इस प्रकार वर्णित हैं –

4. (क) मूल कर्त्तव्य : 51 (क) मूल कर्त्तव्य–भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होता है कि वह –

(क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे,

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों का हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे,

(ग) भारत की प्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण रखे,

(घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे,

(ड.) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे, जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग आधारित सभी भेदभाव से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे, जो स्त्रियों के सम्मान के विरूद्ध है,

(च) हमारी संस्कृति की गौरवशाली परम्परा का महत्व समझे और उसका परिरक्षण करे, प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीवन है; रक्षा

करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणी मात्र के प्रति दया भाव रखे। (यही कर्तव्य पर्यावरण से संबंधित है।)

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे,

(झ) सार्वजनिक सम्पत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे,

(ट) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों, सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढने का सतत् प्रयास करे, जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊंचाइयों को छू ले।

उपरोक्त बातों के साथ–साथ कुछ कानून भी बनाए गए हैं, जो अधिनियमों के माध्यम से सामने आए। इन अधिनियमों की अवहेलना करने पर व्यक्ति को दंड भोगना पड़ता है। हमारे देश में राज्यों में कई अधिनियम पर्यावरण संर्वधन तथा वन संरक्षण आदि के लिए समय–समय पर बनाए गए हैं, जिनकी अनुपालना जरूरी है।

विश्व में भारत प्रथम देश है, जिसने पर्यावरण सुरक्षा व सुधार के लिए संविधान में स्थान दिया है, जो निम्न प्रकार है –

(अ) अनुच्छेद (Article) 48–अ (राज्य नीति के सीधे सिद्धांत)

राज्यों की जिम्मेदारी है कि वे पर्यावरण सुरक्षा सुनिश्चित करें एवं इसे स्वच्छ रखने में बढावा दें। साथ ही राज्य वनों एवं वन्य जीवों के संरक्षण पर भी ध्यान दें।

(ब) अनुच्छेद (Article) 51–अ (मूलभूत कर्त्तव्य)

भारत के प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है कि वह प्राकृतिक पर्यावरण, जिसमें वन, नदियां, झीलें, वन्य जीव–जंतु शामिल हैं, का बचाव करें एवं उनको बढ़ावा दें। साथ ही समस्त जीवों के प्रति आत्मीय भाव रखें।

(स) अनुच्छेद (Article) 21

संविधान यह आश्वस्त करता है कि प्रत्येक व्यक्ति को उस गतिविधि से बचाया जाना चाहिए, जिससे उसके जीवन, स्वास्थ्य और शरीर को हानि पहुंचती हो।

(द) राष्ट्रीय वन नीति

वर्ष 1952 में एक प्रस्ताव पारित किया गया, जिसके अनुसार सम्पूर्ण राष्ट्र अपने भौगोलिक क्षेत्र का एक तिहाई भाग वनों से आच्छादित करने का उद्देश्य रखेगा।

(य) 42वां संशोधन (1976)

संविधान के 42 वे संशोधन (1976) में भी पर्यावरण सुरक्षा को मूल कर्त्तव्यों के एक नये अध्याय में जोड़कर नागरिकों के मूल कर्त्तव्य भी सुनिश्चित कर दिए गए हैं।

इनसे भारत के संविधान ने पर्यावरण के परिप्रेक्ष्य में देश को संकट से बचाने की अहम् भूमिका निभाई है।

भारतीय दंड संहिता, 1860 (Indian Penal Code, 1860) की धारा 268, 290, 291, 426, 430, 431, 432 के तहत सामान्य पर्यावरण समस्याएं धारा 227 से जल प्रदूषण तथा धारा 278 से वायु प्रदूषण के प्रकरण निपटाये गये। दंड विधि संहिता, 1898 (Criminal Procedure Code, 1898) जिसे अब 1973 में पुनः नवीन रूप दिया गया है, के 'उपद्रव के अध्याय' ये ध्वनि प्रदूषण पर प्रतिबंध लगा है। इनके अतिरिक्त भी कानून बने हुए हैं, जो अग्रांकित हैं –

1. 1947 के पूर्व के कानून –

(अ) जल प्रदूषण के लिए

(1) दी नार्थ कनोल एंड ड्रेनेज एक्ट, 1873

(2) दी ऑब्स्ट्रक्शन ऑफ फेअरवेज एक्ट, 1881

(3) इंडियन फिशरीज एक्ट, 1897

(4) भारतीय तट कानून, 1908

(ब) वायु प्रदूशण के लिए

(1) दी ऑरियंटन गैस कम्पनी एक्ट, 1857

(2) बंगाल स्मोक न्यूसेंस अधिनियम, 1905

(3) दी एक्सप्लोसिव एक्ट, 1908

(4) मुम्बई स्मोक न्यूसेंस अधिनियम, 1912

(5) भारतीय बॉयलर्स अधिनियम, 1923

(6) मोटर वाहन अधिनियम, 1938

(स) भूमि के लिए

बिहार अनुपयुक्त भूमि (कृषि सुधार एवं विकास) अधिनियम, 1946

(द) वनों के लिए

भारतीय वन अधिनियम, 1927

(य) वन्य जीवन संरक्षण हेतु

(1) भारतीय मत्स्य संरक्षण अधिनियम, 1897

(2) दी मैसूर डेस्ट्रक्टिव इन्सेक्ट्स एंड पेस्ट एक्ट, 1917

(3) दी केरल एग्रीकल्चर पेस्ट एंड डिसीज एक्ट, 1917

(4) दी आंध्र प्रदेश पेस्ट एंड डिसीज एक्ट, 1919

(5) दी इंडियन फॉरेस्ट एक्ट, 1927

(र) कीटनाशकों के लिए

विषय अधिनियम, 1919

2. 1947 व इसके बाद के कानून –

(अ) जल प्रदूषण के लिए

(1) दामोदर घाटी निगम अधिनियम, 1948

(2) महाराष्ट्र जल प्रदूषण निवारण अधिनियम, 1953, 1968, 1969

(3) उड़ीस नदी प्रदूषण निवारण अधिनियम, 1953

(4) नदी मंडल अधिनिय, 1956

(5) जल यान अधिनियम, 1970

(6) जल (प्रदूषण, निवारण और नियंत्रण) अधिनियम 1947 तथा उसका संशोधित अधिनियम 1978

(7) जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) नियम, 1975

(8) जल प्रदूषण (कारोबार सव्यवहार प्रक्रिया नियम), 1975

(9) जल (प्रदूषण, निवारण और नियंत्रण उपकर अधिनियम), 1975

(10) जल (प्रदूषण, निवारण और नियंत्रण) उपकर अधिनियम, 1977

(11) जल (प्रदूषण, निवारण और नियंत्रण) उपकर अधिनियम, 1978

(ब) वायु प्रदूषण के लिए

(1) खान एवं खनिज सम्पत्ति (विनिमय एवं विकास) अधिनियम, 1947

(2) कारखाना अधिनियम, 1948

(3) दी इंडस्ट्रीज (डेवलपमेंट एंड रेगुलेशन) एक्ट, 1951

(4) दी गुजरात स्मोक न्यूसेन्स एक्ट, 1963

(5) वायु (प्रदूषण, निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1981 एवं इसके संशोधन

(6) वायु (प्रदूषण, निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1982

(7) वायु (प्रदूषण, निवारण और नियंत्रण) नियम, 1982

(स) भूमि के लिए

(1) भू–क्षरण अधिनियम, 1955 (बाढ नियंत्रण व सुरक्षा के लिए भूमि अधिग्रहण)

(2) नगर–भूमि (सीमा नियम) अधिनियम, 1976

(3) हानिकारक ठोस अवशिष्ट (प्रबंधन व उपयोग कानून), 1989 तथा उसका संशोधित नियम, 2003

(4) परिसंकटमय अपशिष्ट (प्रबंधन और व्यवहार) नियम, 1991

(5) जैव चिकित्सकीय अवशिष्ट (प्रबंधन और उपयोग) अधिनियम, 1998

(6) नगरीय ठोस अवशिष्ट (प्रबंधन और उपयोग) अधिनियम, 1999

(द) वन संरक्षण हेतु

(1) वन (संरक्षण) अधिनियम, 1980

(य) वन्य जीव संरक्षण हेतु

(1) वन्य प्राणी (संरक्षण अधिनियम), 1972

(2) दी इंडियन फिशरीज एक्ट, 1987

(र) कीटानाशक के लिए

(1) फैक्ट्री अधिनियम (प्रदूषण एवं पेस्टीसाइड्स), 1948

(2) कीटनाशक कानून, 1968

(ल) ध्वनि प्रदूषण हेतु

(1) दी बिहार कन्ट्रोल ऑफ दी यूज एंड प्ले ऑफ लाउडस्पीकर्स एक्ट, 1853

(2) राजस्थान शोर नियंत्रण अधिनियम, 1961

(3) ग्रांट ऑफ परमीशन अंडर दी हिमालय इंस्ट्रमेंट्स (कन्ट्रोल ऑफ नॉयज) एक्ट, 1969

(4) ध्वनि प्रदूषण को 1988 से संशोधन द्वारा वायु प्रदूषण अधिनियम 1981 के अंतर्गत लिया गया है।

(5) शोर प्रदूषण (नियंत्रण एवं नियमन) नियम, 1999, 2000

(व) पर्यावरण संबंधी

(1) पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986

(2) पर्यावरण (संरक्षण) नियम, 1986

(3) राष्ट्रीय पर्यावरण अभिकरण अधिनियम, 1986

(4) दी नेशनल एनवायरमेंट अपेलेट ऑथोरिटी एक्ट, 1997

(5) दी नेशनल एनवायरमेंट ट्रिबुनल एक्ट, 1995

(6) पर्यावरण (संरक्षण) चौथा संशोधित नियम, 2002

अन्य

(1) दी प्रीवेन्शन ऑफ फूड एडल्टरेशन एक्ट, 1954

(2) दी एनशियेन्ट मोनमेन्टर एंड आर्केलोजीकल साइट्स एंड रिमेन्स एक्ट, 1958

(3) नगर पालिका अधिनियम, 1959 की धारा 220, 222

(4) आण्विक शक्ति अधिनियम, 1962

(5) आविक ऊर्जा अधिनियम (रेडियोधार्मिता निवारण नियम), 1971

(6) लोक दायित्व बीमा अधिनियम, 1991

(7) लोक दायित्व अधिनियम, 1991

(8) लोक दायित्व नियम, 1991

(9) भारतीय दंड संहितात की धारा 268, 269, 272, 278, 284, 290, 298, 424, 426।

आइये इनमें से कुछ महत्वपूर्ण अधिनियमों को देखें –

(1) जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1974 :

अधिनियम का वितरण – यह विधेयक पूरी प्रक्रिया से होकर नवम्बर, 1972 को संसद में प्रस्तुत हुआ। दोनों सदनों से पारित होकर इस विधेयक को 23 मार्च, 1974 को राष्ट्रपति से स्वीकृति मिली। यह अधिनियम भारत के राजपत्र में 'Extra Part -2' Section – 2 दिनांक 25/3/1974 को प्रकाशित हुआ तथा इसे 26/3/1974 से पूरे देश में लागू माना गया ।

इस अधिनियम में 8 अध्यायों के अंतर्गत 64 धाराएँ है जो मोटे तौर से अध्याय –1 (प्रारम्भिक), अध्याय –2 (जल प्रदूषण नियंत्रण हेतु केन्द्रीय तथा राज्य बोर्डों का गठन), अध्याय –3 (संयुक्त बोर्डों का गठन), अध्याय –4 (बोर्ड की शक्तियाँ तथा कार्य), अध्याय –5, (जल प्रदूषण से बचाव व नियंत्रण), अध्याय –6 (वित्त संबंधी प्रक्रियाएँ), अध्याय–7 (सजाएँ तथा कार्यविधियाँ) तथा अध्याय –8 (विविध), के प्रकार से विभाजित है। अधिनियम पर यह जानकारी भी जरूरी है –

(1) यह अधिनियम अधिक प्रदूषण नियंत्रक सिद्ध नहीं हो सका। अधिनियम की धारा 58 में उद्योगो पर लगाई गई शर्त को उद्योगपतियों ने अपने प्रकार से परिभाषित कर उच्च न्यायालय से यह निर्णय प्राप्त कर लिया कि कोई भी सिविल कोर्ट उद्योगकर्त्ता को आवेदन करने पर निषेधाज्ञा स्वीकार कर सकती है। अतः जहाँ भी उद्योगपतियों को इस अधिनियम के तहत भय था उस उन्होंने सिविल कोर्ट से पहले ही निषेधता लेकर इस अधिनियम को अशक्त अथवा गतिहीन कर दिया।

(2) इस अधिनियम के प्रकाशन के बाद इसके अनुच्छेद व इसकी विभिन्न धाराओं के संदर्भ में इतने आपेक्ष आए तथा अस्पष्टीकरण अथवा उपयोग में लाने पर कमी महसूस की गई कि एक पूरा संशोधित अधिनियम –जल (प्रदूषण, निवारण एवं नियंत्रण) संशोधन अधिनियम, 1978 ही पास करना पड़ा। यह 14 दिसम्बर, 1978 से लागू हुआ।

इस संशोधित अधिनियम को दिनांक 12 दिसम्बर, 1978 को राष्ट्रपति से स्वीकृति मिली तथा इसका प्रकाशन भारत के राजपत्र Extra II, Part II, Section I, दिनांक 13 दिसम्बर, 1978 को पृष्ठ 561–567 पर हुआ। इसमें कुछ 19 संशोधन (धारा 2,3,4,5,10,12, 14,21,23,25,26,27,28,36,37,39,49,63 व 64) तथा एक प्रविष्ट की गई।

(1.A) **जल (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) उपकरण अधिनियम, 1977 :** इस अधिनियम (Act No. 36 of 1977) के तहत प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण हेतु केन्द्र तथा राज्य सरकारों को आर्थिक संसाधन उपलब्ध कराने के लिए जल उपयोग करने वाले उद्योगों से उपकर प्राप्त करने का प्रावधान है। इसे 1/4/1978 से पूरे भारत में लागू किया गया (संसद के दोनों सदनों से पारित होकर इस अधिनियम को दिसम्बर, 1977 में राष्ट्रपति का अनुमोदन प्राप्त हुआ)। यह भारत के राजपत्र Extra II, Part II, Section I, दिनांक 27/3/1978 में पृष्ठ 427–34 पर प्रकाशित हुआ।

जल (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1974 के अंतर्गत केन्द्रीय एवं राज्य स्तर पर अलग–अलग बोर्ड बनाए गए तथा उन्हें निश्चित अधिकार प्रदान किए गए।

केन्द्रीय जल (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) बोर्ड को क्षेत्राधिकार इस प्रकार है– जल प्रदूषण के बारे में केन्द्र सरकार को परामर्श देना, राज्य बोर्डों से समन्वय रखना, प्रदूषण निवारण संबंधी तकनीकी मार्गदर्शन देना, लोगों को इन कार्यों के लिए प्रशिक्षित करना, संचार–साधनों के माध्यम से जन–जागृति का संचरण करना, नदियों, नालों व जलाशयों में शुद्धता के प्रतिमान तय करना एवं प्रदूषण निवारण के राष्ट्रव्यापी उपाय करना आदि।

राज्य स्तर पर गठित जल (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) बोर्ड ऐसे ही कुछ कार्य राज्य स्तर पर करते हैं।

कुल मिलाकर सरकार की चेष्टा यह है कि जल जहाँ भी हो निर्मल रहे, ताकि लोग सुखपूर्वक जीवनयापन कर सके। सन् 1898 में निर्धारित 'कोड ऑफ क्रिमिनल प्रोसीजर' की धारा –98 के अनुसार कोई भी व्यक्ति किसी जलाशय या कुएँ में जानबूझकर कोई ऐसी चीज नहीं डाल सकता, जो जल को प्रदूषित करे या जल की शुद्धता के प्रतिमान को कुप्रभावित करे। यही बात 1974 अधिनियम में भी कही गई। जल के सही प्रवाह में अवरोध पैदा करने अथवा उसे किसी भी रूप में प्रदूषित कने की कार्रवाई भी कानूनी दृष्टि से अपराध मानी गई है। घरों के कूड़े–कचरे अथवा कारखानों के अपशिष्टों को जल की धारा में मिलाने की नीयत से नए रास्ते अथवा नालियाँ बनाने की बात भी इसी श्रेणी में आती है। सर्वोच्च न्यायालय के विशेष आदेशों के तहत देशभर में जलाशयों व जल ग्रहण क्षेत्रों के संरक्षण के लिए विशेष निर्देश दिए गए है, जिनकी पालना के लिए राज्य सरकारों को हलफनामा तक प्रस्तुत करने की बाध्यता रखी गई है।

समग्रतः बात यह है कि शुद्ध जल पीने का अधिकारों सबको है। यह हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। लेकिन, जल को शुद्ध व पवित्र बनाए रखना भी हमारा पुनीत कर्त्तव्य है। इसके बावजूद भी अधिनियम की पालना न करने वाले के लिए दंड का प्रावधान है।

(2) वायु (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम 1981ः

अधिनियम का विवरण– इस अधिनियम में 7 अध्याय हैं, जिनमें कुल 54 हैं। इस अधिनियम के उद्देश्य हैं – (1) वायु प्रदूषण पर प्रतिबंध लगाना, (2) यदि वायु प्रदूषण को रोकना संभव न हो तो नियंत्रित करना, (3) उक्त कार्यों हेतु केन्द्रीय व राज्य बोर्डों का गठन करना।

इस अधिनियम के अंतर्गत तीन माह की जेल या 10,000 रुपये जुर्माना या दोनों लगाये जा सकते हैं। अधिनियम की पालना फिर भीन होने पर 10 रुपये प्रतिदिन की दर से जुर्माना लगाया जा सकता हैं

इस बात अधिनियम के क्रम में नया स्वतंत्र वायु (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) संशोधन अधिनियम, 1987 (Act No. 47 of 1987) बनाया गया, जिसे 1 अप्रैल, 1988 से लागू किया गया।

वायु– प्रदूषण की समस्या भी जल– प्रदूषण की तरह भयावह है। शुद्ध वायु में सांस लेना मनुष्य सहित सभी प्राणियों का मौलिक अधिकार है। लेकिन कलकारखानों के धुएँ, वाहनों के धुएँ और शोर, मिलों के अपशिष्ट, नालियों की कीचड़, मृत पशुओं के शव, सड़ी –गली सब्जियों के ढेर आदि से हमारे आस–पास की हवा प्रदूषित हो जाती है। जल (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम की भांति वायु के प्रदूषण को रोकने का कार्य भी केन्द्रीय एवं राज्य स्तर पर गठित बोर्डों को सौंपा गया है तथा उनके अधिकार क्षेत्रों को सुनिश्चित कर दिया गया हैं एक बहुत ही सामान्य किंतु ध्यान देने योग्य उदाहरण है कि इस अधिनियम में यह व्यवस्था है कि बोर्ड की अनुमति के बिना कोई भी व्यक्ति ऐसा कारखाना नहीं लगा सकता, जिससे वायु के प्रदूषित होने की आशंका हो। हो सकता है कि ऐसा कारखाना इस अधिनियम के लागू होने से पूर्व से ही चल रहा हो, ऐसी स्थिति में उसे तीन माह के भीतर बंद कर देना होगा या फिर अनुमति के लिए आवेदन–पत्र देकर प्रमाणपत्र ले लेना होगा। हाँ, इतना अवश्य है कि उस आवेदन पर बोर्ड की ओर से अंतिम निर्णय नहीं मिल जाता, तब तक उसे चालू रखा जा सकता है। राज्य वायु (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रता) बोर्ड का यह अधिकार भी है कि वह चाहे तो ऐसे कारखाने को चालू रखने की अनुमति से इंकार कर दे।

वायु की शुद्धता के अपने निश्चित प्रतिमान हैं। वायु प्रदूषण नियंत्रण के लिए अनेक उपायों में से वाहनों को प्रदूषण रहित होने का प्रमाण–पत्र निर्गत किया जाना भी एक उपाय है। पिछले कुछ वर्षों से सभी वाहनों को प्रदूषण – रहित होने का प्रमाण–पत्र लेना अनिवार्य हो गया है। यह प्रमाण–पत्र वाहनों से निकलने वाले धुएँ की विधिवत जांच करने के उपरांत निर्गत किया जाता है।

वायु (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम की अनेक धाराएँ हैं, जिनमें से धारा– 21, 22 तथा 31 'ए' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन धाराओं का अनुपालन न करने की स्थिति में दोषी व्यक्ति या संस्थान के अधिकारियों को डेढ़ वर्ष तक के कारावास का दंड दिया जा सकता है। मामला अधिक गम्भीर होने की दशा में सजा छह वर्षों के कारावास और उचित आर्थिक दंड तक बढाई जा सकती है। यदि दोषी व्यक्ति या संस्थान फिर भी नहीं मानता और इन धाराओं का उल्लंघन करता है, तो उस पर पांच हजार रूपये प्रतिदिन से आर्थिक दंड की कार्रवाही की जा सकती है। अपराध की निरंतरता पर कारावास की अवधि दो वर्ष भी हो सकती है।

(3) वन्य जीव (संरक्षण) अधिनियमः

पहले बताए अधिनियमों की भांति वन्य–जीव (संरक्षण) अधिनियम भी बनाया गया, जो 1972 में बना। इस अधिनियम के अनुसार 'पशु' शब्द की व्याख्या में चौपाये, स्तनपायी, पशु, पक्षी, मछलियाँ, रेंगने वाले जीव आदि सभी समाहित किए गए हैं। जिन पशु–पक्षियों का वध वर्जित घोषित किया गया है, उनकी चमड़ी/खाल, खाल से बने पदार्थों, सींग, बाल, पंख, नख दंत, अंडे और घोसले तक सुरक्षित रहने चाहिए। यदि कोई भी व्यक्ति इन चीजों को अपने पास रखता है या इनका व्यवसाय करता है तो इसका सीधा–सीधा आशय है कि वह कानून का उल्लंघन कर रहा है।

प्रत्येक राज्य में मुख्य वनसंरक्षक का एक पद है। साथ ही वन्य जीवन संरक्षण के सचिव, निदेशक आदि पदाधिकारी हैं। इन सबका मुख्य कार्य वन्य–जीवन के संरक्षण को बल देना है, ताकि लोग वर्जित पशुओं का वध न कर सकें।

इस अधिनियम के अंतर्गत पांच प्रकार की अनुसूचियाँ है। सरकार अपनी अधिसूचना द्वारा कभी भी किसी भी क्षेत्र को अभयारण्य अथवा राष्ट्रीय उद्यान घोषित कर सकती है, ताकि वन्य जीवों का शोषण न हो और उनका संरक्षण एवं संवर्द्धन हो सके। याद रखना चाहिए कि लाइसेंसधारी व्यक्ति भी यदि विधिसम्मत व्यवस्थाओं का उल्लंघन करता है तो उसे दो वर्ष तक का कारावास अथवा दो हजार रूपयों को

अर्थदंड अथवा दोनों सजाएँ एक साथ दी जा सकती हैं लेकिन यदि उसने प्रथम अनुसूची के प्राणी का वध किया है अथवा राष्ट्रीय उद्यान/अभयारण्य में बसने वाले पशुओं का शिकार किया है, तो वह छह मास से लेकर छह वर्ष तक सजा और आर्थिक दंड का भागी है। इसके अलावा अभयारण्य, राष्ट्रीय उपवन व आखेट निषिद्ध क्षेत्रों पर भी पर्याप्त कानूनी प्रावधान है।

(4) पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 :

इस कानून को छतरी कानून भी कहते हैं।

(अ) पृष्ठभूमिः यह अधिनियम पर्यावरण संरक्षण तथा उसके सुधार तथा इससे संबंधित अनेक बिंदुओ के लिए बनाया गया। इसका मुख्य उद्देश्य राष्ट्रसंघ द्वारा मानव पर्यावरण पर 1972 में स्टोकहोम में आयोजित कॉन्फ्रेंस, जिसमें भारत ने भी भाग लिया था, में मानव पर्यावरण के संरक्षण और सुधार हेतु लिए गए निर्णयों के क्रम में कोई उचित योजना तैयार करना था तथा इसके आधार पर ही प्राणी मात्र को पर्यावरण विकृतियों से बचाना और अनेक पर्यावरणीय समस्याओं को दूर करने का एक प्रभावी उपकरण उपलब्ध कराना था।

इसे संसद के दोनों सदनों ने पास किया और भारत के राष्ट्रपति ने इसे 23 मई, 1986 को सहमति प्रदान की। केन्द्रीय सरकार ने पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 की धारा (सेक्शन) 6 व 25 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग हुए नियम बनाए, जिन्हें 19 नवम्बर, 1986 को पूरे भारत में लागू किया गया।

(ब) अधिनियम विवरणः इस अधिनियम में 4 अध्याय हैं, जो 26 धाराओं में विभक्त हैं। पहला अध्याय (धारा 1 व 2) में धारा 1 में अधिनियम का कार्यक्षेत्र (समस्त भारत) तथा उसे केन्द्र सरकार द्वारा लागू करने हेतु निर्देशित किया गया। धारा 2 में पर्यावरण संबंधी निम्नलिखित शब्दों का विस्तृत रूप से परिभाषित किया है। ये शब्द पर्यावरण, पर्यावरण प्रदूषक, पर्यावरण प्रदूषण, संचालन, खतरनाक वस्तुएँ, पदाधिकारी, निर्देशित आदि है। अध्याय 2 (धारा 3 से 6 तक) में केन्द्रीय सरकार की सामान्य शक्तियों का वर्णन है। धारा 3 के अधीन केन्द्र सरकार की उन शक्तियों का वर्णन है, जिसके द्वारा पर्यावरण की गुणवत्ता की सुरक्षा एवं सुधार तथा पर्यावरण प्रदूषण को रोकने, नियंत्रित करने अथवा काम करने के आवश्यक उपाय किये जा सकते हैं। धारा 4 में उपर्युक्त सुझाए गए उपायों के कारगर रूप से लागू करने के लिए केन्द्र सरकार किसी अधिकारी को नियुक्त कर सकती है तथा उसको शक्तियाँ प्रदान कर उन्हें

निश्चित कार्य कर उत्तरदायित्व दे सकती है। धारा 5 के तहत केन्द्र सरकार किसी भी व्यक्ति, अधिकारी अथवा विशेषज्ञ, को इस अधिनियम के अनुपालन में निर्धारित किसी भी प्रकार के निर्देश दे सकती है और वे इन निर्देशों को पालन के लिए बाध्य होंगे। इन निर्देशों में – 1. किसी भी उद्योग के संचालन को रोकना, बंद करना अथवा उसके कार्यकलापों को प्रतिबंधित करना, अथवा 2. उसके जल, विद्युत या अन्य किसी सेवा को सेवा को रोकना अथवा निर्धारित करना शामिल है। धारा 6 के अंतर्गत पर्यावरणीय प्रदूषण को नियंत्रित करने हेतु विभिन्न नियमों के बनाने का प्रावधान है, जिसमें (अ) वायु, जल और भूमि की गुणवत्ता के मानक, (ब) विविध क्षेत्रों में विविध पर्यावरण प्रदूषकों की अधिकतम स्वीकार्य सीमा, (स) खतरनाक वस्तुओं के संचालन हेतु तरीके व सुरक्षा उपाय (द) खतरनाक वस्तुओं के संचालन में रोक तथा प्रतिबंध, (य) विभिन्न क्षेत्रों में उद्योगों के स्थान के लिए रोक तथा प्रतिबंध और (ल) पर्यावरणीय प्रदूषण के कारण बनने वाली विभिन्न दुर्घटनाओं को रोकने व प्रतिबंध करने के उपाय सम्मिलित हैं।

अध्याय 3 (धारा) 7 से 17 तक) पर्यावरण प्रदूषण को रोकने, नियंत्रण तथा उसके निवारण से संबंधित है। धारा 7 के अंतर्गत यह निर्देश दिए गए हैं कि कोई भी व्यक्ति जो उद्योग संचालित करता है, वह निर्धारित मानकों से अधिक पर्यावरण प्रदूषकों को उत्सर्जित या विमुक्त न तो करेगा और न ही किए जाने की अनुमति देगा। धारा 8 में खतरनाक वस्तुओं का संचालन पूर्व निर्देशित सुरक्षा के तौर–तरीकों के विपरीत नहीं करेगा। धारा 9 के तहत यह निर्देश है कि यदि कही निर्धारित मानकों से अधिक पर्यावरण प्रदूषकों का उत्सर्जन हो या उत्सर्जन की आशंका हो तो संबंधित व्यक्ति उसे कम करने अथवा रोकने हेतु बाध्य होगा। साथ ही यह भी उल्लेखित है कि ऐसी घटना होने की आशंका की संबंधित अधिकारी को सूचना देगा और बताये अनुसार सभी प्रकार के सहयोग देने को वाक्य होगा। 1 धारा 10 में केन्द्र सरकार द्वारा अधिकृत व्यक्ति का किसी भी उद्योग संस्थान में प्रवेश तथा उस द्वारा निरीक्षण करने का अधिकार होगा। धारा 11 में अधिकृत व्यक्ति द्वारा ही विश्लेषण के उद्देश्य से उद्योग में बनने वाली वस्तु तथा वहां के जल, वायु और भूमि के नमूने लेकर आगे विधिवत कार्यवाही करने का अधिकार होगा। धारा 12, 13 व 14 में विश्लेषण हेतु प्रयोगशाला संस्थापित करने, किसी विशेषज्ञ को विश्लेषण हेतु अधिकृत करने तथा विशेषज्ञ द्वारा दी गई रिपोर्ट को अधिकृत दस्तावेज मानने संबंधी विवरण है। धारा 15 में अधिनियम, नियम, आदेश तथा निर्देशों के उल्लंघन पर दंड देने का प्रावधान है। इसके अनुसार उल्लंघन करने वाले व्यक्ति को (1) पांच वर्ष की कैद अथवा एक लाख रूपये तक का आर्थिक दंड अथवा दोनों का प्रावधान है, (2) यदि उल्लंघन पुनः होता है अथवा जारी रहता है तो प्रतिदिन 5 हजार रूपये तक के आर्थिक दंड का अतिरिक्त प्रावधान है। यदि यह उल्लंघन एक वर्ष से

अधिक अवधि तक जारी रहता है तो कैद की सजा सात साल तक बढाई जा सकती है। धारा 16 में कम्पनी द्वारा उल्लंघन करने पर उसके प्रभारी प्रबंधक को तथा धारा 17 में राजकीय विभागों में विभागाध्यक्ष को यही सजाएं प्रस्तावित हैं।

अध्याय 4 (धारा 18 से 26 तक) में विविध विवरण हैं, जिनमें कुछ बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। धारा 18 के अनुसार इस अधिनियम के अंतर्गत किसी भी व्यक्ति द्वारा कार्यरत सरकार, अधिकारी एवं अन्य किसी भी कर्मचारी के विरूद्ध इस अधिनियम के संदर्भ में कोई अभियोग नहीं चलाया जा सकेगा। धारा 19 के तहत किसी भी व्यक्ति द्वारा पर्यावरण प्रदूषण के मामले में वाद दायर करने का अधिकार है। धारा 20 में केन्द्र सरकार को किसी भी व्यक्ति, अधिकारी अथवा सरकार से इस अधिनियम के अंतर्गत कोई रिपोर्ट अथवा सूचना लेने का अधिकार है। धारा 21 में इस अधिनियम के अंतर्गत कार्य करने वाले सभी स्तर के व्यक्ति भारतीय दंड संहिता के सेक्शन 21 में वर्णित सरकारी कर्मचारी समझे जाएंगे। धारा 22 किसी भी कोर्ट को इस अधिनियम के अंतर्गत किये गए निर्णय को सुनने से रोका गया है। धारा 23 में शक्तियों का हस्तांरण तथा धारा 24 में इसके कानूनों से पड़ने वाले प्रभावों पर टिप्पणी दी गई है। धारा 25 के तहत केन्द्र सरकार राजपत्र में नोटिफिकेशन देकर नियम बनाने को अधिकृत है। धारा 26 में यह बताया गया है कि इस अधिनियम के अंतर्गत बनाए नियमों को संसद से पारित कराना आवश्यक होगा।

इसके अलावा भारतीय तट कानून (Indian Port Act) 1908 व भारतीय वन कानून (Indian Forest Act) 1927 जैसे कुछ अधिनियम और भी हैं, जो निम्नानुसार हैंः

1. **हानिकारक ठोस अवशिष्ट (प्रबंधन एवं उपयोग) अधिनियम, 1998** : इस कानून के अंतर्गत मानव एवं पर्यावरण की क्षति पहुंचाने वाले पदार्थ के निपटान के बारे में नियम बनाए गए है।
2. **जैव चिकित्सालय अवशिष्ट (प्रबंधन एवं उपयोग) अधिनियम, 1998** : इस अधिनियम के तहत विभिन्न रोगों की जांच एवं निदान के तहत चिकित्सालयों एवं जांच केन्द्रों द्वारा निकलने वाले अवशिष्टों के निपटान के बारे में नियम बनाये गये हैं। इस कानून के तहत संक्रमण एवं असंक्रमणकारी को अलग–अलग रंग के पात्रों में इकट्ठा करने के निर्देश दिए गए हैं तथा इनके निपटाने के लिए भस्मीकरण यंत्र (Incineration Plant) लगाना अनिवार्य किया गया है।
3. **नगरीय ठोस अवशिष्ट (प्रबंधन व उपचार) अधिनियम, 1999** : इस कानून के अंतर्गत हर गांव, कस्बों, शहरों आदि के नगरीय निकायों को उनकी सीमा में

उत्पन्न होने वाले ठोस अवशिष्ट को मानव एवं पर्यावरण को बिना नुकसान पहुंचाए निपटान करने के लिए प्रतिबंद्ध किया गया है।

4. **ई–वेस्ट अधिनियम, 2011:** इस अधिनियम की प्रक्रिया प्रगति पर है।

भारत के संविधान निर्माताओं ने संविधान का प्रारूप तैयार करते समय पर्यावरण संरक्षण पर विशेष ध्यान दिया है। संविधान हमारे देश की आधारभूत विधि होने से नागरिक, गैर–नागरिक, राज्य इकाइयाँ सभी उपबंधों को मानने के लिए वाक्य हैं। अतः हमारा संवैधानिक दायित्व है कि हम पर्यावरण संरक्षण संबंधी उपबंधों को जानें, समझें एवं उनका पालन करें। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने भी श्रमिकों तथा विभिन्न जल ग्रहण परियोजनाओं के क्षेत्र में हस्तक्षेप कर पर्यावरण संरक्षण हेतु उल्लेखनीय व ऐतिहासिक निर्णय वाले कार्य किए हैं।

पर्यावरण प्रदूषण को रोकने व सुधारने हेतु सरकार ने कानून बनाए। यह एक बहुत ही प्रशंसनीय कदम है। लेकिन यदि इसकी जानकारी जनता को नहीं है और सरकार की तरफ से कानून की क्रियान्विति भी नहीं है तो ऐसे में कानून का कोई मायने नहीं रह जाता है। अतः हमारी सरकार को चाहिए कि जनता को पर्यावरण प्रदूषणों के दुष्प्रभावों, उनके सुधार व उन पर रोक के उपायों, नियंत्रणों की जानकारी समय–समय पर दुहराये। साथ में प्रदूषण फैलाने पर कानून द्वारा दंड़ित करने की भी जानकारी दे और कानून को क्रियान्विति करे तो यह एक सकारात्मक कदम होगा। इस कार्य में विभिन्न स्वयंसेवी संगठन तथा विभिन्न राज्यों के राज्य मानवाधिकार आयोग व राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के प्रयास प्रंशसनीय रहे हैं।

* * *

प्रतिस्मृति लेख

न्यायमूर्ति जे. एस. वर्मा : एक विलक्षण व्यक्तित्व

***चमन लाल**

जस्टिस जे. एस. वर्मा की 22 अप्रैल, 2013 के दिन आकस्मिक मृत्यु से उन सब को निजी नुकसान की अनुभूति हुई होगी जिनकी कानून के शासन और मानव अधिकारों में सच्ची आस्था है। सर्वोच्च न्यायलय के मुख्य न्यायाधीश तथा राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के अध्यक्ष रहे जस्टिस वर्मा ने अपना सारा कामकाजी जीवन संविधान तथा दूसरे कानूनों को आम नागरिकों के हितों का माध्यम बनाने में बिताया था। न्यायपालिका को व्यक्ति के अधिकारों का संरक्षक और लोकतंत्र की शक्तिशाली आधार–शिला बनाने में राष्ट्र को दी गई उनकी सेवाएँ अतुलनीय गिनी जाएंगी।

जस्टिस वर्मा का उद्‌गम मध्य प्रदेश था और भारतीय पुलिस सेवा के म0प्र0 कॉडर का सदस्य होने के नाते मेरा भी। म0प्र0 में बिताए अपने सेवा काल में मैंने उनकी ख्याति की चर्चाएँ सुनी थी पर उनसे मिलना नहीं हुआ। दरअसल, उनसे पहली मुलाकात सेवा निवृत्ति के बाद 1998 में दिल्ली में एक सेमीनार में हुई थी। कुछ ही दिन पहले वे सर्वोच्च न्यायालय से रिटायर हुए थे। 'अच्छा, तो आप हैं चमन लाल' उनके इन शब्दों में एक आश्चर्यजनक किंतु मोहक आत्मीयता थी। बोले, मैंने अकसर अपने व्याख्यानों में म0प्र0 के दो पुलिस अफसरों का जिक्र किया है। पी0 डी0 मालवीय जो मेरे सहपाठी थे तथा जिनकी खूबियों को मैं इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के दिनों से जानता हूँ और दूसरे आप। पंजाब में कठिन परिस्थितियों में भी कानून के मुताबिक काम करने के कारण पंजाब में कमाई अपनी इज्ज़त की प्रशंसा से बढ़कर मुझे इस बात से प्रसन्नता हुई थी कि जस्टिस वर्मा जैसे प्रतिष्ठित व्यक्ति ने मुझे मालवीय साहब के समकक्ष सोचा था जो पंडित मदन मोहन मालवीय के पोते हैं और अपनी निपुण, निडर और निष्पक्ष कार्य–प्रणाली से भारतीय पुलिस सेवा के आदर्श पुरुषों में जाने जाते हैं।

---

*पूर्व विशेष संपर्ककर्त्ता, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग।

अक्टूबर 1999 में जब जस्टिस वर्मा ने राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के अध्यक्ष पद का कार्यभार संभाला, मुझे आयोग में काम करते दो साल हो गए थे। साढ़े तीन साल उनके अधीन काम करने का अवसर मिला जिसे मैं अपने व्यावसायिक जीवन का सर्वश्रेष्ठ अंग मानता हूँ। उनके करीब आने के चंद ही दिनों में मैंने महसूस किया कि उनसे पहले केवल एक ही व्यक्ति के लिए मैंने उस तरह का आदर व श्रद्धा अनुभव की थी जो मैं अनायास ही जस्टिस वर्मा को देने लगा था। वे थे, श्री के. एफ. रूस्तमजी, म0प्र0 के विख्यात पुलिस अधिकारी जिन्होंने बी. एस. एफ. का गठन किया था। नव निर्मित केन्द्रीय पुलिस बल की प्रथम टीम का सदस्य होने का गौरव मुझे भी मिला था। रूस्तम जी से बढ़कर किसी ने पुलिस में या पुलिस से बाहर, मेरी कार्यशैली तथा जीवन शैली को प्रभावित नहीं किया। वे उम्रभर मेरे प्रेरणा स्त्रोत रहे जिनसे मैंने और मेरे जैसे अनेक पुलिस अधिकारियों ने सीखा कि नागरिकों के अधिकारों का सम्मान करते हुए निष्पक्ष तथा निडर होकर कानून के मुताबिक काम करना ही लोकतांत्रिक पुलिस प्रणाली पुलिस स्वायत्तता की अनिवार्य विशिष्टता है।

मैंने अनुभव किया है कि शीर्ष पदों पर आसीन पुलिस तथा न्यायपालिका के सदस्यों के आपसी संबंध कड़वे तो नहीं पर मीठे भी नहीं होते। दोनों तरफ से विश्वास तथा भरोसे की कमी इन संबंधों में अक्सर देखी जा सकती है। पुलिस नेतृत्व सोचता है कि सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश कानून के शब्दों मे जकड़े हुए हैं तथा उस ज़मीनी–सच्चाई से अपरिचित हैं जिससे पुलिस को आए दिन जूझना पड़ता है विशेषतः आंतरिक सुरक्षा के आतंकवाद, अलगाववाद, नक्सलवाद जैसे मुद्दों के सिलसिले में। न्यायपालिका के वरिष्ठ सदस्य इस बात से असंतुष्ट हैं कि देश के स्वतंत्र होने तथा संविधान के लागू होने के बाद भी पुलिसकर्मियों ने अपने काम–काज के तौर–तरीके नही बदले जो पहले जैसे ही क्रूर तथा दमनकारी हैं तथा जिनमें लोगों को संविधान से मिले अधिकारों के लिए कोई स्थान नहीं है। मुझे केवल जस्टिस वर्मा ही न्यायपालिका की चोटी तक पहुँचने वाले एक ऐसे व्यक्ति मिले जिनकी इस विषय पर सोच मौलिक तथा पूर्णतः संतुलित थी। वे हर मुमकिन मौके पर जोर देकर कहा करते थे कि उनके विचार में पुलिस की कार्य संबंधी स्वायत्तता उतनी ही आवश्यक है जितनी न्यायपालिका की स्वतंत्रता, ये दोनों मिलकर ही कानून का शासन सुनिश्चित कर सकते हैं जो हमारे संविधान का मौलिक अवयव हैं जिसमें किसी तरह का परिवर्तन निषिद्ध करार कर दिया गया है।

जस्टिस वर्मा पुलिस के लिए जिस तरह की स्वायत्तता की दुहाई देते थे उसका उस स्वच्छंदता से कुछ लेना–देना नहीं है जिसकी मांग के. पी. एस. गिल के चेले करते

हैं यह कहकर कि उन्हें लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए साधन और तरीके चुनने की पूरी छूट प्रदान की जाए। पुलिस को 'खुली छूट' (फ्री–हैंड) की अवधारणा कोई भी लोकतंत्रिक व्यवस्था स्वीकार नहीं कर सकती। जस्टिस वर्मा की सोच में पुलिस की आज़ादी का मतलब उसे राजनीतिक हस्तक्षेप तथा अन्य बाहरी प्रभावों तथा दबावों से मुक्त कराना है ताकि वह कानून की आवश्यकता के अनुसार–अपना काम कर सके। अपने मशहूर 'हवाला' फैसले में उन्होंने सी. बी. आई. को सरकार के नियंत्रण से मुक्त कराके इसी सिद्धांत को प्रतिपादित किया था। उसी के फैसले का एक महत्वपूर्ण अंक जो भुला दिया गया है, प्रदेशों में पुलिस महानिदेशक को भी इसी तरह की स्वतंत्रता उपलब्ध कराने से संबंधित था। मुझे जस्टिस वर्मा से इस विषय पर कई बार चर्चा करने का गौरव प्राप्त है। अपने फैसले के वास्तविक परिणाम से वे अप्रसन्न थे। सर्वोच्च न्यायालय से अपने काम – काज में आजादी प्राप्त करने के बाद भी सी. बी. आई. की कार्यशैली में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया तथा पहले जैसे ही इसका राजनीतिक दुरूपयोग जारी है। यही वजह है कि एक बार फिर सर्वोच्च न्यायालय का ध्यान इस ओर गया है तथा हवाला फैसले को पुख्ता बनाने की कोशिश हो रही है।

जस्टिस वर्मा का मानना था कि ढांचागत या प्रणाली संबंधित सुधार, बेहतर कानून, उन्नत टेक्नॉलाजी तब तक कारगर नहीं हो सकते जब तक पुलिस को भीतरी व्याधियों से मुक्त कराके उसकी नैतिक नींव को मजबूत नहीं बनाया जाता। यह लोकतंत्र की आवश्यकताओं के अनुरूप तैयार की गई एक नई आचरण संहिता के लागू करने से ही संभव होगा।

ओडिशा सुपर सायक्लोन :–

जस्टिस वर्मा के चार्ज लेने से चार दिन पहले ही ओडिशा सुपर सायक्लोन ने प्रदेश के 13 जिलों में भयंकर तबाही मचाई थी, आयोग की पहली मीटिंग में ही नए अध्यक्ष ने आयोग को इस प्रकरण में सक्रिय भूमिका निभाने का निर्णय सुनाया। दूसरे सदस्य तथा हम सब वरिष्ठ अधिकारी समझ नहीं पा रहे थे कि मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 के कौन से प्रावधान के अंतर्गत इस प्राकृतिक आपदा के मामले में आयोग का हस्तक्षेप वैध माना जा सकता है। जस्टिस वर्मा ने स्पष्ट किया कि जान और माल के नुकसान के इस खतरनाक हादसे को मानव अधिकारों के परिप्रेक्ष्य में देखकर यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि सायक्लोन के शिकार लोगों में निर्बल और अपेक्षित वर्ग – बच्चे, बूढ़े, औरतें, निराश्रित, निःशुक्ल और निर्धन को राहत के मामले में विशेष देख–रेख तथा संरक्षण मिलता है। आयोग के सचिव गोपालस्वामी और मुझे (स्पेशल रिपोर्तयर) को तत्काल ओडिशा विजिट कर प्रभावित स्थानों का भ्रमण और संबंधित

अधिकारियों से मिलकर स्थिति पर विस्तृत रिपोर्ट देने के आदेश हुए। अपने मिशन की प्रासंगिकता पर हमारा शक तभी दूर हुआ जब हमारी रिपोर्ट पर आयोग ने विस्तृत सिफारिशें जारी करके केन्द्र तथा प्रदेश सरकार को बहुत से सुझाव दिए जिनका संबंध अल्पावधि राहत कार्य तथा दीर्धगामी विकास कार्यक्रमों से था। साथ में कई सुझाव भविष्य में ऐसी आपदा से निपटने के लिए पहले से की जाने वाली तैयारी तथा प्रशासनिक कार्रवाई की तत्परता से संबंधित थे। मैंने सभी प्रभावित जिलों का तीन बार दौरा करके आयोग की सिफारिशों के अनुपालन का अनुवीक्षण किया था। आयोग के दखल के फलस्वरूप राहत कार्यों में पाई गई कई गलतियों व कमियों को दूर किया जा सका। उदाहरण के तौर पर, अनधिकृत भूमि पर अतिक्रमण के दोषी परिवारों को भी क्षतिपूर्ति राशि दिलाने तथा मछुआरों को उनकी नष्ट हुई या गुम हुई कश्तियों का मुआवजा दिलाने का श्रेय आयोग को ही जाता है। आयोग की एक और महत्वपूर्ण उपलब्धि थी एक डिप्टी कमिश्नर का अभूतपूर्व प्रस्ताव कि समुद्र तट के 5 किलोमीटर के अंदर स्थित सभी स्कूलों को वर्तमान तथा नए प्रस्तावित डबल स्टोरी करके उन्हें स्कूल के साथ–साथ सायक्लोन शैल्टर भी बना दिया जाए। इसे सभी जिलों में लागू किया गया।

स्थिति के प्रत्यक्ष आकलन ने लिए जस्टिस वर्मा भी एक बार भुवनेश्वर और कटक गए थे। मुख्य सचिव और अन्य वरिष्ठ अधिकारियों को संबोधित करने के अलावा उन्होंने प्रदेश के मुख्य मंत्री श्री नवीन पटनायक से भी मुलाकात की। उन्होंने संबंधित लोगों से विचार विमर्श कर ऐसे चार जिला डिप्टी कमिश्नरों को चिन्हित किया जिन्होंने स्थिति से निपटने, विशेषतः राहत कार्यों के संपादन में श्रेष्ठ भूमिका निभाई थी। आयोग ने जहाँ लापरवाह तथा अक्षम पाए गए विभिन्न स्तर के कुछ अधिकारियों पर असंतोष व्यक्त किया, चार डिप्टी कमिश्नरों के काम को प्रशंसा पत्र देकर सहारना भी की।

ओडिशा सुपर सायक्लोन में आयोग की उपयोगी भूमिका से आयोग को जो नई दक्षता का अनुभव मिला वह 2001 के गुजरात भूकंप के समय बहुत काम आया जब आयोग ने तत्परता से अपनी टीम भेजकर राहत कार्यों के संचालन तथा अनुवीक्षण में अपनी भूमिका स्पष्ट स्थापित कर ली।

गुजरात हिंसा

फरवरी 2002 में गुजरात में गोधरा ट्रेन कांड तथा उससे उत्पन्न सांप्रदायिक हिंसा के प्रकरण में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की साहसपूर्ण तथा निष्पक्ष भूमिका की प्रशंसा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हुई थी। स्थिति का सही जायजा लेने के लिए जस्टिस वर्मा

अहमदाबाद तथा बड़ौदा गये थे। साथ आयोग के सेक्रेटरी जर्नल श्री पी. सी. सेन तथा मुझे ले गये। अहमदाबाद में स्पेशल रिपोर्तयर श्री पी0 जी0 नबूदरी को भी शामिल कर लिया। गोधरा, अहमदाबाद तथा बड़ौदा में प्रभावित स्थलों का निरीक्षण करने के बाद शासन के उच्च अधिकारियों से मीटिंग ली। उससे पहले जनता के एक बड़े समूह जिसमें गैर–सरकारी संगठन, ट्रेड यूनियन, मीडिया तथा शिक्षा जगत के प्रतिनिधि उपस्थित थे, से बातचीत की। दोनों समुदायों के राहत शिविरों का दौरा भी किया। हिंसा के शिकार परिवारों के र्ददनाक किस्से सुने। गोधरा कांड की ट्रेन के अग्निग्रस्त डिब्बे से जिंदा बचे कुछ लोगों से भी बात की। प्रदेश के मुख्यमंत्री नरेन्द्र मोदी को सर्किट हाउस में बुलाया।

जिस संजीदगी तथा नर्म–दिली के साथ जस्टिस वर्मा ने हिंसा की शिकार विधवा औरतों और अनाथ बच्चों के हृदय विदारक वृतांत सुने उससे मुझे उनके व्यक्तित्व का एक नया पक्ष देखने को मिला। दिमाग के धनी, इस निर्भीक न्यायाधीश के हृदय की संपन्नता का बोध मुझे उनके करीब बिताए तीन दिनों में हुआ जब उनके हर हावभाव और हर शब्द में मैंने मानवीय गुणों की अनूठी झलक देखी थी।

मुझे इस बात पर हमेशा गर्व रहेगा कि गुजरात हिंसा संबंधी आयोग की कार्यवाही का पहला प्रारूप मैंने बनाया था जिसे जस्टिस वर्मा ने आयोग के प्रतिभाशाली, सदस्य वीरेन्द्र दयाल की मदद से परिष्कृत कर अंतिम रूप दिया था। इसी प्रकिया में आयोग ने इस सिद्धांत की परिपुष्टि की थी कि मानव अधिकारों के संरक्षण संबंधी सरकार के उत्तरदायित्व का दायरा केवल सरकारी कार्मिकों (स्टेट– एक्टर) तक ही सीमित नहीं है। गैर–सरकारी कार्मिकों (नॉन स्टेट –एक्टर) जैसे आंतकवादी या सांप्रदायिक तत्वों द्वारा जनता के मानव अधिकारों के उल्लंघन के लिए भी राज्य (स्टेट) ही उत्तरदायी है।

सर्वोच्च न्यायालय तथा राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की परिपूरकता

बंधुआ श्रम से संबंधित कई जनहित याचिकाओं पर बरसों से कोई कारगार कार्रवाई करने में नाकाम रहने के बाद 11 नवम्बर, 1997 को सर्वोच्च न्यायालय ने एक अनूठा आदेश जारी किया। मुख्य न्यायाधीश जे. एस. वर्मा की एक नई और रचनात्मक पहल ने राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग को पूरे देश में बंधुवा श्रम (उन्मूलन) पद्धति अधिनियम 1976 के अनुवीक्षण का उत्तरदायित्व सौंप दिया। उसी दिन एक दूसरे आदेश में आयोग को रांची, आगरा तथा ग्वालियर से राजकीय मानसिक चिकित्सालयों के कामकाज के पर्यवेक्षण की जिम्मेदारी दी गई जिसका उद्देश्य केन्द्रीय स्वास्थ्य तथा परिवार कल्याण

मंत्रालय द्वारा गठित दयाल समिति की रिपोर्ट के अनुसार इन संस्थानों में ढांचागत तथा व्यवस्थात्मक सुधार लाना था। इसी दौरान ओडिशा के कोरापुट, बोलांगीर, कालाहाण्डी (के0बी0के0) क्षेत्र में भुखमरी की खबरों से संबंधित एक जनहित याचिका पर समस्त कार्रवाई करने का कार्य भी आयोग को दे दिया गया। तीनों आदेशों में सर्वोच्च न्यायालय ने अयोग को कानून बाध्यकारी अनुशंसायें जारी करने के लिए प्राधिकृत भी किया। इन अभूत पूर्व निर्णयों के पीछे सर्वोच्च न्यायालय में मुख्य न्यायधीश जे. एस. वर्मा तथा राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के अध्यक्ष जस्टिस एम. एन. वेंकटचल्लया की एक साझी सोच थी। सर्वोच्च न्यायालय देशवासियों को राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक न्याय दिलाने के लिए आदेश देने में पूर्णतः सक्षम है पर उनका अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए साधन इसके पास नहीं हैं। दूसरी ओर, आयोग के पास जमीन पर सही स्थिति की जानकारी इकत्र करने के लिए अपना स्टाफ है पर उसकी अनुशंसाये कानूनन बाध्यकारी नही हैं। परिपूरकता के सिद्धांत पर आधारित इन दिग्गज न्यायाधीशों की सोच के अनुसार सर्वोच्च न्यायालय आयोग की अनुशंसाओं को बाध्यकारी बनाने के आदेश दे सकता है और आयोग अपने साधनों से आदेशानुरूप सर्वोच्च न्यायालय के निर्देशों के अनुपालन का अनुवीक्षण करके न्यायालय को रिपोर्ट कर सकता है। मैं इन तीनों प्रकरणों से 1997 से 2008 तक जुड़ा रहा। सर्वोच्य न्यायालय तथा राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के बीच की परिपूरकता के भरपूर नतीजों का उल्लेख आयोग की वार्षिक रिपोर्टों में देखा जा सकता है। यह खेद का विषय है कि अंत्यत उपयोगी पाये जाने वाले इस सिद्धांत का चलन जस्टिस वर्मा के रिटायर होते ही बंद हो गया। उसके बाद सर्वोच्च न्यायालय और राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग में इस तरह का व्यावहारिक रिश्ता देखने को नहीं मिलता।

कार्योन्मुखी न्यायाधीश

जस्टिस वर्मा एक प्रगतिशील किंतु व्यावहारिक न्यायाधीश थे। मानव अधिकारों की उत्पत्ति तथा अभ्यास कथनी और करनी के बीच की दरार पाटना वे आयोग की सबसे महत्वपूर्ण चुनौती समझते थे। मानव अधिकारों को संविधान तथा कानून के पन्नों से उठाकर मूर्तरूप प्रदान कर जमीनी सच्चाई का अंग बनाना उनके व्यावसायिक जीवन का प्रमुख लक्ष्य था। मैंने उनके सान्निध्य में कानून विशेषतः भारतीय संविधान के अनेक ऐसे, मर्म सीखे जिन्होंने मेरी सोच को नए आयाम प्रदान किए। संविधान की मूल संरचना और केन्द्रक मूल्यों (कोर वेल्यूज़) पर बोलते समय उनके चेहरे विशेषतः आँखों में अनोखी चमक उभर आती थी। उन क्षणों में मुझे एक महान दार्शनिक गुरू के चरणों में बैठा होने के आनंद की अनुभूति होती थी। संविधान के कुछ प्रावधानों में पाई जाने वाली

अस्पष्टता कमी या दरार (गैप) इस विषय पर जस्टिस वर्मा की सोच मौलिक थी जिसका इस्तेमाल उन्होंने 'विशाखा' फैसले में किया जो एक क्रांतिकारी पहल साबित हुआ।

मानवीय गुणों की प्रचुरता

अपने पुलिस सेवा काल में मुझे कई न्यायाधीशों को करीब से जानने का अवसर मिला। उनमें से अधिकतर में मैंने न केवल बाहर के लोगों बल्कि अपने सहकर्मियों और अधीनस्थ कर्मचारियों से भी फ़ासला बनाकर रखने की आदत देखी। कई बार लगा कि आपसी रिश्तों में एक विशेष प्रकार की तटस्थता की अनिवार्यता न्यायपालिका की अलिखित आचरण संहिता का अंग है। ऐसा नहीं कि वे आवश्यकता पड़ने पर एक दूसरे की परवाह या मदद नही करते। पर उनका ऐसी स्थितियों में व्यवहार औपचारिक और नपा–तुला होता है। जस्टिस वर्मा इस बात जैसी कई अन्य ऐसी बातों में अपने कबीले के लोगों से अलग थे। वे दिल और दिमाग से एक गहरे और गंभीर इन्सान थे। किसी भी स्थिति या विषय पर अपनी प्रतिक्रिया वे स्पष्ट और आवश्यक हुआ तो कड़े शब्दों में व्यक्त करते थे। सच्चाई, साहस और निडरता की अपनी बेमिसाल खूबियों को उन्होंने 'पोलिटिकल करेक्टनेस' के लोकप्रिय चलन से कभी धुंधला नहीं होने दिया। लेकिन उनके व्यवहार तथा बातचीत के अंदाज़ में एक मोहक और सुखद आत्मीयता होती थी। मात्र दिखाने के लिए वे कुछ नही करते थे। लेकिन जब, जहाँ और जिसके लिए कुछ करना आवश्यक समझा, अनायास सहज स्वाभाविक ढंग से कर देते। मुझे याद आ रहा है सड़क दुर्घटना में घायल आयोग के एक चपरासी को खतरनाक हालत में एम्स ले जाया गया था। जस्टिस वर्मा को पता चला तो उन्होंने न केवल संयुक्त सचिव जलजा को तत्काल एम्स जाकर उचित इलाज सुनिश्चित कराने के लिए कहा बल्कि स्वयं भी एम्स के मेडिकल सुपरिटेंडेट से फोन पर बात की और दूसरे दिन उस कर्मचारी को देखने भी गए। गरिमा से जीने के अधिकार में सबकी समानता के उम्रभर प्रबल पक्षकार रहे जस्टिस वर्मा ने एम्स के अधिकारियों को अपने ढंग से बता दिया कि उनकी नज़रों में आयोग के मामूली चपरासी की ज़िंदगी उतनी ही कीमती है जिनती किसी वरिष्ठ अधिकारी की।

आयोग के बाद के दिन

जनवरी, 2003 में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग में अपनी अवधि पूरी करके जस्टिस वर्मा ने सक्रिय सेवा से निवृति ले ली। वे नोएडा में एक किराये के मकान में मध्य वर्ग के संभ्रांत नागरिक का साधारण जीवन बिताने लगे। धन जुटाने के काम जैसे

आरबिटरेशन जो अधिकतर सेवा निवृत न्यायाधीशों का प्रिय पेशा है, उनको कभी आकर्षित नहीं कर पाये। अपनी नौकरी की बचत और पेंशन से पूर्णतः संतुष्ट, लालसा से मुक्त न्यूनतम आवश्कताओं और सीमित आकांक्षाओं का जीवन वरण करने वाला यह महान पुरुष कई सार्वजनिक मुद्दों से निस्वार्थ जुड़ा रहा और सामाजिक कार्यों में संलग्न अनेक संस्थायें और व्यक्ति उनके निःशुल्क परामर्श तथा मार्गदर्शन का लाभ उठाते रहे।

सोच की व्यापकता, चरित्र की महानता और आदर्शों की विशालता ने जस्टिस वर्मा को जीवन के सामान्य सुखों से विमुख नही किया। इसका प्रमाण है जायकेदार भोजन में उनकी रुचि, कपड़ों की पसंद और क्रिकेट से लगाव। अपनी मृत्यु से 15–20 दिन पहले उन्होंने अपने 18 वर्षीय नाती के साथ दिल्ली मेट्रों की यात्रा की थी। उस अनुभव का विवरण उनसे सुनते हुए उन्हें सही रूप से जानने वाले उनके प्रशंसक उस आनंद की कल्पना कर सकते हैं जो भारतीय संविधान के इस विलक्षण विशेषज्ञ को उन आम लोगों से सटकर बैठते हुए मिला होगा जिनमें भारत की संप्रभुत्ता निवास करती है।

उम्र के हिसाब से पूर्णतः स्वस्थ्य तथा समर्थ, अनुशासित जीनव जीने वाले जस्टिस वर्मा का दुनिया छोड़ने का ढंग भी उनके जीवन के हर दूसरे प्रसंग की तरह साधारण था। 6–7 दिन की रहस्यमयी अस्वस्थता ने अचानक इस विराट प्रेरणा स्त्रोत को हमसे छीन लिया। जस्टिस वर्मा उन लोगों में से थे जिनके जाने से दुनिया एक ख़ास मायने में गरीब हो जाती है। तभी तो कुछ दिन पहले जस्टिस वेंकटचल्लया ने फोन पर कहा था, 'ब्रदर वर्मा की अचानक मृत्यु ने वातावरण को धुंधला कर दिया है।' अपनी उम्र की शाम में जस्टिस वर्मा की मृत्यु से मुझे अपने जीवन के एक प्राणभूत अंश के अवसान की अनुभूति होती है। ठीक जैसा 10 साल पहले रूस्तमजी की इसी तरह की अचानक मौत के समय महसूस किया था।

* * *

साक्षात्कार

महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए निरंतर सतर्कता एवं जागरूकता की आवश्यकता

*न्यायमूर्ति सुजाता वी. मनोहर

साक्षात्कारकर्ता – प्रो. सुधामोहन

प्रिया मित्तल

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की ओर से आयोग की पूर्व सदस्य तथा बाम्बे उच्च न्यायालय की पूर्व मुख्य न्यायधीश न्यायमूर्ति सुजाता वी. मनोहर से प्रो. सुधा मोहन एवं सुश्री प्रिया मित्तल द्वारा संयुक्त रूप से 'महिला सशक्तिकरण एवं न्यायपालिका की भूमिका' विषय पर एक साक्षात्कार लिया गया। जिसके मुख्य अंश निम्न प्रकार हैं :–

● प्रश्न : रा0मा0अ0आ0 के एक भूतपूर्व सदस्य के रूप में आपकी राय में रा0मा0अ0आ0 कितना महत्वपूर्ण है एवं महिलाओं एवं बच्चों से जुड़े मामलों में रा0मा0अ0आ0 की भूमिका को आप किस रूप में देखते हैं ?

उत्तर : महिलाओं एवं बच्चों के मूलभूत अधिकारों की सुरक्षा सुनिश्चित करने में रा0मा0अ0आ0 को काफी महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है। बाल विवाह प्रतिबंध अधिनियम में सुधार लाने में रा0मा0अ0आ0 सहायक था। रा0मा0अ0आ0 को महिलाओं एवं बच्चों से संबंधित हर प्रकार की शिकायतें मिलती हैं। इनमें से अधिकांश मामले घरेलू हिंसा एंव पुलिस द्वारा एफ.आई.आर दर्ज नहीं करने से संबंधित होते हैं। देह व्यापार एवं एच. आई.वी/एड्स के मामले भी कभी–कभी इसके पास आते हैं। हर वर्ष आयोग में

---

* पूर्व सदस्य रा.मा.अ.आयोग एवं पूर्व मुख्य न्यायाधीश, महाराष्ट्र उच्च न्यायालय, मुम्बई।

लगभग 67,000 शिकायतें दर्ज की जाती है तथा इनके निपटान के लिए व्यापक संस्थागत ढ़ाँचे की आवश्यकता हैं। बहरहाल रा0मा0अ0आ0 की भूमिका प्रशंसनीय रही है। हालांकि, इसमें सुधार की अभी काफी गुंजाइश है।

रा0मा0अ0आ0 विभिन्न प्रकार की गतिविधियों में व्यस्त रहता है, किन्तु इसका संगठनात्मक ढांचा विविध गतिविधियों से निपटने के लिए अपर्याप्त है। रा0मा0अ0आ0 विधिक मुद्दों से अलग व्यापक गतिविधियों में व्यस्त रहता है यथा जनता एवं संबंधित समूहों के लिए शैक्षणिक कार्यक्रम, पुलिस प्रशिक्षण कार्यक्रम, नौकरशाहों के लिए अभिमुखीकरण कार्यक्रम आदि। इस तरह के कार्यक्रम महत्वपूर्ण हैं क्योंकि ये जन प्राधिकारियों एवं एजेंसियों को संवेदनशील बनाने में मदद करते हैं जिनके ऊपर आम जनता की सेवा का दायित्व है। हमारे कुछ नौकरशाह काफी सक्षम एवं संवेदन शील हैं, किन्तु कई अन्य ऐसे भी है जिन्हें समय–समय पर संवेदीकरण कार्यक्रम की जरूरत है ताकि उन्हें उन मुद्‌दों को समझने में मदद मिल सके जिनसे उन्हें निपटना है। उदाहरणार्थ बंधुआ मजदूरी के मुददे को जिलाधिकारी काफी अलग रूप में देखते है तथा कुछ का मानना है कि जब तक गरीबों को उनकी मजदूरी के लिए किसी प्रकार का आर्थिक मेहनताना दिया जाता है तो ठीक है। कुछ यह मानते हैं कि भारत जैसे गरीब देश में यदि बच्चों से काम कराया जाता है तो इसमें कुछ गलत नहीं है क्योंकि इससे उन्हें जीवन यापन में सहायता मिलती है। वे यह भूल जाते है कि इन बच्चों को शिक्षा के अधिकार से वंचित रहना पड़ता है। उन्हें इस तथ्य की भी जानकारी नहीं है कि कई मामलों में जहाँ बच्चों से जबरन काम कराया जाता है, वहाँ परिवार के पुरुषों के पास काम नहीं होता, बच्चों से काम इसलिए कराया जाता है क्योंकि बड़ों की तुलना में उनसे काम करना सस्ता पड़ता है। ऊँचे पदों पर आसीन लोगों द्वारा सोची जाने वाली इस तरह की धारणाओं पर चर्चा की जाती है तथा उन्हें खारिज कर दिया जाता है क्योंकि वे देश के मूलभूत संवैधानिक अधिकारों के विरुद्ध है। अपने प्रभार वाले जिलो में जिलाधिकारियों को काफी शक्तियां प्राप्त होती हैं एवं उन जिलों में उनका प्रभाव होता है तथा वे बंधुआ मजदूरों को छुड़ाने या उनके पुनर्वास आदि जैसे मुद्‌दों से निपटने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते है।

● प्रश्न : क्या आप रा0मा0अ0आ0 के तहत किए गए कुछ महत्वपूर्ण कार्यक्रमों का जिक्र करना चाहेंगे ?

उत्तर : एच.आई.वी. पाजीटिव लोगों को अपने ही समुदाय में जीने के अधिकार से वंचित करने तथा समुदाय के अन्य लोगों के बीच इसके फैलने के डर से उनके बहिष्कार को

ध्यान में रखते हुए एच.आई.वी / एड्स कार्यक्रम रा0मा0अ0आ0 का एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम था। न्यायमूर्ति सुजाता ने कहा, ''मैं एक ऐसे परिवार का उदाहरण दे सकती हूँ जिसके बच्चे एच. आइ. वी. पॉजिटीव पाए गए तथा स्कूल जाने वाले दूसरे बच्चों के अभिभावकों एवं स्कूल प्राधिकारियों ने उन्हें स्कूल आने की अनुमति देने से इंकार कर दिया।'' इस बारे में जागरूकता फैलाने के लिए कि एच.आइ.वी. एड्स संक्रामक रोग नहीं है तथा इस बात से डरने की जरूरत नहीं है कि मानवीय स्पर्श से यह फैल जाएगा रा0मा0अ0आ0 ने इस मामले में स्कूल प्राधिकारियों, ग्रामीणों एवं बच्चों के अभिभावकों के साथ बैठक आयोजित की। इस समस्या का आखिरकार समाधान हो गया तथा बच्चों को स्कूल में दुबारा दाखिला मिला। इसलिए ऐसे मामलों में जहाँ जागरूकता, समझ एवं जानकारी के अभाव में समुदाय अनजाने में ऐसा व्यवहार करते है जिससे दूसरों के मूलभूत मानव अधिकार वंचित होते है वहाँ रा0मा0अ0आ0 को महत्वपूर्ण भूमिका निभानी पड़ती है। विभिन्न स्थानों में रा0मा0अ0आ0 द्वारा शुरू किए गए कार्यक्रमों पर अनुवर्ती कार्रवाई एवं उनकी निगरानी का अभाव एक समस्या है। यह एक ऐसा क्षेत्र है जिस पर ध्यान देने की जरूरत है ताकि इसकी गतिविधियों का लंबे समय तक प्रभाव सुनिश्चित किया जा सके। इसके लिए स्वीकृत कर्मचारियों से अधिक की आवश्यकता है। न्यायमूर्ति सुजाता ने कहा कि शुरूआती दिनों में कुछ समर्पित लोगों द्वारा काफी अवैतनिक काम किया जाता था, जिससे कुछ हद तक मानव शक्ति एवं कुशल मानव संसाधन की जरूरत की पूर्ति हो जाती थी किन्तु इस प्रकार की सहायता हमेशा उपलब्ध नहीं होती। रा0मा0अ0आ0 को मानव अधिकारों की रक्षा के अपने उद्देश्य की प्राप्ति में आने वाली चुनौतियों का मुकाबला करने एवं विविध माँगों की पूर्ति के लिए आधारभूत संरचना गठित करने की आवश्यकता है।

● प्रश्न : महिलाओं से संबंधित मामलों में रा0मा0अ0आ0 की भूमिका कितनी महत्वपूर्ण है ?

उत्तर : यह किसी भी समय, ऐसे मामलों को देखने वाले लोगों की समग्र सोच पर निर्भर करता है। किन्तु महिलाओं के अधिकारों को सुनिश्चित करने हेतु एक निश्चित प्रतिबद्धता होती है। न्यायाधीश सुजाता ने कहा कि ''मेरे समय में अवैध व्यापार की शिकार महिलाओं के ऊपर अपनी तरह की पहली शोध कार्रवाई की गई थी।'' दिल्ली में समाज विज्ञान संस्थान को इस परियोजना का प्रभार सौंपा गया था। भारत के अलग–अलग हिस्सों में महिलाओं की तस्करी के मामलों की जाँच की गई। तस्करी करने वाले लोगों, ऐसी महिलाओं जिनका अवैध व्यापार हुआ था सहित बहुत से लोगों का साक्षात्कार लिया गया। कभी–कभी छुड़ाई गई महिलाएँ वापस वेश्यालय चली जाती

है क्योंकि जीने के लिए उनके पास कमाई का कोई अन्य जरिया नहीं होता। यह अनुसंधान उचित राहत एवं पुनर्वास की व्यवस्था की आवश्यकता पर प्रकाश डालता है। पुनर्वास महिलाओं के अवैध व्यापार की समस्या से निपटने के लिए एक महत्वपूर्ण आयाम है। रा0मा0अ0आ0 ने कानून में बदलाव लाने के लिए सरकारी प्राधिकारियों के साथ बैठक की थी किन्तु अभी तक इसमें बदलाव नहीं हो सका है।

अवैध व्यापार की अंतरराष्ट्रीय मन्डली है। यहां तक कि बंधुआ मजदूरी भी बच्चों के अवैध व्यापार से जुड़ा हुआ है। मुझे याद है भारत और नेपाल से चुराए गए बच्चों का एक मामला था जिनसे सर्कस में जबरन प्रदर्शन कराया जाता था। देह व्यापार करने वालों ने बच्चों के अभिभावकों को यह भरोसा दिलाया गया था कि वे बच्चों को रोजगार दिलायेंगे। रा0मा0अ0आ0 ने अभिभावकों को छुड़ाए गए बच्चों को वापस ले जाने के लिए बुलाया।

वर्तमान में बाल–विवाह पर बहस चल रही हैं। बाल विवाह प्रतिबंध अधिनियम में सुधार लाने में रा0मा0अ0आ0 सहायक रहा है। दुर्भाग्य से लोग यह कह रहे है कि यह रिवाज लड़कियों की सुरक्षा के लिए है। आप महिलाओं और लड़कियों की सुरक्षा किसी और तरीके से क्यो नहीं कर सकते? बाल–विवाह किसी लड़की के शिक्षा के अधिकार को पूरी तरह नकारता है। कम उम्र में लड़कियों की शादी हो जाने से उन्हें स्वास्थ्य, शिक्षा, हर चीज से हाथ धोना पड़ता है। उनके पास रोजगार का कोई अवसर नहीं होता क्योंकि उन्हें शिक्षा नहीं प्राप्त होती। इसलिए उन्हें आर्थिक आत्म–निर्भरता से वंचित रहना पड़ता है। अब खाप पंचायतों और आनर किलिंग के मुद्दे को देख लीजिए। सबसे अधिक चौकाने वाली बात यह है कि लोग ऐसी बातों को सुनकर चौंकते नहीं है। इस तरह की प्रथाओं को समाप्त करना होगा। कम से कम सती प्रथा को खत्म किया गया किन्तु भारत के कुछ हिस्सों में यह दुबारा शुरू हो गयी। इसलिए आप देख रहे है कि लोगों पर अपने परिवेश एवं उनकी सोच का कितना गहरा असर होता है। इन मामलों पर लोगों को जागरूक करने के लिए आपके पास निरन्तर सतर्कता एवं जागरूकता के कार्यक्रम होने चाहिए।

● प्रश्न : पीछे मुड़ कर देखने पर क्या आपको लगता है कि रा0मा0अ0आ0 के साथ काम करने पर आप संतुष्ट है ?

उत्तर : काफी अधिक। रा0मा0अ0आ0 के साथ काम करना एक सार्थक अनुभव रहा है। इससे मुझे अपने देश, यहाँ के लोगों एवं उनसे जुड़ी समस्याओं के बारे में और अधिक जानने का अवसर प्राप्त हुआ। रा0मा0अ0आ0 को देश भर से पोस्ट कार्ड, पत्र यहाँ तक

कि फैक्स के जरिए व्यापक मुद्दों पर शिकायतें प्राप्त होती रहती हैं। यहाँ काम कर काफी संतुष्टि मिलती है और यहाँ सीखने का अनूठा अनुभव रहा है।

मुझे सर्वोच्च न्यायालय के एक जज के रूप में अपने द्वारा दिए गए निर्देशों को लागू करने का भी अनोखा अवसर प्राप्त हुआ।

● प्रश्न : महिलाओं के लिए रोजगार के क्षेत्र में किस प्रकार के भेद–भाव मौजूद हैं ?

उत्तर : एक ही काम के लिए अपने पुरुष सहयोगियों की तुलना में महिलाओं को कम मजदूरी दिए जाने के ऐसे असंख्य मामले हैं जो अदालतों के सामने आते है। इस प्रकार के मामले पहले यूरोप एवं अमेरिका में शुरू हुए क्योंकि इन देशों में समाज में काम करने वाली महिलाओं की संख्या काफी अधिक थी। समान कार्य के लिए समान वेतन की अवधारणा पश्चिमी देशों से आई। हालांकि, इन देशों में भी महिलाओं को भेद–भाव का सामना करना पड़ता है। जब रूथ बेदर जिंग्सवर्ग को अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय का जज नियुक्त किया गया तो उनसे पूछा गया कि इस तरह की दूसरी महिला के रूप में नियुक्त होने पर उन्हें कैसा लग रहा था। उनका जबाब था काफी अच्छा लग रहा है, लेकिन और भी अधिक अच्छा लगेगा यदि लोग गिनना छोड़ दें। आर्थिक भेद–भाव उन देशों में और भी बदतर है जहाँ भेद–भाव से महिलाओं की रक्षा करने के लिए कानून नहीं हैं।

● प्रश्न : विभिन्न व्यवसायों में कार्यबल में महिलाओं की बहुत बड़ी संख्या होने के लिए आप किसे जिम्मेदार मानते है ?

उत्तर : इसमें आर्थिक कारण महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसके साथ ही यह तथ्य भी है कि महिलाएं शिक्षित हो रही हैं, प्रशिक्षिण हासिल कर रही हैं, जो उन्हें बेहतर आमदनी वाले रोजगार एवं और भी अधिक उत्तरादायित्वपूर्ण काम के लिए तैयार करता है। अन्यथा, हमारे यहाँ हमेशा से घरेलू नौकर के रूप में काम करने वाली महिलाएँ, कारखानों, कृषि क्षेत्र में काम करने वाली महिलाएं रही हैं। वास्तव में आज भी, महिलाओं की एक बड़ी आबादी कृषि क्षेत्र में काम करती है। लेकिन अब उनके पास और अधिक जिम्मेदारीपूर्ण एवं रचनात्मक कार्य भी हो सकते हैं। उनके काम की तस्वीर में एक गुणवत्तापूर्ण बदलाव आया है।

● प्रश्न : क्या वास्तव में लोगों की सोच में ऐसा कोई बदलाव आया है कि अपने पुरुष सहयोगियों की भांति महिलाएं भी बखूबी काम कर सकती हैं ?

उत्तर : मुझे उम्मीद है कि ऐसा है। हालांकि मैं निश्चित तौर पर नहीं कह सकती। देखा जाए तो उच्च शिक्षा अथवा दवा जैसे कुछ क्षेत्रों में महिलाओं के लिए ऐसी कोई समस्या नहीं है। जब किसी व्यवसाय में महिलाओं की बड़ी संख्या में काम कर रही हो तो अन्य महिलाओं पर भी इसका असर होता है। किसी क्षेत्र में महिलाओं की पर्याप्त संख्या होने पर दूसरों को भी उस क्षेत्र में आने के लिए अधिक विश्वास मिलता है। मुझे उम्मीद है कि स्थितियाँ बदलेंगी। किन्तु घर से बाहर काम करने वाली महिलाओं के लिए कानून और व्यवस्था का अभाव एक बड़ी बाधा है। यह उन सभी बदलावों को जो वास्तव में हुए हैं निष्प्रभावी कर देता है।

● प्रश्न : इस संदर्भ में आप न्यायपालिका की भूमिका को किस प्रकार देखते हैं जिसके साथ आप इतने करीब से जुड़ी रही हैं ?

उत्तर : न्यायपालिका को महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है। कुल मिलाकर महिलाओं के मामले एवं उनके अधिकारों के प्रति न्यायपालिका की राय काफी सहानुभूतिपूर्ण एवं मददगार रही है। परिवार कानून जैसे कानूनों की व्याख्या महिलाओं के प्रति मददगार है। न्यायपालिका ने महिलाओं को और अधिक अधिकार देने का भी समर्थन किया है।

किन्तु महिलाओं के प्रति अपराधों से निपटने के रास्ते में समस्याएँ हैं। हमारे पास अलग जाँच एजेंसी नहीं है। मेरी राय में यह हमारी पहली गलती है। हमारे पास एक अलग एजेंसी होनी चाहिए जो जाँच में प्रशिक्षित हो। पुलिस समुचित जाँच करने के लिए प्रशिक्षित नहीं है।

दूसरी बात यह है कि पुलिस बल का राजनीतिकरण नहीं होना चाहिए। उन्हें सरकार की एक स्वतंत्र एजेंसी के रूप में काम करने दिया जाना चाहिए। यह प्रश्न राजनीति मे अपराधीकरण के मामले से जुड़ा हुआ है। अपराधी नहीं चाहते कि एक प्रभावी आपराधिक न्याय प्रणाली हो। यह हमें तँय करना है कि हम व्यवस्था में सुधार लायेंगे।

जब तक समुचित तरीके से जाँच नहीं होगी और आरोप–पत्र शीघ्र दाखिल नहीं किया जाएगा तब तक न्यायपालिका कुछ भी करने की स्थिति में नहीं होगी। न्याय प्रदान करने के लिए अपराध करने वालों पर शीघ्र मुकदमा चलाना भी महत्वपूर्ण है।

यदि गवाह अपने बयान से मुकर जाते हैं एवं सही साक्ष्य नहीं देते तो किसी मामले में सही तरीके से निर्णय नहीं किया जा सकता। ये सभी कारक आपस में एक–दूसरे से जुड़े हुए है। एक के कार्य निष्पादन का प्रभाव दूसरे के कार्य पर पड़ता है और मेरा मानना है कि रा0मा0अ0आ0 महिलाओं के प्रति किए जाने वाले अपराधों की समुचित जाँच एवं अपराधियों पर मुकदमा चलाने के बारे में चिंतित है। जिस तरीके से अपराधों की जाँच की जाती है उसमें बदलाव की आवश्यकता उत्पन्न करने के लिए यह इससे भी अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। आप थोड़ा–थोड़ा करके सुधार नहीं कर सकते। पूरी व्यवस्था को बदलना पड़ेगा।

- **प्रश्न : एक जज के रूप में मामलों का निर्णय देने में कोई किस हद तक अपने विवेक का प्रयोग कर सकता है, खास रूप से तब जब यह स्पष्ट हो कि किसी शक्तिशाली राजनेता के उत्पीड़न की शिकार किसी महिला को गलत तरीके से प्रस्तुत किया जा रहा है ?**

उत्तर : आपको संतुलित तरीके से प्रस्तुत किए गए किसी मामले के तथ्यों में कानून का प्रयोग करना होता है, और उस दी गई परिस्थिति में कानून की व्याख्या करनी पड़ती है। कोई भी दो परिस्थितियाँ एक जैसी नहीं होती इसलिए न्यायाधीशों को एक हद तक अपने विवेक का प्रयोग करना पड़ता है। यह सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण है कि न्यायपालिका के रवैये में एकरूपता हो। आप जब भी किसी कानून का इस्तेमाल करते हैं तो उन कारणों को ध्यान में रखना महत्वपूर्ण होता है जो किसी मामले को प्रभावित करते हैं। लेकिन, अंतत्वोगत्वा तथ्य महत्वपूर्ण होते हैं। हत्या को हत्या ही माना जाएगा, उसके पीछे कारण चाहे कुछ भी हो। इसके बावजूद कुछ इक्की–दुक्की परिस्थितियाँ निर्णय को प्रभावित करती हैं जैसे एक महिला का मामला जिसने इंग्लैड में अपने पति को उसके क्रूर व्यवहार के कारण मार दिया। उसे रिहा कर दिया गया तथा उस पर इस कारण मुकदमा नहीं चलाया गया कि उसे प्रताड़ित किया गया था तथा अपराध करने के लिए उसे उकसाया गया। इसलिए संगत परिस्थितियों को ध्यान में रखा जा सकता है यदि सही तरीके से उन्हें प्रस्तुत किया जाए। यह केवल महिलाओं के मामलें में ही लागू नहीं होता बल्कि किसी भी व्यक्ति के संबंध में हो सकता है जैसे कि किसी नौजवान को उसके सीनीयरों द्वारा रैगिंग के जरिए प्रताड़ित किया जा रहा हो। यह किसी के भी साथ हो सकता है।

● प्रश्न : महिलाओं के अधिकारों की रक्षा करने एवं भारत में महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने में न्यायपालिका एवं रा0मा0अ0आ0 की क्या भूमिका है ?

उत्तर : महिलाओं एवं बच्चों के अधिकार रा0मा0अ0आ0 के कार्य का एक बहुत ही अहम क्षेत्र है। दिल्ली में निर्भया बलात्कार मामले में मेरा मानना है कि रा0मा0अ0आ0 ने अपनी सिफारिशें न्यायमूर्ति वर्मा आयोग को सौंपी तथा वर्मा आयोग ने इसकी सिफारिशों को महत्वपूर्ण माना। मेरा विश्वास है कि इनमें से कुछ सिफारिशों को अंतिम रिपोर्ट में शामिल किया गया है। लेकिन रा0मा0अ0आ0 कि सिफारिशो के साथ इसकी जाँच की जानी चाहिए।

महिलाओं के प्रति किया जाने वाला व्यवहार अधिकतर सामाजिक–सांस्कृतिक मापदण्डों तथा जिस समाज में वे रहती हैं उसके रीति–रिवाजों द्वारा तय होता है इसलिए कानून से ज्यादा समाज के रवैये में बदलाव से समाज में महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने में मदद मिलेगी। न्यायपालिका ने कानूनी सुधारों को और अधिक प्रभावी बनानें तथा महिलाओं के अधिकारों को बढ़ावा देने में ऐसे कानूनों की व्याख्या करने एवं अपने निर्णयों से सामाजिक नजरिए को रूप देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। महिलाओं एवं लड़कियों के बारे में विपरीत सामाजिक मान्यताओं एवं रिवाजों को बदलने के लिए रा0मा0अ0आ0 के पास कार्यक्रम होने चाहिए।

● प्रश्न : क्या आप विकासशील देशों के मुकाबले विकसित देशों में महिलाओं की स्थिति को बेहतर मानते है ?

उत्तर : पूरी दुनिया में लोगों एवं समाज का बुनियादी नजरिया एक जैसा है, इसलिए विकसित एवं विकासशील दोनों ही देशों में महिलाओं के प्रति लिंग भेद–भाव है, हालांकि उसके स्वरूप एवं स्थिति में कुछ भिन्नता देखने को मिलती है।

गरीबी एवं निरक्षरता दो मुख्य कारक हैं जिनके कारण किसी भी समाज में महिलाओं की स्थिति को नुकसान होता है। चूँकि विकसित देशों में यह कम है इसलिए वहाँ महिलाओं की तुलनात्मक स्थिति विकासशील एवं अर्द्धविकसित देशों की तुलना में बेहतर है जहाँ गरीबी एवं निरक्षरता के उच्च दरों के कारण महिलाओं को लिंग भेद–भाव एवं अन्याय के गंभीर रूप का सामना करना पड़ता है। इसलिए महिलाओं की शिक्षा एवं उनका आर्थिक सशक्तिकरण महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने के लिए काफी महत्वपूर्ण है।

● प्रश्न : आप महिला सशक्तिकरण को कैसे परिभाषित करेंगे?

उत्तर : सशक्तिकरण का अर्थ अपनी जीवन शैली स्वयं तय करनें की क्षमता, अपनी शिक्षा, रोजगार एवं विवाह से संबंधित मामलों में निर्णय लेने की स्वतंत्रता से है। इसका अर्थ सोचने एवं काम करने की स्वतंत्रता से भी है। इन सबसे ऊपर इसका अर्थ एक गरिमापूर्ण एवं आत्मसम्मान का जीवन जीने से है। भारत में, महिलाओं की स्थिति में वांछित सुधार लाने के लिए हमें सही सामाजिक नजरिया बनाने की जरूरत है। ऐसा प्रतीत होता है कि महिलाओं कि भूमिकाओं एवं समाज में अपने वर्ग की स्थिति के प्रति महिलाओं की सोच (विशेष रूप से उन महिलाओं की जो शिक्षित हैं) में बदलाव आया है, किन्तु सामाजिक नजरिए में बदलाव नहीं आया है। इसलिए भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति में बेहतरी के लिए सुधार अथवा बदलाव को बढ़ावा देने एवं महिलाओं के संबंध में पारंपरिक अपेक्षाओं के बीच एक टकराव है। इसके बावजूद यह एक परिवर्तन का दौर है तथा भावी पीढ़ियों के लिए उम्मीद दिखाई देती है।

महिलाओं के सशक्तिकरण के संदर्भ में गंभीर चिंता के रूप में जो पहलू उभर कर सामने आ रहा है वह महिलाओं की सुरक्षा का मसला है। एक अच्छी पुलिस प्रणाली, त्वरित न्याय प्रदान करना एवं महिलाओं से संबंधित अपराधों के दोषी पाए गए अपराधियों को पर्याप्त दण्ड देना आवश्यक है जिससे कि समाज में एक स्पष्ट संदेश दिया जा सके एवं इस प्रकार की घटनाओं को रोका सके। मौजूदा समय में कानून एवं व्यवस्था की कमी महिलाओं की सुरक्षा एवं उनके सशक्तिकरण को बढ़ावा देने के रास्ते में एक बड़ी बाधा प्रतीत होती है। महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण भी महत्वपूर्ण है क्योंकि आर्थिक कारक किसी भी समाज में महिलाओं की भूमिका में बदलाव लाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है।

● प्रश्न : महिलाओं के अधिकारों की रक्षा करने एवं उसे बढ़ावा देने में आप न्यायपालिका की भूमिका को किस प्रकार देखती हैं ?

उत्तर : न्यायपालिका महिलाओं के अधिकारों के प्रति कुल मिलाकर सहानुभूतिपूर्ण एवं मददगार रही है। ऐसे मामलों में जिसमें महिलाएँ उत्पीड़न की शिकार हुई हैं एक जज साधारणतः सहानुभूतिपूर्ण रवैया अख्तियार करता है एवं गरीब, तलाकशुदा अथवा अलग रह रही महिलाओं को पर्याप्त मुआवजा भरण–पोषण देने की कोशिश करता है। महिलाओं के प्रति किए गए अपराधों का निर्णय करने में हालांकि कुछ जजों की राय अलग हो सकती है लेकिन ऐसे केवल कुछ ही उदाहरण हैं जो किसी जज की अपनी सोच एवं उसकी पृष्ठभूमि को उजागर करते हैं जिससे उसका निर्णय प्रभावित हो

सकता हैः– आखिरकार वे भी मनुष्य हैं। लेकिन हम यह अपेक्षा करते हैं कि शिक्षित होने के कारण उन्हें निष्कर्षो को मद्देनजर रखते हुए निष्पक्ष मत रखना चाहिए।

निष्पक्ष एवं स्वंतत्र न्याय के लिए यह महत्वपूर्ण है कि पुलिस, अभियोजन, कानूनी जैसी अन्य सभी एजेंसियाँ मिलकर एवं प्रभावी तरीके से काम करें ताकि समाज में निष्पक्ष न्याय सुनिश्चित हो सके। हमें एक अलग जाँच एजेंसी की आवश्यकता है। मौजूदा समय में, पुलिस कर्मियों द्वारा जाँच की जाती है जिन्हें मामलों की जाँच करने का प्रशिक्षण हासिल नहीं होता। जब तक सही तरीके से जाँच नहीं होगी तथा आरोप–पत्र शीघ्र दायर नहीं किए जाऐंगे तब तक न्यायपालिका लोगों को आपराधिक न्याय का प्रभावी वितरण सुनिश्चित करने में कुछ नहीं कर सकती। न्यायपालिका को अपनी प्रक्रियाओं के अनुसार एवं अपने प्रभुत्व क्षेत्र के तहत ही काम करना पड़ता है। जब तक अदालतों में आरोप पत्र दायर नहीं किए जायेंगे तब तक आपराधिक मामलों पर सुनवाई नहीं हो सकती एवं पीड़ितों को न्याय प्रदान नहीं किया जा सकता। यह महत्वपूर्ण है कि पुलिस पद्धति का कोई राजनीतिकरण न किया जाए यदि इसे प्रभावी तरीके से काम करना है तो। हमें दण्ड प्रणाली की पुनः समीक्षा करने एवं इसके दायरे में पीड़ित को हर्जाना एवं समाज को हुई हानि की क्षतिपूर्ति की अवधारणा को शामिल करने की भी आवश्यकता है।

● प्रश्न : पीछे मुड़ कर देखने पर क्या आपको लगता है कि न्यायपालिका ने महिलाओं के प्रति अपने दायित्वों को पूरा किया है?

उत्तर : कुल मिलाकर मुझे लगता है कि इसने ऐसा किया है। हालांकि अभी भी महिलाओं की स्थिति एवं उनकी हैसियत में सुधार लाने के लिए कानूनी रूप से बहुत कुछ किया जा सकता है।

● प्रश्न : क्या आपको लगता है कि कानून को लागू करने वाली एजेंसियाँ कोई बदलाव ला सकती हैं ?

उत्तर : समुचित कानून बनाकर एवं प्रभावी तरीके से उन्हें लागू कर वे ऐसा कर सकती हैं। लेकिन इससे भी अधिक महत्वपूर्ण समाज के नजरिए में बदलाव लाने की जरूरत है।

● प्रश्न : सशस्त्र बलों में महिलाओं एवं उनके मानव अधिकारों के हनन् की घटनाओं के बारे में आपकी क्या राय है ?

उत्तर : सशस्त्र बलों की अपनी समस्याएँ हैं। सशस्त्र बलों की सख्त पदक्रम बनावट को देखते हुए अपने वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा महिलाओं को उत्पीड़न एक ऐसा मामला है जिस पर ध्यान दिए जाने की जरूरत है। अमेरिकी सशस्त्र बलों को भी महिलाओं से संबंधित ऐसी समस्याओं का सामना करना पड़ा है।

● प्रश्न : किसी मामले की व्याख्या करने और निर्णय देने में किसी न्यायाधीश द्वारा किस हद तक विवेक का प्रयोग किया जाता है विशेष रूप से जब मामला एक ओर पीड़ित महिला और दूसरी ओर किसी शक्तिशाली राजनेता से जुड़ा हो।

उत्तर :– विवेक का प्रयोग किस सीमा तक किया जा सकता है, यह विवेचनाधीन कानून पर निर्भर है। न्यायाधिशों को एक समान मामले में निर्णय देते समय एकरूपता बनाए रखना अपेक्षित है। यहाँ पूर्व उदाहरण के महत्व की महत्व होती है। किसी कानून विशेष के संदर्भ में किसी खास मामले को समझने में कोई न्यायाधीश अपने विवेक का प्रयोग एक सीमा तक ही कर सकता है। यदि पूर्व के निर्णयों का उदाहरण सामने हो, तो वह समान स्वरूप के मामले में भविष्य में निर्णय देने के लिए दिशा–निर्देश के रूप में कार्य करता है और न्यायाधीश को पूरे देश में निर्णय देते समय न्यायपालिका के दृष्टिकोण में एकरूपता बनाए रखने के लिए पूर्व के निर्णय का पालन करना चाहिए।

● प्रश्न : ''न्यायायिक सक्रियता'' के मामले पर आपके क्या विचार हैं ?

उत्तर :– न्यायपालिका को सक्रिय होना चाहिए क्योंकि लोगों के पास न्याय के लिए कोई अन्य अवलंब नहीं है। यदि कोई पीड़ित न्याय के लिए न्यायपालिका के पास आता है, तो न्यायालय यह नहीं कह सकता है कि यह मेरे अधिकार क्षेत्र में नहीं आता है और वे इस संबंध में कोई कार्रवाई नहीं कर सकते; बशर्ते कि शिकायत न्यायपालिका के क्षेत्राधिकार से पूरी तरह बाहर न हो। न्यायिक हस्तक्षेप की सीमा के संबंध में वकीलों एवं न्यायाधिशों के बीच दो विचार हैं। तथापि, संविधान ने न्यायपालिका को लोगों के मूल अधिकारों को सुनिश्चित करने की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी सौंपी है।

इसके अलावा न्यायपालिका से यह भी अपेक्षा की जाती है कि वह यह सुनिश्चित करे कि सरकार के अन्य अंग – विधायिका और कार्यपालिका अपने अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण न करे। इसे यह सुनिश्चित करना होगा कि विधायिका संवैधानिक आदेशों के भीतर कानून बनाए।

निगरानी का कार्य न्यायपालिका का संवैधानिक कार्य है और किसी भी व्यक्ति को इस संबंध में शिकायत नहीं करनी चाहिए। संसद और कार्यपालिका का कार्य संवैधानिक उपबंधों के अनुरूप हो।

जहाँ कहीं प्रजातांत्रिक प्रक्रिया और संवैधानिक पदों का दुरुपयोग होता है, इसके लिए न्यायपालिका के पास जाया जा सकता है और इसका यह दायित्व है कि इस मामले में सुविचारित दृष्टिकोण अपनाए और संविधान तथा देश के लोगों के मौलिक अधिकारों की रक्षा करें। न्यायिक सक्रियता का अर्थ न्यायपालिका द्वारा अपनी भूमिका और कार्य का अतिक्रमण करना नहीं है, बल्कि लोगों के हित तथा भारतीय संविधान के प्रजातांत्रिक आदर्शों की रक्षा के लिए यह वास्तव में अनिवार्य है।

• प्रश्न : कृपया तीन मुख्य विशेषताओं का उल्लेख करें ?

उत्तर : सर्वप्रथम भारतीय समाज में महिलाओं और बालिकाओं से संबंधित सामाजिक दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना महत्वपूर्ण है। बालिका को अवांछित माने जाने का एक मुख्य कारण बालिका के जन्म के समय से ही उसके माता–पिता द्वारा दहेज का बोझ अनुभव किया जाना है। इसीलिए 'दहेज प्रथा' को समाप्त करना बालिकाओं को वांछनीय बनाने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

दूसरा : महिलाओं को अधिकार सम्पन्न बनाने का एक महत्वपूर्ण पहलू 'शिक्षा का अधिकार' है। महिलाओं को अधिकार सम्पन्न बनाने के लिए हर बालिका को शिक्षा अवश्य उपलब्ध करानी चाहिए। बालिका को शिक्षा प्रदान करने का अर्थ है उनके मानसिक तथा शारीरिक विकास के लिए अवसर प्रदान करना जिससे उन्हें बेहतर जीवन स्तर एवं भविष्य में सम्मानपूर्वक जीवन जीने का अवसर प्राप्त होगा। शिक्षा का अधिकार बाल विवाह के मुद्दे से भी जुड़ा हुआ है। यदि कोई समुदाय बालिका की शिक्षा को प्रोत्साहित करता है तो उस समुदाय में बाल विवाह की संभावना कम हो जाएगी। इससे बालिकाओं को स्वस्थ विकास का अवसर उपलब्ध होगा।

तीसरा : महिलाओं को आर्थिक स्वतंत्रता का अधिकार और आत्मनिर्भरता तीसरा मुख्य घटक है जो यह सुनिश्चित करता है कि महिलाओं को समुचित स्थान प्राप्त है और

परिवार और समाज के निर्माण में उन्हें समान भागीदार के रूप में सम्मानित भूमिका प्राप्त है। शिक्षा और रोजगार से महिलाओं को उठ खड़ा होने और स्वयं जवाबदेही लेने, अपने तथा अपने बच्चों के जीवन के संबंध में स्वतंत्रतापूर्वक निर्णय लेने के लिए विश्वास जागृत होगा।

अगला मुख्य घटक समाज में कानून एवं व्यवस्था को बनाए रखना है। जब तक सरकार महिलाओं और बच्चों सहित अपने नागरिकों की सुरक्षा सुनिश्चित नहीं करती, तब तक सही मायने में कोई प्रगति या सशक्तिकरण नहीं हो सकता। किसी प्रगतिशील समाज की पहली आवश्यकता इसके नागरिकों के जीवन एवं उनकी स्वतंत्रता की सुरक्षा है और किसी भी सरकार का यह मौलिक दायित्व है कि वे अपने लोगों को सुरक्षा प्रदान करे। भारत में इस समय महिलाओं के प्रति बढ़ रहे अपराध को ध्यान में रखते हुए हमें इस पहलू पर गंभीरता से ध्यान देने की आवश्यकता है। न्यायपालिका महिलाओं से संबंधित अपराध के मामले में पीड़ित को उचित एवं त्वरित न्याय सुनिश्चित करके इसमें अपनी भूमिका निभा सकता है।

वैश्वीकरण एवं सूचना तक पहुँच होने से महिलाओं के अधिकार से संबंधित मामलों को बढ़ावा देने के लिए एक साझा मंच तैयार करने के अंतर्राष्ट्रीय प्रयास को बढ़ावा मिलता है। संयुक्त राष्ट्र संघ की कई संधियों में महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए सहयोग जुटाने की कोशिश की गई है।

● प्रश्न : ''महिला सशक्तिकरण'' को बढ़ावा देने में, विशेष रूप से भारत में, जहाँ विश्व के अन्य भाग की तुलना में देश के नागरिकों द्वारा माने जाने वाले धर्मों की संख्या सबसे अधिक है, धर्म की भूमिका क्या है ?

उत्तर :– यदि कोई धर्म अपने अनुयायी के हितों में विश्वास रखता है तो उसे महिला सशक्तिकरण का समर्थन करना चाहिए। दुर्भाग्यवश, सभी मामलों में ऐसा नहीं होता है। प्रत्येक धर्म अपने प्रार्दुभाव के समय प्रचलित सामाजिक परिस्थितियों के आधार पर नियमावली एवं आचरण संहिता निर्धारित करता है। परंतु धर्म के आधार पर हमारे पर्सनल कानून होने पर विभिन्न धार्मिक समुदायों के बीच कोई भी अनावश्यक विरोधाभास एवं संघर्ष नहीं होगा। भारत में हिन्दू, पारसी, ईसाई जैसे धार्मिक समुदायों के शादी एवं उत्तराधिकार के संबंध में एक समान पर्सनल कानून हैं क्योंकि उन्होंने अपने कानूनों में संशोधन किए है। सभी धर्मों और उनके कानूनों के संबंध में विवेकपूर्वक विचार करने एवं आवश्यक होने पर उनमें परिवर्तन करना अपेक्षित है। सभी धर्मों का

सामंजस्यपूर्ण सह–अस्तिव होना चाहिए, एक दूसरे से उनका टकराव नहीं होना चाहिए।

● प्रश्न : जो कुछ भी हमने विचार–विमर्श किया है, आप इसे मानव अधिकार सांचे में किस प्रकार रखेंगे ?

उत्तर :– विचार–विमर्श किए गए सभी मामले मानव अधिकार सांचे, जैसे महिलाओं और बच्चों को भोजन, स्वास्थ्य, सुरक्षा के अधिकार, के अंतर्गत आते हैं, ये सभी मानव अधिकार से संबंधित मामले हैं।

● प्रश्न : क्या आप इसे आधे भरे ग्लास के रूप में देखते हैं ?

उत्तर :– जी, एक तरह से ऐसा ही है। हमने काफी उपलब्धि हासिल की है, परंतु अभी भी काफी आगे जाना है। निश्चित रूप से मेरी दादी के समय से आज के समय में निर्णायक परिवर्तन आया है। किन्तु महिलाओं की मौजूदा महत्वाकांक्षा को ध्यान में रखते हुए अभी भी काफी कुछ प्राप्त किया जाना है।

● प्रश्न : क्या आप यह सोचते हैं कि मौजूदा समया की महत्वाकांक्षा अधिक सकारात्मक है ?

उत्तर :– बहुत हद तक। मुझे यह भी आशा है कि जिस प्रकार सूचना का वैश्वीकरण हो रहा है, जिस प्रकार लोगों को सूचना प्राप्त हो रही है, इस सबसे महिलाओं के अधिकारों की अवधारणा में निश्चित रूप से कुछ बदलाव होगा। एक शिक्षित महिला पूरे परिवार को शिक्षित कर सकती है। आज कल एक अनपढ़ महिला भी अपने बच्चों को शिक्षित करना चाहती है। यह एक बड़ा परिवर्तन है।

● प्रश्न : भारतीय समाज मुख्य रूप से धार्मिक समाज होने के कारण, जब हम विभिन्न समुदायों में महिला अधिकारों के बारे में बात करते हैं तो क्या इस संबंध में धर्म का उल्लेख होता है ?

उत्तर :– हाँ, बिल्कुल। हमारे सभी पारिवारिक कानून धर्म पर आधारित हैं एवं वे महिलाओं के अधिकारों को प्रभावित करते हैं। सभी समुदायों की महिलाएँ स्वतंत्रता एवं सम्मान पाने की हकदार हैं। आप अलग–अलग धर्मों को मानने वाली महिलाओं को एक समान अधिकार कैसे दे सकते हैं? आप को इसे व्यवहारिक रूप में देखना होगा। हालांकि हमारे पास समान नागरिक संहिता नहीं है, फिर भी कई धार्मिक समूह जैसे

हिन्दू, पारसी, ईसाई ने अपने पर्सनल कानून में संशोधन किया है और शादी, तलाक, उत्तराधिकार आदि के संबंध में उनके कानून एक समान हैं। दुर्भाग्यवश मुसलमानों ने ऐसा नहीं किया है।

लेकिन मुझे आशा है कि इसमें भी परिवर्तन होगा। मुस्लिम महिलाएँ अब स्वयं ''तलाक'' का विरोध कर रहीं हैं। दुर्भाग्यवश परिवर्तन के लिए आंदोलन अंदर से करना होगा न कि समुदाय के बाहर से, बदलाव के लिए इसे विधिक मांग के रूप में स्वीकार करना होगा। परिवर्तन कठिन है परंतु सामाजिक जागरूकता से इसमें बदलाव हो सकता है। आपको मूल अधिकारों और अंतर्राष्ट्रीय कानूनों के बारे में समुदाय को शिक्षित करना होगा। यह एक जटिल प्रक्रिया है परंतु इस प्रक्रिया में आपको सभी को साथ लेकर चलना होगा और उन्हें समझाना होगा। अन्यथा कोई भी परिवर्तन कठिन है। तथापि, किसी को यह आशा नहीं करनी चाहिए कि जिन महिलाओं को अधिकारों से वंचित किया गया है और जिन्हें पीछे रखा गया है, वे आगे आकर परिवर्तन की मांग करेंगी। वे इस स्थिति में नहीं हैं कि परिवर्तन की मांग कर सकें। समुदाय द्वारा परिवर्तन को अनिवार्य रूप में देखा जाना चाहिए।

अपने देश में मुस्लिम महिलाओं की स्थिति में कुछ सकारात्मक परिवर्तन की मैं उम्मीद करती हूँ। एक नाबालिक मुस्लिम बालिका मलाला का मुस्लिम महिलाओं के लिए शिक्षा के अधिकार के लिए उठ खड़ा होना, एक उत्साहवर्द्धक बदलाव है जो मुस्लिम महिलाओं के भविष्य के लिए उम्मीद की किरण है।

● प्रश्न : 'सतत् विकास' और चिरस्थायी समाजों के निर्माण के मामले पर मौजूदा बात–चीत के संदर्भ में आप महिलाओं की भूमिका की परिकल्पना किस प्रकार करते हैं?

उत्तर : ''सतत् विकास'' का संबंध जटिल रूप से महिला पथप्रदर्शक ग्रो हरलेम ब्रंटलैंट से है। अपनी प्रसिद्ध रिपोर्ट ''हमारे एक समान भविष्य'' में उन्होंने भावी पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरा करने की क्षमता से कोई समझौता किए बिना मौजूदा पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरा करने के बारे में विचार व्यक्त किया है। विकास का अर्थ अर्थव्यवस्था और समाज में बदलाव लाने से है – जिसमें गरीबों के भोजन, कपड़ा और नौकरी की आवश्यकता पूरी करना शामिल है। आर्थिक विकास संसाधनों के दोहन के बिना होना चाहिए। विकास के मुद्दे महिलाओं को भी प्रभावित करते हैं। विकास केवल

आर्थिक वृद्धि नहीं है। यह समाज का परिवर्तन है। विकास का अर्थ महिलाओं सहित प्रत्येक व्यक्ति के मूल अधिकारों का सम्मान हो और सभी के लिए विकास के समान अवसर उपलब्ध हों। विकास को केवल भौतिक अवसंरचना के विकास या किसी देश के सकल घरेलू उत्पाद के संदर्भ में नहीं आंका जाना चाहिए। इसके बजाय विकास के स्तर के निर्धारण में मानव सूचकांक या सामाजिक संरचना के विकास को महत्वपूर्ण घटक के रूप में शामिल किया जाना चाहिए। वास्तविक रूप से विकसित समाज में महिलाओं के अधिकारों की रक्षा सामान्य बात है। जब हम उस स्तर पर पहुँचेंगे तभी हम कह सकते हैं कि हम सही मायने में विकसित हैं।

* * *

मूल अंग्रेजी से हिन्दी में अनूदित – रचना मिश्रा

आयोग के महत्वपूर्ण निर्णयों का कहानी रूपांतरण

रोशनी से खिलवाड़

***डॉ0 अनीता सिंह**

...रोशनी से खेलने वाले लापरवाह पतंगे आखिरकार अपना ही नुकसान कर बैठते हैं !

ऐसा ही कुछ हुआ, उड़ीसा के भवानीपटना के जिला मुख्य अस्पताल में 22 जनवरी, 2007 को जहाँ साठ वर्ष के लगभग के चौदह वृद्धजनों का मोतियाबिन्द का ऑपरेशन किया गया। ये आपरेशन आजकल वैज्ञानिक प्रगति के फलस्वरुप सामान्य तरीके से और शीघ्रातिशीघ्र हो जाते हैं। ऑपरेशन के बाद स्पष्ट देख सकने की चाह लिये वे लोग इस बात से सर्वथा अनभिज्ञ थे कि उनके साथ क्या होने वाला है? हुआ यह कि भवानीपटना में 'लोकसर्म्पक' नामक संस्था द्वारा ऑपरेशन शिविर लगाया गया, जहाँ इन चौदह व्यक्तियों का मोतियाबिन्द का ऑपरेशन किया गया। ऑपरेशन के बाद ज्ञात हुआ कि उन सभी व्यक्तियों में से तेरह व्यक्तियों की आखों की रोशनी सदा के लिये चली गयी। यह मर्माहत कर देने वाली सूचना आयोग को 23 जुलाई 2007 को प्राप्त हुयी। प्रवीर कुमार दास नामक शिकायतकर्ता ने जब इस घटना की जानकारी आयोग को दी तो आयोग ने बिना विलम्ब किये आवश्यक कदम उठाये। पूर्ण विवरण देखने के बाद आयोग ने उड़ीसा सरकार के मुख्य सचिव को अधिसूचना जारी कर रिपोर्ट माँगी।

आखिर किसकी गलती थी ये, डॉक्टर की या मरीजों की। इन सबकी जाँच अब आयोग की जिम्मेदारी थी। आयोग विवेकपूर्ण ढंग से निर्णय लेने के लिये प्रयत्नशील थी।

इसी क्रम में उड़ीसा सरकार के सचिव की ओर से आयोग ने एक रिपोर्ट प्राप्त की जिससे ज्ञात हुआ कि दोषी डॉक्टर भारत बन्धु पान्डा के विरुद्ध विभागीय कारवाई की जानी है तथा प्रभावित मरीजों को 2000/रुपये दिये जाने हैं। प्रभावित मरीजों को

---

*युवा लेखिका एवं समीक्षक, पांडिचेरी।

2000 ⁄ रुपये मुआवजा? पुनः आयोग ने 20 जून 2008 को उड़ीसा सरकार को नोटिस भेजी कि क्यों प्रभावितों को उचित मुआवजा नहीं दिया जा रहा है?

इस नोटिस का तो आयोग को कोई जवाब नहीं मिला तथापि उड़ीसा के स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय के सचिव श्री एम. पी. धनवर का एक पत्र 31 जुलाई 2008 का प्राप्त हुआ जिसमें आयोग की नोटिस का जवाब देने के लिये दो महीने का अतिरिक्त समय माँगा गया। चूँकि आयोग के नीति–नियमों के अनुसार अगर आयोग की नोटिस का जवाब तीन महीनों तक नहीं मिला तो इस स्थिति में उड़ीसा सरकार को यह निर्देश दिया गया था कि प्रति प्रभावित मरीज को एक लाख रुपये की आर्थिक सहायता देकर दोषी डॉक्टर के प्रति विभागीय कारवाई करें।

उड़ीसा सरकार, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय की ओर से पूर्ण जाँच–पड़ताल के बाद आयोग को जवाब दिया गया जिससे वास्तविकता सामने आयी और वो यह थी कि 23 जनवरी 2007 को डा. भारत बन्धु पान्डा के द्वारा चौदह व्यक्तियों का मोतियाबिन्द का ऑपरेशन किया गया। यह ऑपरेशन समुचित तरीके से किया गया साथ ही सभी मरीजों को अस्पताल में ही रुकने की सलाह दी गयी। इस सलाह के बावजूद मरीजों ने उसी दिन अस्पताल छोड़ दिया। ऐसा उन्होंने अज्ञानतावश किया होगा। उन मरीजों में से सात मरीजों को आँख में थोड़ा इन्फेक्शन होने पर फ्रोब्रामायसिन आई ड्रॉप, होमरिक आई ड्रॉप तथा डिम्लोफेन्स टेबलेट दिये गये। इसकी जानकारी 30 मार्च 2007 की D.H.C.(O) की रिर्पोट से हुयी। इस रिर्पोट में यह भी सूचित किया गया कि ऑपरेशन के दूसरे दिन अर्थात 24 जनवरी 2007 को कोई भी मरीज जाँच के लिये नहीं आया। फिर 25 जनवरी को दो मरीज जिला मुख्य अस्पताल में देखे गये और उनमें से एक मरीज जिसका नाम शेरिया पान्डा था, ईलाज के लिये भर्ती हुआ। D.H.C.(O) की रिर्पोट में आगे यह भी बताया गया कि अन्य तेरह व्यक्तियों को अन्धापन का शिकार होना पड़ा। इसकी पूर्ण जानकारी आयोग को सत्य के निर्धारण के लिये भेजी गयी। और इस तरह उन मरीजों को उनकी याचिका पर विचार करके 2000 ⁄ रुपये प्रदान किये गये। इसके अतिरिक्त दोषी डॉक्टर के विरुद्ध पहले ही अनुशासनात्मक कारवाई शुरु हो चुकी हैं। इस पूरे मामले की विस्तृत जाँच के लिये उड़ीसा सरकार प्रशासनिक नियमों के तहत 'जाँच अधिकारी' की नियुक्ति करेगी। इन प्रभावकारी कदमों के उठाये जाने के कारण स्पष्ट है कि आयोग के आदेश की अवहेलना या उपेक्षा इस केस के सन्दर्भ में नहीं की गयी है। फलतः इस केस को आयोग ने यहीं समाप्त करना उचित समझा।

साकेत में गुप्तजी लिखते हैं,

दीपक के जलने में आली, फिर भी है जीवन की लाली,

किन्तु पतंग भाग्यलिपि काली, किसका वश चलता है!

सखि पतंग जलता है

हा! दीपक भी जलता है!

...अफसोस ! रोशनी से खेलते कुछ लापरवाह पतंगे फिर अपने आप को जला बैठे !!

* * *

बेगुनाह ख़ून और सत्यमेव जयते वाले

***डॉ0 अनीता सिंह**

...फिर वही हुआ जिससे अपने हर एक नागरिक को बचा लेना चाहता है इस देश का मानव अधिकार आयोग –निरीह मानव के अधिकारों की हत्या !!

करीब आधी रात का समय, एकदम सन्नाटा। नहर के ऊपर पुल पर आवाजाही लगभग नहीं के बराबर थी। इतने में एक नवयुवक मोटरसाईकिल से पुल से गुजरा। वह किसी आवश्यक कार्य से ही इतनी रात में निकला होगा। नववर्ष का प्रथम सप्ताह समाप्त हो रहा था। मन में नये स्वप्न, नयी उमंगे लिये वह युवक बढता जा रहा था। सब कुछ ठीकठाक, बिल्कुल सामान्य। तभी कहीं से गोली चलने की आवाज आयी। जल्द से जल्द घर पहुँचने की इच्छा लिये वह युवक वहीं ढेर हो गया। यह घटना आठ जनवरी 2007 की है।

यह वह समय था जब आये दिन मीडिया में, टी.वी. में, समाचारपत्रों में फर्जी मुठभेड़ की खबरें सुर्खियां बन रही थी। सही आरोपी की पहचान किये बगैर, बिना किसी पूछताछ के पुलिस का किसी नवयुवक का या किसी नवयुवती को पकड़कर जेल में डाल देना या सीधे गोली मार देना सामान्य सी बात हो गयी है। उस रात आठ जनवरी 2007 को गांधीनगर के रणछरदा गाँव के करीब नर्मदा ढोलक नहर के पुल पर उस नवयुवक के साथ कुछ ऐसा ही हुआ जिसकी पहचान रहीम कासम सुमरा के रुप में की गयी। उस समय गांधीनगर पुलिस गश्त पर निकली थी। सब इंस्पेक्टर तथा अन्य पुलिसकर्मियों ने घायल रहीम कासम सुमरा को अस्पताल पहुँचाया जहाँ उसने दम तोड़ दिया।

इसके बाद पुलिस ने कार्यकारी मजिस्ट्रेट को यह सूचना दी कि रहीम के पास से तमँचे और कारतूस भी मिले साथ ही बिना नवम्बर की बाइक भी। पुलिस के अनुसार

---

*युवा लेखिका एवं समीक्षक, पांडिचेरी।

रहीम कासम सुमरा विभिन्न अपराधों में सलंग्न रह चुका था और पुलिस को उसकी तलाश थी। पुलिस के अनुसार, उस रात जब वे गश्त पर निकले थे, नहर के पुल पर कुछ पेड़ काटकर रखे हुये थे। पुलिस को शक हुआ। तभी उसने तीन लोगों को खुद को छिपाते हुये तेजी से भागते देखा। पुलिस के द्वारा रोकने पर जब वे नहीं रुके तो उन्हें घेर लिया गया। स्वयं को समर्पित करने के बजाय उन्होंने पुलिस पर गोलियां चलानी शुरु कर दी। फलस्वरुप आत्मरक्षा हेतु पुलिस को भी गोलियां चलानी पड़ी। इस गोलाबारी के दौरान दो व्यक्ति अन्धेरे का फायदा उठाकर भाग निकले। इसके बाद जब पुलिस ने वहाँ खोजबीन की तो एक व्यक्ति घायलावस्था में पड़ा हुआ था जिसकी पहचान रहीम कासम सुमरा के रुप में की गयी। इसके बाद कार्यकारी मजिस्ट्रेट ने उस स्थान की जाँच की के लिये फोरन्सिक ऑफिसर अरविन्द कुमार शर्मा को भेजा। इस फोरेन्सिक अधिकारी ने अन्य पुलिस जवानों के साथ घटनास्थल का जायजा लिया जहाँ पर उन्हें बिना नम्बर वाली पल्सर मोटरसाईकिल तथा मोटरसाईकिल से 13 फीट की दूरी पर खून के धब्बे, तमंचा, कारतूस आदि मिले। इस केस में यह आवश्यक भी था कि कपड़ों के नमूने, अंगूलियों के निशान आदि लिये जाये। पर पुलिस ने तमंचो पर पीड़ित के अंगुलियों के निशान किसी कुशल विशेषज्ञ से नहीं लिये। प्रयोगशाला की रिपोर्ट से यह भी पता चला कि लिये गये नमूनों में बारुद की गन्ध तक नहीं है। पुलिस द्वारा बताये गये हथियारों का पीड़ित के साथ किसी प्रकार के सम्बन्ध का कोई वैज्ञानिक प्रमाण नही मिल सका। घटनास्थल पर किसी चश्मदीद गवाह के होने का सवाल भी कहाँ उठता था? कुल मिलाकर मुठभेड़ की यह घटना पुलिस द्वारा कपोलकल्पित थी जिसमें एक निर्दोष की बलि दे दी गई थी। जैसा कि पुलिस ने स्वयं स्वीकार किया कि कुछ समय तक गोलीबारी की गयी थी परन्तु आश्चर्य कि किसी भी पुलिसवाले को न तो गोली लगी न ही कोई घायल हुआ। इस घटनाक्रम की जानकारी आयोग को तब हुई जब 31 मई 2010 के जामनगर के फिरोज भाई सुमरा जो रहीम कासम सुमरा के भाई हैं, ने राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग में इसकी शिकायत दर्ज की।

प्रथम दृष्टया आयोग ने इस घटना में मानवाधिकारों का हनन पाया। आयोग ने समस्त जाँच–पड़ताल के बाद गुजरात सरकार को 'कारण बताओ' नोटिस जारी किया तथा पूछा कि पीड़ित को वित्तीय सहायता क्यों नहीं मिलनी चाहिये? जवाब छह हफ्तों के भीतर माँगा गया। आयोग द्वारा भेजे गये नोटिस के उत्तर में कुछ समय तक गुजरात सरकार ने चुप्पी साधे रखी। परन्तु फिर आयोग ने पहल की और 22 फरवरी 2013 को गुजरात सरकार को नोटिस जारी किया कि पीड़ित को आर्थिक सहायता क्यों नहीं दिया जा रहा है? इस नोटिस के उत्तर में आयोग को 30 अप्रैल 2013 को गुजरात सरकार के गृह मंत्रालय के सचिव की ओर से 11 अप्रैल 2013 के सुपरिडेन्टेड ऑफ पुलिस की

रिपोर्ट की कॉपी मिली। इस रिपोर्ट में इस बात पर जोर दिया गया था कि यह केस पुलिस के आत्मरक्षा हेतु चलायी गयी गोलीबारी के तहत है इसलिये यहाँ मुआवजे का कोई औचित्य नहीं है।

आयोग को यह अनुभव हुआ कि आयोग द्वारा उठाये गये महत्वपूर्ण पक्षों की अनदेखी करके बेहद सामान्य तरीके से जवाब देने की औपचारिकता निभायी गयी है। जबकि आयोग ने जाँच–पड़ताल में पाया कि पुलिस स्वयं के दिये गये तर्कों को वैज्ञानिक तरीके से साबित नहीं कर सकी है। मृतक रहीम ने पुलिस पर गोली चलायी, इस बात का कोई चश्मदीद गवाह भी नहीं। मात्र पुलिस के व्यक्तिगत फैसले तो स्वीकार नहीं किये जा सकते। कारण बताओ नोटिस का जवाब कहीं से भी आयोग को वास्तविक नहीं लगा। अतः 2013 को आयोग ने गुजरात सरकार से कहा कि गुजरात सरकार मृतक रहीम को छह हफ्तों के भीतर 5 लाख रुपये का मुआवजा दे तथा मुआवजा भुगतान प्रमाणपत्र की कॉपी तथा रिपोर्ट आयोग के पास जमा करे।

...एक नौजवान लड़का जो किसी की सांझ की रोशनी होगा, किसी की कलाईयों में सजी चूड़ियों का रंग – वो रोशनी वो रंग तो आयोग नहीं लौटा सकता अलबत्ता ये भरोसा ज़रूर लौटा सका कि इस मुल्क में मानवता निरीह नहीं है, आयोग उसका रक्षक है!!

* * *

जाल में दम तोड़ता शिकार

***डॉ0 अनीता सिंह**

हमारी हिफाज़त को तय लोग ही अगर हमें कत्ल करने लगें तब जान बचाने वाला या आसमान बचता है या मानव अधिकार आयोग !!

पिछले दिनों कुछेक ऐसी घटनायें सामने आयीं जिसने कानून–व्यवस्था की धज्जियां तो उड़ायी ही, साथ ही पुलिस की भूमिका पर भी सवाल उठाये। आखिर आम जनता के साथ पुलिस का रिश्ता कैसा होना चाहिये? क्या किसी अपराधी को पकड़ कर उसे जान से मारना ठीक है? पूछताछ के तरीके क्या होना चाहिये? फैसला किसे लेना चाहिये? पुलिस या कोर्ट। कारवाई शुरु होने के पहले क्या दोषी को प्रताड़ित करना उचित है?

ये सभी प्रश्न तब उठे, जब राजपाल बावरिया नामक एक व्यक्ति की पुलिस हिरासत में मृत्यु हो गयी। ये घटना 7 दिसम्बर 2008 की है। जब राजपाल बावरिया को सी. आई. ए. स्टॉफ, रेवारी ने हिरासत में लिया। शाम के वक्त उसने पेटदर्द की शिकायत की, उसे सरकारी अस्पताल में भर्ती किया गया, जहाँ उसकी मृत्यु हो गयी। सुनने में बेहद साधारण लगने वाली घटना। पर सोचने की बात थी कि पेटदर्द शुरु होने के इतनी जल्दी मृत्यु कैसे हो सकती है? इस 'सन्देहास्पद मृत्यु' की घटना जानकारी जाने–माने मानवाधिकार कर्मी श्री सुहास चकमा ने राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के हस्तक्षेप की मांग की।

19 जनवरी 2009 को रेवारी के एस.पी. की रिर्पोट अनुसार, राजपाल बावरिया पी. एस. मॉडल टाऊन, रेवारी के आई.पी.सी. के धारा 459/380 के अर्न्तगत एस.एस.आर. सख्या 316/2008 के केस में वांछित था। सी आई ए स्टॉफ ने 5 दिसम्बर 2008 को उसके घर गुड़गाँव जिला के गाँव गरही हरसारु में छापा मारा गया जहाँ से बचकर वह

---

*युवा लेखिका एवं समीक्षक, पांडिचेरी।

भाग निकला। 7 दिसम्बर 2008 को रेवारी के अम्बेडकर चौक पर उसे दो व्यक्ति लेकर आये। सी आई ए स्टॉफ उसे आफिस लेकर आया। शाम को उसने पेटदर्द की शिकायत की, उसे अस्पताल ले जाया गया, जहाँ उसे 'मृत' घोषित कर दिया गया।

मृतक राजपाल के पोस्टमार्टम रिपोर्ट से कई बातें सामने आयी। मृतक के शरीर पर दर्जनों चोटों के निशान थे। जगह–जगह सूजन थी। शरीर पूरी तरह से नीला पड़ चुका था। हाथ–पैर की अगुंलियाँ, पैरों के तलवे तक सूजे हुये थे, जगह–जगह घिसने के निशान थे। हृदय के अन्दरुनी हिस्से में खून के थक्के जमे हुये मिले। पोस्टमार्टम के सिर्फ इसी रिपोर्ट के आधार पर सोचा जा सकता है कि पुलिस ने कितनी हैवानियत से राजपाल को पीटा होगा। आन्तरिक रिपोर्ट तथा पैथालाजिकल रिपोर्ट से कुछ और बातें सामने आयी। यह भी ज्ञात हुआ कि मृतक के शरीर में अल्कोहल की उपस्थिति थी और वह नशे का आदी था। फिर आगे की जाँच के लिये अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, रेवारी ने इन परिस्थितियों की जाँच करवायी। साथ ही डा. जे. एस. मेहरा, डा. टी.सी. तँवर और डा. महा सिंह के संयुक्त बयान लिये। इसके अनुसार, इस केस में मृत्यु का कारण हृदय की पेशियों में संक्रमण तथा हृदय में रक्त जमने के कारण उत्पन्न हुये सकंरापन यानि कॉलेस्ट्राल की समस्या हो सकती है। इनसे यह पूछा गया कि पोस्टमार्टम में ज्ञात चोटों के घाव बने रहने की स्थिति के कारण तो मृत्यु नहीं हुयी? उत्तर में कहा गया कि नहीं, वे चोटें पर्याप्त नहीं। दूसरा प्रश्न था कि क्या मृतक को हृदय की कोई बीमारी थी? इस पर जवाब दिया गया कि बायें हृदय की धमनी में संक्रमण पाया गया है। इन तीनों डॉक्टरों के संयुक्त बयान के बाद दक्षिण क्षेत्र रेवारी के इन्सपेक्टर जनरल ने भी 3 फरवरी 2010 को एक रिर्पोट जमा की। इस रिर्पोट में उन्होंने कहा कि पोस्टमार्टम रिपोर्ट के अनुसार मृतक के शरीर की चोटें बेहद साधारण प्रकृति की थी। ये चोटें दो दिन से चार दिन के भीतर ही लगी थी। तो इन दोनों रिपोर्ट के अनुसार मृतक राजपाल बावरियां नशे का आदी था और नशे में कई बार गिरने के कारण उसे ये चोटे लगी थी अर्थात ये सभी चोटें गिरफ्तारी के पहले की थी।

आयोग ने पोस्टमार्टम रिपोर्ट, मजेस्ट्रियल जाँच रिपोर्ट तथा दक्षिणी क्षेत्र के आई. जी. की रिपोर्ट को बेहद सावधानी से जांचा और परखा। प्रश्न कई थे, जैसे – नशे में गिरने से क्या किसी को क्या इतनी चोटें लग सकती हैं कि उसके पूरे शरीर में इतनी ज्यादा सूजन आ जाये? और अगर गिरफ्तारी के वक्त ही आरोपी की यह दशा थी तो उसकी उसी समय मेडिकल जांच क्यों नहीं करवायी गयी?

इन स्थितियों में आयोग ने स्वंय की एक जांच समिति नियुक्त की। इस जांच समिति ने 3 सितम्बर 2011 को अपनी जांच आयोग को सौंपी। इसके अनुसार राजपाल

बावरियां की गिरफ्तारी की तारीख का इस केस में अहम स्थान है। इस जांच समिति ने रेवारी के सी.आई.ए. स्टाफ के इंचार्ज इंस्पेक्टर जगत सिंह के बयान लिये। जगत सिंह ने बताया कि आरोपी राजपाल को 7 दिसम्बर 2008 को दोपहर एक बजे दो आदमियों कँवर सिंह और रामकुमार के द्वारा रेवारी के अम्बेडकर चौक पर लाया गया। उसे 4 बजे शाम को सी.आई.ए. ऑफिस पहुँचाया गया, उसने पेटदर्द की शिकायत 7 बजे की। स्टाफ के अन्य लोगों ने भी समान बातें रखी। कँवर सिंह से पूछताछ करने पर ज्ञात हुआ कि राजपाल ने रेवारी पुलिस के सामने आत्मसर्मपण की इच्छा जतायी इसलिये कँवर सिंह और रामकुमार ने राजपाल को 7 दिसम्बर 2008 को रेवारी सी.आई.ए. स्टाफ को सौंप दिया। जांचटीम को राजपाल की माँ तथा बीवी ने तथा गढी–हरसारु के ही एक सज्जन शर्मा ने बताया था कि राजपाल को रेवारी पुलिस ने गाँव से ही 5 दिसम्बर को उठाया था। यहाँ देखने की बात है कि स्वंय इंस्पेक्टर जगत सिंह ने भी 5 दिसम्बर 2008 को उसके गाँव छापा मारने की बात स्वीकारी थी। यहाँ प्रश्न उठता है कि राजपाल गिरफ्तारी से बचने के लिये भाग क्यों गया था? और अगर बचना चाहता था तो उसने कँवर सिंह से आत्मसर्मपण की इच्छा क्यों जतायी?

आयोग की जाँच समिति के सबूतों से विदित होता है कि राजपाल को उसके घर से 5 दिसम्बर 2008 को गिरफ्तार किया गया था। यानि की कँवर सिंह झूठ बोल रहा था। इसके अतिरिक्त कँवर सिंह ने राजपाल को लगे चोटों के बारे में पूछने पर कहा कि यह केवल थोड़ा लंगड़ा कर चल रहा था पर उसे कोई चोट नहीं लगी थी। हेडकांस्टेबल प्रदीप कुमार ने भी कहा कि मृतक के शरीर पर कोई घाव या चोट नहीं था। इन्सेपक्टर जगत सिंह ने कहा था कि गिरफ्तारी के समय उसे कन्धे, हाथ, पैरों पर नीले गुमटे पड़े हुये थे। पर आयोग ने सभी पुलिस रिकार्ड चेक किया और पाया कि गिरफ्तारी के समय राजपाल को कोई चोट नहीं लगी थी। जांच समिति ने जगत सिंह से पूछा कि अगर गिरफ्तारी के समय चोट लगी थी तो उसे तुरन्त अस्पताल क्यों नहीं भेजा गया? जगत सिंह ने बताया कि उसे मेडिकल जांच के लिये भेजा गया लेकिन उस समय उसे पेटदर्द की शिकायत थी। आयोग को यह जवाब किसी भी सूरत में विश्वसनीय नहीं लगे। बड़ी आसानी से समझा जा सकता है कि गिरफ्तारी का समय तथा पेटदर्द की शिकायत के समय में चार घण्टे का अन्तराल था। पोस्टमार्टम के रिर्पोट के अनुसार भी राजपाल को कुल 12 चोटों में से 7 चोटें गिरफ्तारी के बाद ही लगे थे। एक और अहम सुराग आयोग की जांच समिति को मिला, पप्पू और मुन्ना नामक दो चश्मदीद गवाह। इन दोनों ने बताया कि राजपाल पुलिस हिरासत में प्रताड़ित किया गया। हुआ यह कि राजपाल को पहले से ही हृदय की बीमारी थी और बुरी तरह से पिटाई होने से उसकी मौत हो गयी।

सभी सबूतों तथा रिपोर्ट को एकत्रित करके, उनकी जांच–पड़ताल करने पर आयोग को यह ज्ञात हुआ कि राजपाल पुलिस प्रताड़ना का शिकार बना। वास्तव में, वह 5 दिसम्बर 2008 को गिरफ्तार किया गया तथा अवैध रुप से दो दिनों के लिये हिरासत में रखा गया। 30 नवम्बर 2011 को इन सभी पक्षों पर विचार करने पर आयोग ने 1993 के मानवाधिकार सरंक्षण अधिनियम U/S ए18 के तहत हरियाणा सरकार को 'कारण बताओ' नोटिस जारी किया तथा पूछा कि राजपाल बावरियां के पक्ष में आर्थिक सहायता राशि क्यों नहीं दिया गया? इस प्रावधान के तहत C.I.A. स्टाफ के इन्चार्ज इन्सपेक्टर जगत सिंह को नोटिस दिया गया कि राजपाल बावरियां को दो दिनों तक गैर कानूनी रुप से हिरासत में लेने तथा उसे हिरासत के दौरान प्रताड़ित करने के आरोप में उनके विरुद्ध मुकदमा चलाकर अनुशासनात्मक कारवाई क्यों न की जाय? आयोग ने इस सम्बन्ध में दो महीने के अन्दर जवाब माँगा।

* * *

पेंशन पात्र

***डॉ0 अनीता सिंह**

नोबेल से सम्मानित कहानीकार मार्केज़ की कहानी 'कर्नल को कोई ख़त नहीं लिखता' के नायक जैसा एक परेशान बुज़ुर्ग –जो अपनी पेंशन के लिए लड़ रहा दिखता है– अपनी पत्नी के मार्फत आयोग का दरवाज़ा खटखटाता है !

प्रत्येक कार्य के पूरे होने की एक निश्चित अवधि होती है। समय के साथ उम्र का वह पड़ाव भी आ जाता है जब व्यक्ति को उसके कार्य, उसके पद से मुक्त होना पड़ता है। 'सेवानिवृति' के बाद व्यक्ति को किसी भी तरह की कोई परेशानी न उठानी पड़े, इसके लिये सम्बन्धित विभाग, सरकार प्रयत्नशील रहती है। पर कभी–कभी कुछ विभागीय कर्मचारियों की लापरवाही या कभी – कभी कुछ स्वयं व्यक्ति द्वारा ऐसी गलतियाँ हो जाती हैं कि 'सेवानिवृति' के बाद सम्बन्धित व्यक्ति को घोर मानसिक पीड़ा से गुजरना पड़ता है।

ऐसा ही एक मामला आयोग के संज्ञान में सितम्बर 2011 को आया। उत्तराखण्ड राज्य के पौढी गढवाल के बुंगा गाँव के निवासी श्री महावीर सिंह बिष्ट जिला शिक्षा अधिकारी के पद से 30 नवम्बर 2006 को सेवानिवृत हुये पर उन्हें काफी लम्बे समय तक सेवानिवृति के उपरान्त पेन्शन, ग्रेच्यूटी आदि प्राप्त नहीं हो सका। इसकी शिकायत श्री महावीर सिहं बिष्ट की पत्नी श्रीमती परमेश्वरी बिष्ट ने आयोग से की। उनके द्वारा जमा किये सम्बधित कागजातों को देखने–परखने के बाद आयोग ने उत्तराखण्ड सरकार के माध्यमिक शिक्षा सरकार को 14 सितम्बर 2011 के पत्र में निर्देशित किया कि वे श्री महावीर सिंह बिष्ट को उनके पेन्शन प्राप्ति के सम्बन्ध में छह सप्ताह के भीतर सूचित करे अन्यथा आयोग कारवाई करने के लिये विवश होगा। इस निर्देश को पुनः 29 दिसम्बर 2011 को राज्य सरकार को प्रेषित किया गया। उत्तर में, प्रधानसचिव

*युवा लेखिका एवं समीक्षक, पांडिचेरी।

उत्तराखण्ड सरकार ने 21 फरवरी 2012 को आयोग को बताया कि श्री महावीर सिंह बिष्ट के लिये 4 मार्च 2004 से 6 फरवरी 2005 तक के 'बाध्य प्रतीक्षा अवकाश' की स्वीकृति के आदेश 8 अगस्त 2011 को दे दिये गये । आगे कहा गया कि तकनीकी खामियों के कारण महावीर सिंह को विलम्ब हुआ। इस आदेश में पेन्शन के जमाराशि दिसम्बर 2006 से 31 दिसम्बर 2011 तक कुल 12,21,220/ रुपये मात्र तथा ग्रेच्यूटी के कुल 5,52,189/ रुपये मात्र तथा लीव कम्युनेशन के 6,45,228/रुपये मात्र अर्थात कुल 24,186371 रुपये के प्रमाणपत्र भी लगाये गये थे। इन कागजातों को जाँचने से प्रथम दृष्टया आयोग को यही अनुभव हुआ कि श्री बिष्ट को सेवानिवृति के बाद बिना किसी विशेष कारण के दीर्घ अवधि तक पेन्शन, ग्रेच्यूटी आदि से वंचित किये गये। इसका अर्थ यही है कि श्री बिष्ट अपने परिवार के साथ आर्थिक अभावों को तो झेला ही होगा, निरन्तर गहरे मानसिक अवसाद में भी रहे। और ऐसा राज्य के तकनीकी खामियों की वजह से हुआ। जिसके लिये पीड़ित निश्चित रुप से मुआवजा पाने का अधिकारी है।

23 अप्रैल 2012 को आयोग ने मानवाधिकार सरंक्षण कानून के अंर्तगत धारा 18(प), 1993 के अंर्तगत उत्तराखण्ड सरकार को 'कारण बताओ' नोटिस जारी की जाती है कि श्री महावीर सिंह विश्ट को उनके मानवाधिकार हनन के लिये क्यों नहीं आर्थिक सहायता की संस्तुति की गयी ? श्री बिष्ट को दिये जाने वाले सभी जमाराशि के ब्याज के ब्यौरे के साथ आठ सप्ताह में उत्तर माँगा गया।

इसके जवाब में सचिव, माध्यमिक शिक्षा, उत्तराखण्ड ने जो प्रपत्र प्रस्तुत किया, उससे तस्वीर का दूसरा रुख सामने आया। इस प्रपत्र में यह सूचित किया कि शिकायतकर्ती के पति श्री महावीर सिंह बिष्ट की प्रोन्नति की गयी थी तथा वे पौड़ीगढवाल के जिला शिक्षा अधिकारी के रुप में सरकार की आदेश सख्ंया—280 दिनाँक 22 जून 2006 को नियुक्त हुये थे, जहाँ से वे 30 नवम्बर 2006 को वे सेवानिवृत हुये। पत्र में आगे कहा गया कि श्री महावीर सिंह ने अपने सर्विस बुक तथा पेन्शन के आवेदनपत्र आदि को कार्यालय में जमा नहीं किया। सभी कागजात अपने अधिकार में रखा और अपनी पत्नी के माध्यम से पेन्शन प्राप्त करने के लिये सीधे आयोग से सम्पर्क किया। श्री बिष्ट को पेन्शन आदि लेने में जो भी विलम्ब हुआ वो सर्विसबुक तथा पेन्शन आदि के कागजात सम्बन्धित कार्यालय में जमा नहीं कराने से हुआ।

उत्तराखण्ड सरकार के सचिव, माध्यमिक शिक्षा ने अपने जवाब में सभी कागजात राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग को सौंपे। अब आयोग के निष्पक्ष फैसले की प्रतीक्षा थी। आयोग ने इस विषय को बड़ी गहनता से जाँचा—परखा तथा पाया कि श्री महावीर सिंह

बिष्ट 22 जून 2006 को प्रोन्नत किये गये थे। आयोग ने यह भी पाया कि जी.पी.एस, ई.एल तथा जी.आई.एस. कुल जमा राशि 8,44,975/– रुपये का 2007 में ही भुगतान कर दिया गया था तथा शेष जमाराशि 24,18,673/रुपये का चेक संख्या 0307619, 20 अक्टूबर, 2011 को भुगतान कर दिया गया।

इस रिपोर्ट के साथ सलंग्न किये गये सभी कागजातों को जाँचने–परखने के बाद यह स्पष्ट हुआ कि सेवानिवृति के लाभों से दीर्घ अवधि तक वंचित रहने का मुख्य कारण श्री बिष्ट की स्वयं की लापरवाही है। समय पर सम्बन्धित कागजात कार्यालय में जमा नहीं कराने से ही उन्हें दीर्घ प्रतीक्षा करनी पड़ी। इन परिस्थितियों में आयोग द्वारा और आगे किसी जांच–पड़ताल की आवश्यकता नहीं समझी गयी तथा इस केस को यही बन्द कर दिया गया।

* * *

रुद्र का नृत्यमंच

***डॉ0 अनीता सिंह**

हमारे देश में अनेकानेक तीर्थस्थान है, जहाँ जाकर मनुष्य अपने पापों को विसर्जित करके पुण्य प्राप्त करता है। भारत में सदियों से यह परम्परा रही है कि अपने जीवनकाल में कम से कम एक बार तीर्थयात्रा अवश्य की जाय। एक स्थान से दूसरे स्थान की संस्कृति, रहन–सहन, खान–पान को नजदीक से देखा जाय, समझा जाय। यात्राओं से प्राप्त अनुभव स्मृति में रुपान्तरित होकर सदा के लिये हमारे मानस में अक्षुण्ण रहता है। निःसन्देह किसी भी यात्री के लिये हिमालय की यात्रा अत्यन्त रोमान्चकारी तथा आह्लादपूर्ण होती है। हिमालय की उपत्यका में स्थित सैकड़ों तीर्थस्थल है जिनमें केदारनाथ, बदरीनाथ, हेमकुण्डसाहिब, गंगोत्री, यमुनोत्री, रुद्रप्रयाग आदि महत्वपूर्ण हैं। परन्तु समय के साथ मानव ने प्रकृति तक को अपनी सुविधानुसार बदला है और बदल रहा है। बढती जनसंख्या तो एक कारण है पर दृष्टिकोण में बदलाव मुख्य कारण है। इसीलिये तीर्थस्थान अब तीर्थस्थान कम पिकनिक स्पॉट ज्यादा हो गये हैं। पहाड़ों पर रास्तों का निर्माण वहाँ की बुनियादी आवश्यकता है पर हजारों होटलों का अवैधनिर्माण वहाँ की स्थानीय जनता की जरुरत नहीं। धन की लालसा में वहाँ की प्राकृतिक सम्पदा को तहस–नहस मनुष्य ने ही किया है। पर प्रकृति भी भला कब तक सहेगी? समय–समय पर अपना आक्रोश व्यक्त करने वाली प्रकृति ने एक बार फिर अपना रुप 16 जून को दिखाया, सारी दुनिया हैरान रह गयी। बाबा केदार की नगरी में विनाश–लीला समस्त संसार ने देखा। वहाँ से जान बचाकर आये लोगों को तो जीवनभर यह हादसा भुलाये नहीं भूलेगा। किसी ने इसे बाबा शिव का प्रकोप बताया, तो किसी के अनुसार यह कलियुग में शिव का तांडव था। पर एक बात स्पष्ट थी कि अब प्रकृति का धैर्य समाप्त हो रहा है। हम अब भी नहीं सम्भले तो आगे कुछ भी सम्भाल पाना असम्भव हो जायगा।

---

*युवा लेखिका एवं समीक्षक, पांडिचेरी।

16–17 जून को उत्तराखण्ड राज्य में आयी इस आपदा से वहाँ का जन–जीवन तहस–नहस हो गया। सड़कें, पुल, घर, दुकान, होटल, गाँव, खेत जो भी उस हिमालयन सुनामी के चपेट में आया, नष्ट हो गया। ऊपर से भीषण बारिश, बाधित आवागमन, खाद्य–पदार्थों की कमी, फैलती महामारियां, स्थिति सम्भाल पाना आसान नहीं था। बाढ और भूस्खलन से स्थिति विकट से विकटतम होती गयी। जीवित बचे लोगों को सुरक्षित स्थान पर ले जाना तथा मृतकों का दाह–संस्कार एक साथ संपन्न किये जा रहे थे। राज्य सरकार ने पूरी कोशिश की, इस आपदा के बाद बचे लोगों की बुनियादी आवश्यकतायें पूरी करने की। पर जरुरत थी, महज प्रयत्न की।

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के पास अनगिनत शिकायतें इस आपदा के सम्बन्ध में आयीं। बिना विलम्ब किये आयोग ने 24 जून 2013 को तीन सदस्यों की एक टीम गठित की (सुश्री कंवलजीत देओल (डी जी (आई)), श्री ए. के. गर्ग, रजिस्ट्रार (विधि) श्री ए. के. पराशर, संयुक्त रजिस्ट्रार, विधि)। इस टीम को वहाँ की परिस्थितियों को देखने–समझने के लिये भेजा गया। एन एच आर सी की इस टीम ने 15 जुलाई से 18 जुलाई तक वहाँ का दौरा कर वहाँ का निरीक्षण किया। आयोग ने टीम को सर्वप्रथम देहरादून जाकर राज्य सरकार की कार्यप्रणाली पर एक रिर्पोट तैयार करने को कहा। मूल्यांकन रिपोर्ट के उपरान्त टीम को राहत शिविरों तथा बाढ तथा भू–स्खलन से प्रभावित मुख्य तीन जिलों (रुद्रप्रयाग, उत्तरकाशी तथा चमोली) की समस्याओं का अधयन करनें को कहा गया। इसके साथ ही स्थानीय जनता के लिये वास्तव में क्या कदम उठाये जा रहें है, तथा उस क्षेत्र में काम कर रहे सभी एन जी ओ के कार्यों को भी देखना–जांचना आदि काम सौंपे गये। आयोग ने इन सबकी जांच रिपोर्ट चार सप्ताह के अन्दर जमा करने को कहा।

यद्यपि इस प्राकृतिक आपदा का अध्ययन विशेषज्ञ तो करेगें ही पर इस आपदा का भयावह रुप मानव की स्वयं की गलतियों का परिणाम हैं। यह आपदा लगातार हुयी भारी बर्फबारी तथा अनवरत बारिश से एकदम विकराल रुप में आ गयी। बड़े–बड़े चटटानों, पत्थरों, कीचड़ मोरन जमाव से केदार घाटी पूरी तरह से पट गयी। वृहद पैमाने पर हुये भू–स्खलन सें इस पहाड़ी क्षेत्र के गाँव, खेत, सड़के सब बह गये। अध्ययन के दौरान आयोग द्वारा गठित टीम ने पाया कि अन्धाधुन्ध खनन और वनकटाई, बेतरतीब ढंग से हो रहे अतिक्रमण, प्राकृतिक रुप से संवेदनशील क्षेत्रों में जलविद्युत–परियोंजनाओं ने इस आपदा को बद से बदतर बनाने का काम किया है।

पीड़ितों को हरसम्भव सहायता पहुँचाने के लिये आयोग ने उत्तराखण्ड सरकार तथा वहाँ काम कर रहे तमाम एन जी ओ के साथ 16 जुलाई 2013 को मीटिंग की। 16 तथा 17 जुलाई 2013 को आयोग की टीम ने तीन अति प्रभावित जिलों (रुद्रप्रयाग, उत्तरकाशी तथा चमोली) का दौरा किया। राहत शिविरों का भी दौरा किया। टीम ने पाया कि बाढ़ पीड़ितों की मदद करना एक श्रमसाध्य कार्य था। एयरफोर्स, सेना के जवानों ने अतुलनीय कार्य किया। लगभग एक लाख लोगों को सुरक्षित स्थानों पर भेजा गया। पहली बार इतने बड़े पैमाने पर हेलीकाप्टरों का प्रयोग किया गया। सेना के जवानों ने अपनी जान जोखिम में डालकर तीर्थयात्रियों को बचाया। आठ सेना के आफिसरों की राहतकार्य के दौरान हुयी दर्दनाक मौत के बावजूद सेना अपने कार्य में डटी रही जिसकी आयोग ने भूरी–भूरी प्रशंसा की। मनुष्य ही नहीं, हजारों की संख्या में पशुधन की भी हानि हुई। हजारों शवों के गलने–सड़ने से महामारी की आशंका भी थी परन्तु राज्य सरकार के तथा अन्य सेवासमूहों की तत्परता से ऐसी कोई समस्या सामने नही आयी। हजारों की मृत्यु हुई, हजारों अभी तक लापता है। राज्य सरकार ने 59 गाँवों के बह जाने की सूचना दी। आयोग की टीम ने क्षेत्र का दौरा कर पाया कि अभी भी सैकड़ों गाँव सहायता की प्रतीक्षा में हैं। हांलाकि देश के कोने–कोने से रसद सामग्री, दवायें, कपड़े आदि भेजे जा रहे है। आयोग ने राज्य सरकार तथा अन्य संस्थाओं को इस बात की ओर ध्यान दिलाया कि राहत सामग्रियों का कोई अभाव नहीं है, परन्तु उनके समुचित और शीघ्र वितरण की आवश्यकता है। आयोग ने इस बात की चिंता जतायी कि राज्य सरकार के पास पर्याप्त सख्या में डाक्टर नहीं है। इस परिस्थिति में जबकि लोग जबरदस्त मानसिक आघात से गुजर रहे हैं, उन्हें मनोवैज्ञानिक तथा मनोचिकित्सक की भी आवश्यकता है। यहाँ तक कि सरकारी एजेन्सियां तथा वहाँ काम कर रहे एन जी ओ के बीच सन्तुलन का भी अभाव है। परन्तु फिर भी आयोग ने एन जी ओ तथा वहाँ काम कर रहे अन्य संस्थाओं की अतिशय प्रशंसा की।

आयोग ने राज्य सरकार के साथ लगभग सभी महत्वपूर्ण पक्षों पर विचार विमर्श किया। लाखों असहायों की बुनियादी जरुरतों के लिये सलाह तथा दिशा निर्देश भी दिये। आयोग ने आशा जतायी है कि केन्द्र सरकार तथा राज्यसरकार मिलकर पीड़ित लोगों के पुर्नवास के लिये सार्थक कदम उठायेगी। इस सन्दर्भ में आयोग ने केन्द्रीय कैबिनेट सचिव से केन्द्र द्वारा उठाये गये कदमों और राज्य को मदद देने के प्रस्तावों के बारे में रिपोर्ट सौंपने को कहा हैं। इसके साथ ही आयोग ने भविष्य में इस तरह की

कोई आपदा न घटे, उसके लिये भी दिशा निर्देश दिये हैं। तीर्थयात्रियों की सही संख्या ज्ञात करने के लिये राज्य सरकार से यात्रियों के द्वारा रजिस्ट्रेशन करवाने की सलाह दी गयी जिसे राज्य सरकार ने माना। इससे किस क्षेत्र में कितने तीर्थयात्री हैं, का सही विवरण सरकार के पास होगा। पर असल जरुरत है, अपने पर्यावरण को बचाने की, उस क्षेत्र में हो रहे अवैध वन–कटाई, भवन निर्माणों को रोकने की। अपने प्राचीन धार्मिक, सांस्कृतिक केन्द्रों को पवित्र, स्वच्छ और सुरक्षित रखने के लिये क्या हम अपने तृष्णा, धनलिप्सा और सुख–सुविधाओं में थोड़ी सी भी कमी नहीं कर सकते? राहत कार्य आज भी जारी है। पर क्या भोले शिव के तीसरे नेत्र के खुलने की आशंका समाप्त हो गयी है?

* * *

पुस्तक समीक्षा

मूल्य आधारित शिक्षा पर एक महत्वपूर्ण दस्तावेज

*अनिल गुप्ता

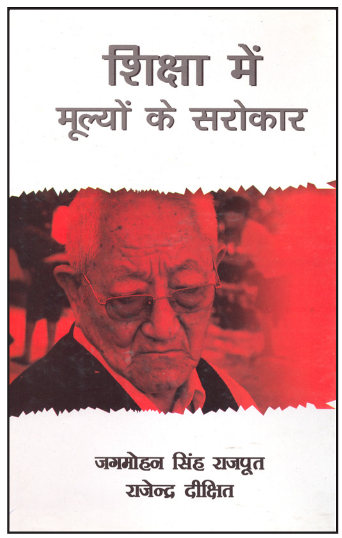

औद्योगिक और आर्थिक प्रगति के बावजूद राष्ट्र आकुल–व्याकुल है। इस बात में तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं है कि देश की आम जनता अनेक समस्याओं से ग्रस्त होकर क्रंदन कर रही है। जनमानस अपनी पीड़ा से छुटकारा पाने के लिये सिर्फ सरकारों की ओर देखता है और सरकार के पास केवल नये–नये कानून बनाने का ही एकमात्र उपाय है। लोकतांत्रिक सरकारें जनभावना के अनुरूप अलग–अलग समस्याओं से निपटने के लिये अलग–अलग कानून बना देती हैं, लेकिन ये कानून सफलता और परिणामदायी साबित नहीं हो रहे हैं। दरअसल, समस्याओं के मूल को पहचानने के बाद उनके निदान की गंभीर कोशिश आजादी हासिल करने के बाद अब तक नहीं हुयी है। प्रख्यात शिक्षाविद जे. एस. राजपूत और एन.सी.ई.आर.टी. के पूर्व प्रोफेसर डॉ0 राजेश दीक्षित की पुस्तक 'शिक्षा में मूल्यों के सरोकार' न केवल विधि निर्माताओं अपितु प्रबुद्ध समाज के समक्ष पैथोलोजिकल टेस्ट रिपोर्ट की भांति मूल रोग की पहचान कराती है। साथ ही, इसके उपचार का मूल्योन्मुख शिक्षा के रूप में इलाज भी बताती है। हालांकि यह पुस्तक वृद्धों के लिये स्नेह, सम्मान और सुरक्षा का वातावरण निर्मित करने के उद्देश्य के प्रति समर्पित 'हेल्प एज इंडिया' के सौजन्य से बढ़ती आयु के उभरते संदर्भ में लिखी गयी, किन्तु सचमुच, यह देश को स्वस्थ बनाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण पहल है।

*वरिष्ठ पत्रकार, नोएडा, (उ.प्र.)

पुस्तक का प्रारंभ हेल्प एज इंडिया के मुख्य कार्यकारी श्री मैथ्यू चेरियन के इन शब्दों से होता है ''परिवार संस्था के चलते बच्चों को मूल्यवान शिक्षा प्रदान करने में भारत में एक सुदीर्घ परंपरा रही है, परंतु आज के आधुनिक, निरंतर परिवर्तनशील समाज में, जहाँ माता–पिता की भूमिका तेजी से बदल रही है, वहाँ अभिभावकों के लिये अपने बच्चों में इन जीवन मूल्यों को संप्रेषित करना आसान नहीं रह गया है''। उनकी यह चिंता भी जायज है कि बच्चों की पाठ्यपुस्तकों में वृद्ध व्यक्तियों की देखभाल संबंधी सामग्री का प्रायः अभाव पाया जाता है।

लेखकद्वय के इस कथन से कोई भी असहमत नहीं होगा कि प्रगति तथा परिवर्तन तभी स्वीकार्य व सहायक हो पाते हैं जब उनमें नैतिकता, मानवीय मूल्य तथा सामाजिक स्वीकार्यता भी घुली मिली हो। उनका यह तर्क भी सभी को मानना पड़ेगा कि परिवर्तनों के तात्कालिक और दूरगामी परिणाम और प्रभावों को नहीं परखे जाने के कारण वर्तमान विश्व में अनेक गंभीर समस्याएं उत्पन्न हो गई हैं। ओजोन परत, बढ़ते तापमान, पिघलते ग्लेशियर, जल, वायु और ध्वनि प्रदूषण जैसे कुछ पर्यावरण संकट के उदाहरण हैं तो परिवारों और समाज में विघटन, पारस्पारिक संबंधों की मर्यादा का तार–तार होना और मनुष्य के चारित्रिक पतन से उत्पन्न नाना प्रकार की समस्यायें जैसे बढ़ते बलात्कार विकृत मानव–व्यवहार की वर्तमान प्रवृत्तियाँ है।

पुस्तक में सात अध्याय हैं। पहला अध्याय शिक्षा में मूल्यों की अवधारणा एवं सामाजिक परिदृश्य का विहंगम अवलोकन कराता है। विभिन्न शिक्षा आयोगों और समितियों के प्रतिवेदनों के आधार पर मूल्यपरक शिक्षा के महत्व को रेखांकित करने का सफल प्रयास किया गया है। इसमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण उच्चतम न्यायायल के एकमत निर्णय का वह अंश है, जो चव्हाण समिति की सिफारिशों को धर्मनिरपेक्षता के प्रतिकूल बताते हुए चुनौती देने वाली याचिका पर दिया गया था। ''इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता कि पिछले पांच दशकों में हर स्तर पर सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का निरंतर ह्रास हो रहा है और स्वार्थपरता में वृद्धि हुई है। मूल्यों पर आधारित सामाजिक प्रणाली की पूरी तरह उपेक्षा करते हुए हम भौतिकवादी समाज में ढ़लते जा रहे हैं। कोई इससे भी इन्कार नहीं कर सकता कि सेक्लुलर समाज में नैतिक मूल्यों का महत्व सर्वोपरि है। जिस समाज में कोई नैतिक मूल्य न हों वहाँ न सेक्युलरिज्म बचेगा, न सामाजिक व्यवस्था''।

विद्वान न्यायाधीशों ने लोगों में मूल्यों की रक्षा के लिए धर्म की महत्ता को रेखांकित किया। उनके अनुसार, किसी सभ्य समाज में मूल्यों के साथ जीने के लिए मात्र धर्म ही आधार प्रदान करता है, और कुछ नहीं। इस धरती पर सहजीवन और

सहअस्तित्व न केवल आपस में मनुष्यों का बल्कि सभी जीवों, वनस्पतियों और पर्यावरण का भी, कैसे बना रह सके, इस बात पर सारी दुनिया में संतों और विचारकों ने चिंतन किया है। यह संपूर्ण चिंतन धर्मों में ही प्रतिबिंबित होता है। अतः यदि इसके विषय में पढ़ाया जाता है तो इसे संविधान के विरूद्ध नहीं कहा जा सकता और न ही यह किसी के कानूनी अधिकारों या नैतिक मान्यताओं को चोट पहुंचाता है।

इस फैसले में यह भी कहा गया कि सत्य, धर्म, शांति, प्रेम और अंहिसा सभी धर्मों द्वारा स्वीकृत सार्वभौमिक बुनियादी मूल्य हैं। धर्म की धारणाा पर सर्वाधिक भ्रम रहा है और इसी का सर्वाधिक दुरूपयोग भी होता रहा है। फिर भी, विद्यार्थियों को सब धर्मों की बुनियादी बातों, में अंतर्निहित मान्यताओं से अवगत कराने की शुरूआत होनी चाहिए। साथ ही सब धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन भी आवश्यक है। विद्यार्थियों को यह बताना ही चाहिए कि सभी धर्मों के पीछे मूल धारणा एक ही है, केवल उनके व्यवहार में भिन्नता पाई जाती है। न्यायाधीशों ने इस विचार को पूरी तरह गलत बताया कि विभिन्न धर्मों के अध्ययन से समाज में वैमनस्य होगा। इसके विपरीत, उनके विचार से, विभिन्न धर्म दर्शनों का ज्ञान सामाजिक सौहार्द के लिए अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि अज्ञान तथा पथभ्रष्ट लोगों द्वारा गलत धारणाओं के प्रचार से घृणा ही फैलती है।

वर्तमान परिदृश्य का सटीक चित्र खींचते हुए लेखकद्वय का यह कथन स्मरण कराने के साथ ही ध्यान देने योग्य है कि स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद भारत के सामने चूंकि भौतिक रूप से आत्मनिर्भर बनने का लक्ष्य था, अतः शिक्षा में विज्ञान और प्रौद्योगिकी को सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। कृषि, उद्योग, निर्माण आदि क्षेत्रों में अधिक से अधिक उत्पादन की तकनीक में सहायक शैक्षिक 'मॉडल' का निर्माण और विकास किया गया। शिक्षा सूचना और तकनीक केंद्रित होती चली गई तथा मूल्यों से इसका केवल सैद्धांतिक संबंध रहा गया। उत्पादन बढ़ाने की धुन में हम प्रकृति व पर्यावरण की बेहिचक हत्या करने लगे, प्रतिस्पर्धा में स्वार्थ, ईर्ष्या, धोखाधड़ी को बढ़ावा मिला, वैज्ञानिक और तर्कप्रधान विचारधारा के प्रति आग्रह के कारण देश की अपनी आस्थाओं, परम्पराओं और सांस्कृतिक निष्ठाओं को आघात लगा तथा मूल्यों के विस्मरण के कारण हमें देश, राज्य, संस्कृति, धर्म और परिवार के विघटन और विभाजन का दंश झेलना पड़ा।

लेखकों के इस प्रश्न में अंतर्निहित दृष्टिकोण का समाधान किया जाना चाहिए कि यदि हिंसा को सैद्धाांतिक समर्थन मिलता रहा तो शिक्षा में अहिंसा के मूल्य को किस प्रकार स्थापित कर प्रभावी बनाया जा सकता है? विद्वान लेखकों ने देखा है कि हमारी सैद्धांतिक व्यवस्था में कई बार हिंसक व्यक्तियों व समूहों को राज्य के अथवा राष्ट्रीय

या अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार आयोगों से अभयदान दिलाने का प्रयास किया जाता है, जबकि हिंसा के शिकार या हिंसा के लक्ष्य समूहों के लिए कोरे शब्दों में सांत्वना दी जाती है।

पुस्तक के दूसरे अध्याय का शीर्षक है – 'जीवनदृष्टि में परिवर्तन के लिए शिक्षा'। वस्तुतः यही सबसे महत्वपूर्ण अंश है। इस अध्याय में बहुचर्चित लॉर्ड मैकाले द्वारा 2 फरवरी 1835 में ब्रिटिश संसद के समक्ष दिए गए वक्तव्य का उद्धरण देते हुए बताया गया है कि किस प्रकार हमारे गौरवशाली अतीत को योजनापूर्वक शिक्षा में माध्यम से उलट डाला गया। इससे लेखक स्वाभाविकरूप से यह आह्वान करने में सफल हैं कि यदि अंग्रेज शासक शिक्षा के माध्यम से भारतीयों के उच्च चारित्रिक स्तर को समाप्त कर सकते थे तो हम क्यों इसी रास्ते से फिर से चारित्रिक उन्नयन नहीं कर सकते, यानी कर सकते हैं।

शैक्षिक पाठ्यचर्या एवं पाठ्य सामग्री, मल्य शिक्षण के लिए स्त्रोत–सामग्री, शिक्षण विधि एवं प्रक्रिया, अध्यापक–शिक्षा एवं प्रशिक्षण, शैक्षिक प्रबंधन एवं प्रशासनः वृद्धजनों की देखभाल ... जैसे अन्य अध्यायों में भी विस्तार से उपयोगी और लाभदायक परामर्श दिए गए हैं, पूर्णता में विचार करने पर प्रतीत होता है कि लेखक पाश्चात्य तौर–तरीकों की छाया से पूर्णतः नहीं निकल पाए हैं। पाठ्यचर्या में बंधी शिक्षा पद्धति वास्तव में भारतीय पद्धति नहीं है, यह पश्चिम से आयातित है। हमारी शिक्षा पद्धति पाठ्यक्रम आदि से मुक्त रही है। मुख्यतया इसका आधार वाचिक रहा, जिसमें गुरू और शिष्य के मध्य सीधा संवाद होता था। विद्यार्थियों के समक्ष गुरू मात्र व्याख्यान नहीं देते थे, बल्कि उन्हें शाश्वत–मूल्यों की प्रतिमूर्ति बनाने का काम एक शिल्पी की भांति करते थे। वे स्वयं भी उच्च जीवन मूल्यों के श्रेष्ठतम उदाहरण के रूप में प्रस्तुत होते थे। अगर किसी से सिर्फ कहकर शिक्षा देना संभव होता तो कानून भी अप्रभावी नहीं होते। आधुनिक युग में माना जा रहा है कि प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति का विज्ञान और प्रौद्योगिकी के साथ कोई तालमेल नहीं है। लेकिन ऐसा चिंतन उचित नहीं है, क्योंकि वाचिक शिक्षा परम्परा के पुनर्जीवित किए जाने पर उच्च जीवन मूल्यों से परिपूर्ण मनुष्य तैयार हो सकेंगे। वे वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक प्रगति का आस्वादन अधिक संयमित, विवेकपूर्ण और बेहतर तरीके से करेंगे। उस पद्धति से वे सत्य, अहिंसा और करुणा जैसे सदगुणों से संपन्न मातृ–पितृ भक्त श्रवण कुमार बनकर निकलेंगे। उन्हें श्रवण कुमार की कथा सुनाने की बहुत ज्यादा आवश्यकता नहीं रहेगी।

पुस्तक के अंत में एस.बी. चव्हाण समिति (1999) की पूरी रिपोर्ट, मूल्य शिक्षा के लिए मात्र संकेत– उदाहरणस्वरूप प्रस्तावित साहित्यिक रचनाओं की सूची और

संदर्भ सूची अनुलग्नकों के तौर पर उपलब्ध कराई गई है। यह स्वातन्त्र्योत्तर भारत में उच्च जीवन –मूल्यों की पुर्नस्थापना के सक्रिय प्रयासों में विशेषरूप से सहायक हो सकती है।

आज सूचना एवं प्रौद्योगिक क्रांति ने विश्व को एक गांव के बिम्ब में बांध दिया है। पुस्तक में भारतीय परिवेश में नयी तकनीक और संचार क्रांति के संदर्भ में भारतीय शैक्षिक मूल्यों के विकास की ओर संकेत किया गया है। ये मूल्य भारतीय परिवेश में ही नहीं दुनियाभर में सृजनात्मक स्पंद जागृत कर सकेंगे, ऐसी आशा की जानी चाहिए। निश्चय ही, पुस्तक में शक्तिशाली उत्प्रेरक की भूमिका निभाने की प्रबल संभावना है।

* * *

पुस्तक का नाम – शिक्षा में मूल्यों के सरोकार
लेखक – जगमोहन सिंह राजपूत
राजेन्द्र दीक्षित
प्रथम संस्कारण – 2012
प्रकाशक – किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली
मूल्य – 340 पृ0 192 हार्ड वाइन्ड

महिला और कानून : अंधेरे में एक मशाल

***सर्वमित्रा सुरजन**

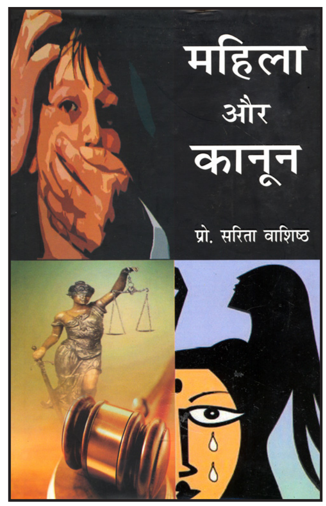

महिलाओं को समाज में प्रारंभ से त्याग, सहनशीलता, बलिदान, समर्पण की ऐसी घुट्टी पिलाई गई है जो सदियों तक अपना असर दिखा रही है। समूचे विश्व में महिलाओं की स्थिति पुरूषों की तुलना में दोयम दर्जे की रही है और भारत भी इसमें अपवाद नहीं है। पौराणिक काल की सीता—अहिल्या—द्रौपदी—सावत्री से लेकर आधुनिक युग की दामिनी तक कदम—कदम पर महिलाओं को पुरुषों द्वारा निर्मित परीक्षाओं से गुजरना पड़ता है। फिर चाहे वह उनके लिए कितनी भी पीड़ादायक क्यों न हो, उनके आत्मसम्मान को कितना भी कुचल कर क्यों न रख दे। महिलाओं को वाद—विवाद—संवाद सबसे परे रखकर पुरुष प्रधान समाज अपने फैसले सुनाता आया है। शायद यही वजह है कि आज 21वीं सदी में भी कोई गर्भवती महिला इसलिए दम तोड़ देती है, क्योंकि उसे गर्भपात का अधिकार नहीं मिला। कोई बच्ची मन में पढ़ने की चाह रखती है और चरमपंथियों से गोली खाती है। कोई युवती सार्वजनिक परिवहन में सफर करने का अंजाम अपने सम्मान और जीवन को खोकर चुकाती है। ऐसे माहौल में स्त्रियों के लिए बने कानून स्त्री मुक्ति और स्त्री शक्ति सही अर्थों में हासिल करने के लिए मशाल का काम कर सकते हैं और ऐसी ही एक मशाल समाज के सामने उठाने का बीड़ा उठाया है सरिता वशिष्ठ ने। 'महिला और कानून', इस शीर्षक से प्रकाशित उनकी किताब में ने केवल कानून बल्कि मानवाधिकारों की भी सुस्पष्ट व्याख्या की गई है। वशिष्ठ ने महिलाओं की दशा—दिशा, राष्ट्रीय, अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य में उनके मानवाधिकारों की पड़ताल, महिला अधिकारों से जुड़े विभिन्न

---

*संपादक, अक्षर पर्व, दिल्ली।

घोषणापत्र व महिलाओं से संबंधित कानून का विस्तृत ब्यौरा सुबद्ध तरीके से 25 अध्यायों में वर्णित किया है।

किताब की भूमिका में सरिता जी लिखती हैं कि स्वतंत्रता से लेकर अब तक महिलाओं की उन्नति के लिए, उन्हें समुचित न्याय दिलाने के लिए तरह–तरह के कानून सरकार ने बनाए हैं पर महिलाएं अधिकतर इससे लाभान्वित नहीं हो पाती हैं इसका सबसे बड़ा कारण शिक्षा की कमी और रूढ़िवादिता। लेखिका के इस कथन से यह जाहिर हो जाता है कि उनकी पैनी निगाह केवल शुष्क कानून पर ही नहीं है, अपितु वे सामाजिक समस्याओं को भी संज्ञान में रखती हैं और दोनों के बीच तार्किक संबंध स्थापित भी करती हैं।

पुस्तक का पहला अध्याय है महिलाओं के मानवाधिकार। इस शीर्षक से स्पष्ट है कि समाज में महिलाओं के साथ जो व्यवहार होता है, वह मानवीय गरिमा के अनुरूप नहीं होता। इसलिए उनके मानवाधिकारों को अलग से जिक्र करने की आवश्यकता है। इसमें आजादी के पहले से महिलाओं के अधिकारों के लिए एकजुट हो रहे संगठनों के प्रयासों के बारे में बताया गया है। साथ ही शिक्षा, आजीविका कमाने, कमाई पर हक रखने, विवाह करने अथवा अकेले जीवन व्यतीत करने, संपत्ति रखने, संतान उत्पत्ति, समान वेतन, कार्यालय में उत्पीड़न, घरेलू प्रताड़ना आदि तमाम अधिकारों के बारे में बताया गया है। 18 दिसम्बर, 1970 को संयुक्त राष्ट्र की महासभा में महिलाओं के अधिकारों के घोषणापत्र का उल्लेख है और बताया गया है कि महिलाओं की प्रगति का अध्याय, सं. रा. की स्थापना एवं भारतीय संविधान से प्रारंभ होता है। (पृ.5)

'भारतीय संविधान एवं महिलाएं' शीर्षक अध्याय में भारतीय संविधान में वर्णित महिला अधिकारों व कानून, उनके संरक्षण का विस्तृत विवरण है। राष्ट्रीय व राज्य महिला आयोगों की स्थापना संबंधी जानकारी, उनका कार्यक्षेत्र, महिलाओं का जीवन सुधारने में उनकी भूमिका, पीड़ित महिलाओं द्वारा इन आयोगों में शिकायत करने का तरीका, मामलों की सुनवाई आदि तमाम मुद्दों को आसान भाषा में समझाया गया है। कई गैरसरकारी संगठन भी महिलाओं के उत्थान के लिए कार्य कर रहे हैं। ज्योति संघ, सेवा और आवाज ऐसी संस्थाओं के बारे में काफी उपयोगी जानकारी किताब में दी गई है। 'राष्ट्रीय संदर्भ में मानवाधिकारों का स्वरूप', 'मानवाधिकारों का अंतरराष्ट्रीयकरण' और 'मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा' आदि शीर्षकों के तहत विश्व व भारत में मानवाधिकारों की स्थिति की पड़ताल लेखिका ने की है।

मानवाधिकार क्या हैं और उनका हनन कैसे होता आया है, इसे समझाने के लिए वे इतिहास के पन्ने पलटती हैं और अशोक के हृदय परिवर्तन से लेकर द्वितीय विश्वयुद्ध

में हिटलर द्वारा मचाए गए रक्तपात का उदाहरण देती हैं। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मानवाधिकारों की स्थापना के प्रयास के तहत फ्रैंकलिन डी. रूजवेल्ट व विंस्टन चर्चिल द्वारा लाए गए अटलांटिक चार्टर के बारे में भी लेखिका ने बताया है। (पृ.44)

मानवाधिकारों के राष्ट्रीय– अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य की व्यापक पृष्ठभूमि के बाद आठवें अध्याय से महिलाओं के कानूनों की व्याख्या का सिलसिला प्रारंभ होता है। 'महिलाओं के कानूनी अधिकार', शीर्षक के अंतर्गत यूनीसेफ, राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण आदि द्वारा प्रस्तुत रिपोर्टों के अध्ययन के आधार पर लेखिका ने घरेलु हिंसा, कन्या भ्रूण हत्या, विवाह विच्छेद, मान हानि, दहेज प्रताड़ना आदि के कई उदाहरण रिपोतार्ज की शक्ल में पेश किए हैं। उन्होंने विभिन्न क्षेत्रों की महिलाओं से चर्चा करके इस अध्याय को जीवंत बना दिया है। इसी अध्याय में उन्होंने तलाक की स्थिति में बच्चों का भरणपोषण अधिनियम, दहेज प्रताड़ना के खिलाफ कानून, तलाकशुदा महिलाओं के हक, मातृत्व के दौरान मिलने वाले लाभ आदि के बारे में बखूबी बताया है। अध्याय नौ महिलाओं के प्रमुख अधिकारों का है। इसमें वे भारत के महान संतों के उद्धरण पेश करती है। उदाहरण के लिए स्वामी विवेकानंद ने कहा है कि जब तक महिलाओं की स्थिति में सुधार नहीं होता तब तक विश्व का कल्याण नहीं हो सकता। किसी भी पक्षी के लिए एक पंख से उड़ना संभव नहीं है। (पृ.93) इस अध्याय में महिलाओं के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, पारिवारिक हर तरीके के अधिकार के बारे में प्रो0 वशिष्ठ ने बताया है।

अगले कुछ अध्यायों में कामकाजी महिलाओं के अधिकार, महिलाओं के वैवाहिक, धार्मिक, सामाजिक, व्यावसायिक संपत्ति, परिवारिक व भावनात्मक अधिकारों के बारे में अलग–अलग शीर्षकों में विस्तार से समझाया गया है। अध्याय 18 थोड़ा अलग हटकर है, क्योंकि इस विषय पर सभी दृष्टिकोणों से चर्चा प्रायः कम ही होती है। इसका शीर्षक है महिला सौंदर्य का अधिकार, इस अध्याय में नारी के सुंदर दिखने के स्वभावजन्य गुण को आधार बनाकर बताया गया है कि प्राचीन काल से आधुनिक काल तक किन–किन तरीकों से महिलाएं सुंदर दिखने का यत्न करती आयी हैं। आदिवासी समुदाय में महिलाएं किस तरह का सौंदर्य रचती हैं। वे इतिहासकारों व विदेशी यात्रियों द्वारा प्रस्तुत उद्धरण भी पेश करती हैं (पृ. 166 में बर्नियार के यात्रा वृत्तांत का अंश)। अध्याय में वे दूसरे पहलू को उकेरना नहीं भूलतीं, जब किसी महिला द्वारा फैशन किए जाने के अधिकार को पुरूषसत्तात्मक समाज गलत निगाहों से देखता है।

अध्याय 19 का शीर्षक है 'महिला सम्मेलन की उपादेयता'। इसमें लेखिका उल्लेख करती है कि महिलाओं को हीनभावना से निकलना होगा, तभी वे अत्याचारों के खिलाफ

आवाज उठा पाएंगी। बीसवीं सदी को नारी जागरण युग क्यों कहा जाता है ? नारी मुक्ति आंदोलनों की आज कैसी दशा–दिशा है ? बेट्टी फ्राइडन की पुस्तक से मची क्रांति, अमरीका, चीन, फ्रांस आदि देशों में नारी मुक्ति के विभिन्न उपादान, विदेशी लेखिकाओं के साथ–साथ भारतीय साहित्य जगत का नारी मुक्ति में योगदान, विश्व महिला सम्मेलनों की उपयोगिता व उपादेयता, महिला दिवस की मौलिकता आदि का विस्तार से वर्णन किया गया है।

महिलाओं की वर्तमान स्थिति पुस्तक का 21वां अध्याय है। इसमें लेखिका ने बताया है कि कैसे आधुनिक तकनीकी के इस्तेमाल से महिलाओं की जीवनदशा सुधारी जा सकती है। फिर चाहे वह ग्रामीण महिलाओं के लिए धुआंरहित चूल्हा हो अथवा संचार के क्षेत्र में अपनी प्रतिभा दिखाने का अवसर। मीडिया के उपयोग से किस तरह महिलाओं की सम्मानजनक छवि बनायी जा सकती है, इसका विश्लेषण किया गया है। पुस्तक के अंतिम चार अध्यायों में क्रमशः कुटुंब न्यायलय, हिंदू विवाह अधिनियम, दहेज प्रतिरोध अधिनियम व भरण–पोषण कानून की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। इन अध्यायों में वास्तविक जीवन के उदाहरण पेश कर इतने सुंदर तरीके से कानून की व्याख्या की गई है कि साधारण नागरिक भी इन्हें आसानी से समझ सकता है।

भूमिका के अंत में प्रो0 सरिता वशिष्ठ इस पुस्तक को लिखने का उद्देश्य बताती हैं कि एक ओर समाज में हर क्षेत्र में आगे बढ़ रही महिलाओं का वर्ग है, दूसरी ओर देश की अधिकतर महिलाएं अब भी किस्म–किस्म के अभावों से जूझ रही हैं, वे भयग्रस्त हैं और अपने अधिकारों के लिए आवाज नहीं उठा पा रही है। हमें दो भागों में विभाजित देश को संगठित करना है। उनकी यह पुस्तक महिलाओं को उनके अधिकारों व कानूनों के बारे में जागरूक बनाने में महत्वपूर्ण योगदान देगी व स्त्री विमर्शकारों व शोधार्थियों के लिए अत्यंत उपयोगी साबित होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

***

पुस्तक का नाम – महिला और कानून
लेखक – प्रो0 सरिता वशिष्ठ
प्रथम संस्कारण – 2010
प्रकाशक – कल्पना प्रकाशन, दिल्ली
मूल्य – 695 पृ0 259 हार्ड वाइन्ड

रचनाकारों के पते

1. **श्रीमती कमलेश जैन,** वरिष्ठ अधिवक्ता, 25, सुप्रीम इंक्लेव, मयूर विहार फेस–I, दिल्ली–110091
2. **डॉ0 सरोज व्यास,** प्रधानाचार्य, फेयरफील्ड इंस्टीटयूट ऑफ मैनेजमेंट एंड टेक्नोलॉजी, दिल्ली–110037
3. **डॉ0 शशि कुमार,** उपाचार्य, मानवाधिकार विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, लखनऊ–226025
4. **श्री पंकज कुमार,** ईग्नू–एस.ओ.एस.डब्ल्यू, ब्लॉक–15, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली–110068
5. **प्रो0 श्रीराम येरणकर,** प्रमुख, राजनीति विज्ञान विभाग, जिजामाता महाविद्यालय, बुलडाणा, (महाराष्ट्र) – 443001
6. **डॉ0 अनिला,** 21 गढ़ मगरी, शोभागपुरा, उदयपुर – 313001 (राजस्थान)
7. **डॉ0 लाला राम जाट,** 21 गढ़ मगरी, शोभागपुरा, उदयपुर–313001 (राजस्थान)
8. **डॉ0 पुनीत कुमार,** एफ–5, प्रोफेसर्स कॉलोनी, शिवपुरी–473551, मध्य प्रदेश,
9. **डॉ0 मंजुलता गर्ग,** एफ–5, प्रोफेसर्स कॉलोनी, शिवपुरी–473551, मध्य प्रदेश,
10. **डॉ0 इन्द्रेश कुमार मिश्र,** 521/272, भैरो प्रसाद मार्ग, बड़ा चांदगंज–226024, लखनऊ (उ0 प्र0)
11. **प्रो0 अरूण चतुर्वेदी,** 7 Panari Upvan Gali No.3, Bedla Road, Udaipur-313001 (Raj.)

12. **डॉ0 राकेश कुमार सिंह,** Flat No.14, University Reader's Flat, Babu Ganj, Faizabad Road, Lucknow-226020

13. **सुश्री पूनम कुमारी,** 207, श्रीजी नगर, दुर्गापुरा, जयपुर–302018

14. **डॉ0 एस. एम. झरवाल,** Flat No. 69, Plot No. 9, IES Apartment, Sector-4, Dwarka, New Delhi-110075

15. **श्री शरद कुमार यादव,** 1 रूम नं0–19बी ग्वायर हाल, छात्रावास, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली–110007

16. **डॉ0 के. एस द्विवेदी,** अपर पुलिस महानिदेशक, क्वाटर नं0 – 24ए, हार्डिंग रोड़, पटना – 110015

17. **श्री पुष्पेन्द्र सोलंकी,** 5 ए–36, कुड़ी भगतासनी हाऊसिंग बोर्ड, बासनी प्रथम चरण, जोधपुर–342005

18. **डॉ0 अमिता पांडेय,** एसोसिएट प्रोफेसर दर्शन शास्त्र, ईश्वर शरण डिग्री कालेज (इलाहाबाद विश्वविद्यालय), इलाहाबाद–211004

19. **Prof. K. Vanja,** Abhiramam, Surabhi Road, Edappally P.O., Kochi-682024

20. **श्री बजरंगलाल जेठू,** जेठवां का बास, पो0– दातरू, वाया– लक्ष्मणगढ़, जि0– सीकर – 341306 (राजस्थान)

21. **श्रीमती सर्वमित्रा सुरजन,** 506, आईएनएस बिल्डिंग, रफी मार्ग, नई दिल्ली–110001

22. **श्री अनिल गुप्ता,** एच–118, नोएडा स्टाफ क्वार्टस, सेक्टर–27, नोएडा–201301 (उ0प्र0)

23. **प्रो0 सुधा मोहन,** सिविक्स एन्ड पोलिटिक्स डिपार्टमेन्ट, मुम्बई विश्वविद्यालय, फिरोजशाह मेहता भवन, मुम्बई – 400098

24. **Dr. Anita Singh,** C/o Dr. Pramod Singh, Dept. of Earth Science, Pondicherry University, University Campus, Kalapet, Pondicherry – 605 014

ISBN : 0973-7588

मेरे सपनों का भारत

मैं ऐसे भारत के लिए कोशिश करूंगा, जिसमें गरीब से गरीब आदमी भी यह महसूस करे कि यह उसका देश है, जिसके निर्माण में उसकी आवाज का महत्त्व है। मैं ऐसे भारत के लिए कोशिश करूंगा, जिसमें ऊँच-नीच का कोई भेद न हो। जातियां मिलजुल कर रहती हों। ऐसे भारत में, अस्पृश्यता व शराब तथा नशीली चीजों के अनिष्टों के लिए, कोई स्थान न होगा। उसमें स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार मिलेंगे। सारी दुनिया से हमारा संबंध शांति और भाईचारे का होगा। यह है मेरे सपनों का भारत।

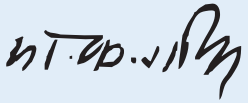

(मोहनदास करमचंद गांधी)

सर्वे भवन्तु सुखिनः

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

मानव अधिकार भवन

ब्लाक–सी, जीपीओ कॉम्पलेक्स, आईएनए, नई दिल्ली – 110 023, भारत

ISSN 0973-7588